

Birla Central Library

PILANI (Jaipur State)

Class No. S294.5 ♦

Book No. 17677 V. 3

Accession No. 16518

REQUEST

IT IS EARNESTLY DESIRED THAT THE BOOK BE HANDLED WITH CARE AND BE NOT MARKED, UNDERLINED OR DISFIGURED IN ANY OTHER WAY, OTHERWISE IT WILL HAVE TO BE REPLACED OR PAID FOR BY THE BORROWER IN THE INTEREST OF THE LIBRARY

LIBRARIAN

TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES.

No. LXXVII.

THE
ÎSÂNASIVAGURUDEVAPADDHATI

BY

ÎSÂNASIVAGURUDEVAMISRA

EDITED BY

MAHÂMAHOṚÂDHYÂYA

T. GAṆAPATI SÂSTRÎ,

HONORARY MEMBER OF THE ROYAL ASIATIC SOCIETY OF
GREAT BRITAIN AND IRELAND.

*Curator of the Department for the publication
of Sanskrit Manuscripts, Trivandrum.*

Part—III. Kriyapāda 1—30 Patalas.

PUBLISHED UNDER THE AUTHORITY OF THE GOVERNMENT OF
HIS HIGHNESS THE MAHARAJAH OF TRAVANCORE.

TRIVANDRUM:

PRINTED BY THE SUPERINTENDENT, GOVERNMENT PRESS

1922.

(All Rights Reserved.)

अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ७७.

ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः
श्रीमदीशानशिवगुरुदेवमिश्रविरचिता

संस्कृतग्रन्थप्रकाशनकार्याध्यक्षेण
लण्डनपुरस्थराजकीयैष्याखण्डीयविद्यासेवकसमाजपूज्यसभ्यपदभाजा
महामहोपाध्यायेन
त. गणपतिशास्त्रिणा
संशोधिता ।

तृतीयो भागः—क्रियापादे १—३० पटलाः ।

सा च
अनन्तशयने
महामहिमश्रीमूलकरामवर्मकुलशेखरमहाराजशासनेन
राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण
मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

विषयानुक्रमणी ।

| विषयाः. | पृष्ठम्. | विषयाः. | पृष्ठम्. |
|-----------------------------|----------|----------------------------|----------|
| शिखाधिकारः | १ | मन्त्रोद्धाराधिकारः | ६५ |
| शिवगण्यस्थापनाधिकारः | ४ | दशमुद्राधिकारः | ७२ |
| तत्त्वपातुः कारः | १० | पञ्च मुद्राः | ७३ |
| वस्तुनिर्देशाधिकारः | १८ | चतुरश्रसाधनम् | ७४ |
| पशुविचाराधिकारः | २० | कुण्डाधिकारः | ७५ |
| पाशविचाराधिकारः | २३ | भद्रकाधिकारः | ७७ |
| गतिविचाराधिकारः | २४ | सर्वतोभद्राधिकारः | ८० |
| शक्तिविचाराधिकारः | २५ | पार्वतीकान्तप्रासादाधिकारः | ८१ |
| विचारपदार्थाधिकारः | २७ | लतालिङ्गोद्भवाधिकारः | ८२ |
| क्रियाचर्यापदार्थाधिकारः | २८ | स्वस्तिकालङ्काराधिकारः | ८३ |
| ज्ञानाचमनाधिकारः | २९ | स्वस्तिकसर्वतोभद्राणि | ८४ |
| सकलीकरणाधिकारः | ३३ | चक्राब्जाधिकारः | ८५ |
| कारुभेदेन सावित्रीध्यानभेदः | ३४ | दलभेदलक्षणम् | ८६ |
| दशदिक्त्तर्पणम् | ३५ | सुक्लसुवाधिकारः | ८७ |
| दिक्त्तर्पणम् | ३६ | भरणविधिः | ८८ |
| आग्नेयस्नानाधिकारः | ३७ | इध्मावर्हिषां विधिः | ८९ |
| ऐन्द्रवायव्यादिस्नानविधिः | ३९ | आहुतिप्रमाणम् | ९० |
| भूतशुद्धयधिकारः | ४० | पात्रमानम् | ९१ |
| आत्मशुद्धयधिकारः | ४२ | पात्रादिद्रव्यशुद्धिः | ९२ |
| आसनाधिकारः | ४४ | अङ्कुरार्पणविधिः | ९३ |
| आवाहनाधिकारः | ४६ | साधकाचार्यलक्षणम् | ९४ |
| अर्घ्यविधिः | ४८ | सूर्यपूजामूर्त्यः | १०१ |
| पाद्याचमनाधिकारः | ४९ | आवरणमूर्त्यधिकारः | १०२ |
| स्नानाधिकारः | ५० | सूर्यपूजाधिकारः | ११० |
| वस्त्रभूषणाधिकारः | ५२ | एकावरणार्चनाधिकारः | ११२ |
| गन्धाधिकारः | ५३ | पञ्चावरणपूजाविधिः | १२५ |
| पुष्पाधिकारः | ५४ | अग्नि कार्यविधिः | १२९ |
| धूपदीपाधिकारः | ५४ | सामान्यक्रियाधिकारः | १३७ |
| नित्यनैवेद्यविधिः | ५५ | समयदीक्षाधिकारः | १४४ |
| नैमित्तिककाम्यविधिः | ५६ | षडध्वनिर्णयाधिकारः | १४९ |
| उपचारभेदेन पूजाभेदाः | ५७ | निर्वाणदीक्षाधिकारः | १७१ |
| मातृकान्यासः | ५९ | साधकदीक्षाधिकारः | १८७ |
| पञ्चब्रह्मस्वरूपन्यासादि | ६१ | आचार्यमहाभिषेकाधिकारः | १९१ |

| विषयाः. | पृष्ठम्. | विषयाः. | पृष्ठम्. |
|-----------------------------|----------|---------------------------|----------|
| आचार्यककामस्यानुकल्पः | १९६ | सौभद्रम् | २७६ |
| प्रायश्चित्ताधिकारः | १९८ | कैलासच्छन्दम् | ,, |
| पवित्रारोपणाधिकारः | २०२ | रुद्रच्छन्दम् | २७७ |
| वसन्तपूजाधिकारः | २१८ | ललितभद्रम् | ,, |
| दमनकर्पाधिकारः | २२३ | जातीतरविमानाङ्ककाराधिकारः | २७८ |
| भूलक्षणाधिकारः | २२६ | तत्र मेरुविमानम् | ,, |
| शङ्कुच्छायाधिकारः | २२९ | मन्दरम् | २७९ |
| अङ्गुलादिविधिः | २३३ | कैलासम् | ,, |
| पदविन्यासग्रामपुरादिलक्षणम् | २३४ | कुम्भविमानम् | ,, |
| देशकालाधिकारः | २४१ | जयाङ्गम् | ,, |
| कर्पणाधिकारः | २४५ | विशालाङ्गम् | ,, |
| शाल्योद्धाराधिकारः | २४९ | विमलाकृति | ,, |
| वास्तूपन्यधिकारः | २५१ | हंसच्छन्दम् | २८० |
| वास्तुपूजाधिकारः | २५४ | वृषच्छन्दम् | ,, |
| प्रथमेष्टकाधिकारः | २५७ | गरुडच्छन्दम् | ,, |
| गर्भन्यासाधिकारः | २६२ | पद्माङ्गम् | ,, |
| नानाविमानलक्षणाधिकारः | २६५ | पद्मभद्रम् | ,, |
| तत्रादौ विमानविभागः | ,, | कैलासकान्तम् | ,, |
| नलिनकम् | २६७ | रुद्रकान्तम् | २८१ |
| प्रलीनकम् | २६९ | योगभद्रम् | ,, |
| स्वस्तिकम् | २७० | भोगिच्छन्दम् | ,, |
| चतुर्मुखम् | ,, | सुदर्शनम् | ,, |
| सर्वतोभद्रम् | ,, | स्कन्दकान्तम् | ,, |
| हस्तिपृष्ठम् | २७१ | विन्ध्यच्छन्दम् | ,, |
| समुज्ज्वलकम् | ,, | मेरुकूटम् | ,, |
| श्रीछन्दम् | २७२ | चित्रकूटम् | २८२ |
| वृत्तभद्रम् | ,, | श्रीमण्डनम् | ,, |
| श्रीकान्तम् | ,, | सौमुख्यम् | ,, |
| श्रीप्रतिष्ठितम् | २७३ | जयमङ्गलम् | ,, |
| शिवभद्रम् | ,, | नीलपर्वतम् | ,, |
| शिवरुद्रम् | २७४ | निपथः | ,, |
| अष्टाङ्गम् | ,, | मङ्गलम् | ,, |
| पद्माकृति | २७५ | विजयम् | २८३ |
| विष्णुच्छन्दम् | ,, | ललितकान्तम् | ,, |

| विषयाः. | पृष्ठम्. | विषयाः. | पृष्ठम्. |
|----------------------|----------|------------------------|----------|
| श्रीकरम् | २८३ | सर्वलालितम् | २९३ |
| श्रीविशालम् | " | प्रत्यन्तकान्तम् | " |
| ब्राह्मणविमानाधिकारः | " | विशालम् | " |
| तत्र सोमच्छन्दम् | " | उत्पलपत्रम् | २९४ |
| नागच्छन्दम् | २८४ | महाराजच्छन्दम् | " |
| कुल्यावर्तम् | " | मालीगृहम् | २९५ |
| द्विकूटकम् | " | नन्दीविशालम् | " |
| श्रीवर्धनम् | २८५ | पृथिवार्जयम् | " |
| पद्मगृहम् | " | सर्वाङ्गसुन्दरम् | २९६ |
| प्रेक्षागृहम् | " | छायागृहम् | " |
| क्रतुवर्धनम् | २८६ | रतिवर्धनम् | " |
| वृत्तगृहम् | " | विट्शूद्रविमानाधिकारः | २९७ |
| भानुकान्तम् | " | विशालालयः | " |
| अत्यन्तकान्तम् | २८७ | चतुष्पादिकम् | " |
| चन्द्रकान्तम् | " | तुरङ्गवदनम् | २९८ |
| क्षत्रियविमानाधिकारः | " | गणिकापिण्डकम् | " |
| तत्र चतुःस्फुटम् | " | इयेनचन्द्रम् | " |
| मन्त्रपूतम् | २८८ | कुक्कुटपुच्छकम् | " |
| आवन्त्यम् | " | उत्पलम् | २९९ |
| माहिपम् | " | मुण्डप्रासादम् | " |
| तन्त्रीकान्तम् | २८९ | तलविभागाधिकारः | " |
| विजयाङ्गम् | " | तत्र जातिविमानाधिकारः | " |
| विशालभद्रम् | २९० | छन्दविमानाधिकारः | ३०१ |
| गणिकाविशालम् | " | विकल्पविमानानि | " |
| कर्णभद्रकम् | २९१ | आभासविमानानि | " |
| कर्णशालम् | " | क्षुद्रविमानाधिकारः | " |
| पद्मवसन्तकम् | २९२ | तलविभागे प्रकारान्तरम् | " |
| इन्द्रकान्तम् | " | उपपाठाविधिः | ३०३ |
| योगकान्तम् | " | | |

॥ श्रीः ॥

ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः

श्रीमदीशानशिवगुरुदेवमिश्रविरचिता ।

(तृतीयः क्रियापादः ।)

अथ प्रथमः पटलः ।

प्रणम्यादौ शिवं शक्तिं सादेशं च गणेश्वरम् ।
शुद्धविद्यां तथा वाणीं मुख्यं धर्मं प्रचक्ष्महे ॥ १ ॥
सामान्यमन्त्रपादाभ्यां पूर्वार्धे खलु दर्शिताः ।
धर्मार्थकाम्याः सामान्याः शिष्टं व्यावर्ण्यतेऽधुना ॥ २ ॥
मुख्यधर्मचिदाप्नोति दृष्टादृष्टफलोदयात् ।
भोगान् मोक्षं च तद्धर्मविषयः परमेश्वरः ॥ ३ ॥
अथातो धर्ममित्यादिसूत्राद् वैशेषिकादतः ।
धर्मप्रयोजनं मोक्षः प्रोक्तश्चाभ्युदयो महान् ॥ ४ ॥
धर्मा बहुविधाः ख्यातास्तत्तदागमचोदिताः ।
नहि ते मुख्यधर्माः स्युर्मुख्यधर्माः शिवोदिताः ॥ ५ ॥
मायाविकारहीनेन विशुद्धेनामलात्मना ।
सर्वकर्त्रा शिवेनोक्तं शास्त्रं मुख्यं हि सर्वथा ॥ ६ ॥
स हि मायादिभूम्यन्तर्विश्वकार्यस्य कारणम् ।
शिवः कर्ता विकर्ता च प्रमाणत्रयगोचरः ॥ ७ ॥
जगत् सावयवं ह्येतद् बुद्धिमत्कर्तृकं स्मृतम् ।
कार्यत्वाद् यद्यदेवं स्याद् यथा घटपटादिकम् ॥ ८ ॥
तथाचोक्तमिदं तस्मादुक्तसाध्यं न संशयः ।
अस्त्येकः स शिवः कर्ता ह्यपरेभ्यो विलक्षणः ॥ ९ ॥
योगिप्रत्यक्षतः सिद्धश्चानुमानागमैरपि ।
सर्वेभ्यो ह्यपरेभ्योऽस्य वैलक्षण्यं कथं भवेत् ॥ १० ॥

विलक्षणः शिवोऽन्येभ्यस्त्वनादिरमलो यतः ।

सर्वेषां समलत्वाच्च यद् यत् स्यान्निर्मलं स्वतः ॥ ११ ॥

तत्तद्विलक्षणं तेभ्यः स्वर्णं ताम्रादिकाद्यथा ।

तथाचोक्तं प्रसिद्धं स्यादत्रोक्तं किरणेऽपि च ॥ १२ ॥

अनादिमलसम्बन्धान्मलिनत्वमणौ स्थितम् ।

अनादिमलमुक्तत्वान्निर्मलत्वं स्थितं शिवे ॥ १३ ॥

इति । रामकण्ठोऽप्याह —

“यश्चासौ सर्वज्ञः सर्वकर्ता च शुद्धः शिवः, तथा किञ्चिज्ज्ञोऽह्यशुद्ध आत्मा ।

तयोः शिवात्मनोः सम्बन्धी ये? न्धिनी) तु शुद्धाशुद्धे निर्मलमलयुक्ते स्वरूपे”

इति । श्रीमल्लम्बितेऽपि —

“एकः शिवः पुमानासीदपरेभ्यो विलक्षणः ।”

इति ।

“तस्मादनादिमलिनास्त्वात्मानो ह्यणवः स्मृताः ।”

इति ।

अनादिनिर्गलः शुद्ध एक एव महेश्वरः ।

निर्मलः शिव एकश्चेत् सर्वेभ्योऽपि विलक्षणः ॥ १४ ॥

निर्मलाः शिवधामानः सन्ति विद्येश्वराः कथम् ।

कथ्यते मलमोक्षोऽपि त्वयैव शिवदीक्षया ॥ १५ ॥

दीक्षितानां शिवत्वं च सिद्धं शैवागमे यदा ।

एतेऽप्यपर एवास्माच्छिवात्मानः शिवाद् यतः ॥ १६ ॥

तस्मादयुक्तं सर्वेभ्यो वैलक्षण्यं शिवस्य हि ।

अत्र निर्वाणदीक्षायाः पूर्वं ते मलिना यतः ॥ १७ ॥

दीक्षोत्तरं ह्यमलता शिवत्वव्यक्तिरेव च ।

शिवानुग्रहतस्त्वेषां शिवत्वं ह्यादिमत् स्मृतम् ॥ १८ ॥

शिवस्त्वनादिसिद्धेन शिवत्वेनापरानणून् ।

अनुगृह्णन् स्वतेन्त्रश्च स्यात् तेभ्योऽपि विलक्षणः ॥ १९ ॥

अत्र त्रय्यन्तिदन्तीन्द्रा वदन्त्यद्वैतमात्मनाम् ।

ब्रह्मैकमेवाद्वितीयं यथात्मानोऽपरे कथम् ॥ २० ॥

वैलक्षण्यं कुतोऽस्य स्याद् भेदो यत्र न सिध्यति ।
 न चेद्भ्रामः कुतः सीमा कस्यानुग्राहकः शिवः ॥ २१ ॥
 इत्यादि ब्रुवतामेषां स्यात् प्रमाणं यदा तदा ।
 द्वैतापत्तिः स्मृता नो चेदप्रमाणं हि तद् भवेत् ॥ २२ ॥
 अत्र तद्वचनैस्तेषामुत्तरोत्तरमुत्तरम् ।
 दत्तं द्वैतप्रसिद्धं स्यादद्वैतेन समासतः ॥ २३ ॥
 ब्राह्मणाद्येषु सस्त्वेव भवन्त्यब्राह्मणादयः ।
 तन्मतप्रतिकूलं स्यात् बन्धमोक्षपरिग्रहः ॥ २४ ॥
 एकमेव यदा सर्वं ब्रह्म बद्धा न सन्ति हि ।
 सर्वेऽपि मुक्ता एवातः किं फलं श्रवणादिभिः ॥ २५ ॥
 गुरुपसदनं व्यर्थं नमस्कार्यः पृथक् कुतः ।
 ज्ञातृज्ञेयविभागोऽपि ज्ञानं च स्यान्निरर्थकम् ॥ २६ ॥
 इत्यादिभेदस्वीकारो वेदान्तेष्वपि दृश्यते ।
 यस्माद् द्वैतं प्रसिद्धं हि गुणित्वमपि चात्मनः ॥ २७ ॥
 किमत्र बहुनोक्तेन तस्याविद्याथवा तमः ।
 माया वा त्याज्यमस्त्येव मुमुक्षोर्मोचकेतरत् ॥ २८ ॥
 ब्रह्मविदाम्प्रोति परमित्यत्र श्रुतिदर्शनात् ।
 नाम्नोत्यब्रह्मविद् यस्माद् भेदः सिद्धः प्रमाणवान् ॥ २९ ॥
 हेतोरभावादैकात्म्ये तद्वच्छून्यात्मवादिनः ।
 बौद्धा बुद्धिभ्रमादत्र भ्रमन्तोऽपि निराकृताः ॥ ३० ॥
 कर्म बुद्धिमता यस्मात् कृतं कार्यफलप्रदम् ।
 ज्ञानं चाहैतुक्तं तस्मात् क्रियातः फलवादिनाम् ॥ ३१ ॥
 कर्म तत् क्षणिकं वा स्यात् परतन्त्रमचेतनम् ।
 न तादृक् फलसिद्धौ स्याद् बुद्धिमत्कारणं विना ॥ ३२ ॥
 तेषामचेतनैर्मन्त्रैः कर्मणा तादृशेन च ।
 नूनं क्रियाफलावाप्तेः कर्ता ज्ञेयः सुधीः शिवः ॥ ३३ ॥
 गुणप्रकृतिरव्यक्तं विश्वोपादानमित्यपि ।
 मृत्पिण्डवद् घटोत्पत्तेः स्वतो नालं हि कारणम् ॥ ३४ ॥

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेतेत्यादिनापि च ।
 तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥ ३५ ॥
 इत्यादिवाक्यतः साङ्ख्यैरप्यन्वेष्यो महेश्वरः ।
 अचेतनत्वाद् भूतानां देहेन्द्रियगणस्य च ॥ ३६ ॥
 त्यक्तगर्वैस्तु चार्वाकैरभ्युपेया ह्यनात्मता ।
 भूतेन्द्रियाणि सन्त्येव मृतदेहेऽप्यतोऽपरः ॥ ३७ ॥
 अन्वेषणीय आत्मा स्यादस्वातन्त्र्यं तथात्मनः ।
 अदृष्टस्य च सद्भावो प्रहादित्यादिदर्शनात् ॥ ३८ ॥
 तत्कारणं सधीरस्तीत्येषणीयो महेश्वरः ।
 देहप्रमाणमात्मानं नित्यानित्यविशेषणात् ॥ ३९ ॥
 ब्रुवतां जैनसाधूनां महर्षिस्तादृगेव हि ।
 अहिंसादितपोयोगादहन्त्वं तस्य तन्मते ॥ ४० ॥
 सिद्धमित्यादिमान् सोऽपि तपसा परवान् यतः ।
 तत्तपःफलदातान्यस्तैरुत्सृज्येह मत्सरम् ॥ ४१ ॥
 स्वतन्त्रोऽनादिमान् कर्ताध्येषणीयो महेश्वरः ।
 इत्यादिवादपिशुनैरीश्वरेतरवादिभिः ॥ ४२ ॥
 क्षिप्तस्वपक्षविक्षेपैरेष्टव्यः श्रेयसे शिवः ।

शिवसद्भावाधिकारः ।

स शिवः स्वमुखोद्भूतैरागमैस्तु परापरैः ॥ ४३ ॥
 अनुगृह्णाति हि जगद् भोगमोक्षप्रसिद्धये ॥

अत्र स्थायम्भुवे —

“अथात्ममलसन्तानपशुत्वविनिवृत्तये ।
 व्यक्तये च शिवत्वस्य शिवाज्ज्ञानं प्रवर्तते ॥
 तदेकमप्यनेकत्वाच्छिववक्त्राम्बुजोद्भवम् ।
 परापरविभेदेन गच्छत्यर्थप्रतिश्रयात् ॥”

इति ।

परैः शैवादिभिर्दिव्यैरागमैः पाशमोचकैः ॥ ४४ ॥

विशिष्टभोगविभवशिवत्वफलदायिभिः ।

अपरैरपि वेदाद्यैरागमैः स्वमुखोद्गतैः ॥ ४५ ॥

स्वर्गादिफलसिद्ध्यर्थं पशुज्ञानप्रकाशकैः ।

“अत्र परेण कामिकादिना शिवज्ञानभेदेनापरेण वेदादिना पशुज्ञानभेदेने”ति सद्योज्योतिः ।

तत्र पूर्वं तु शैवाख्यं तन्त्रं शिवमुखोद्गतम् ॥ ४६ ॥

शुद्धशैवमिति ख्यातं शुद्धतत्त्वसमाश्रयात् ।

निष्कलो हि शिवो वक्ति कथं वाक्यादिलक्षणान् ॥ ४७ ॥

आगमानिति चोद्येऽस्मिन् दृष्टं स्वं शब्दलक्षणम् ।

निष्कलो ह्येष मन्त्रात्मा विद्यादेहं समास्थितः ॥ ४८ ॥

विमृजत्यागमान् सृष्टौ स्ववक्त्रेणात्मगोचरान् ।

अत्र किरणे —

“पुंसामनुग्रहार्थं तु परोऽप्यपरतां गतः ।

कृत्वा मन्त्रात्मकं देहं वक्ति तन्त्राण्यनेकधा ॥”

इति ।

शैवागमस्य भेदाः स्युः प्रथमं कामिकादयः ॥ ४९ ॥

ततश्चाष्टादशविधा भेदाः स्युर्विजयादयः ।

अत्र स्वायम्भुवे —

“एकमेव शिवज्ञानं विभिन्नं दशधा पुनः ।

तथाष्टादशधा भूयो भेदान्तरविसर्पितम् ॥”

इति । तद्यथा —

“कामिकं योगजाचिन्त्यकारणान्यजितं तथा ॥

दीप्तं सूक्ष्मं सहस्रं चाप्यंशुमान् सुप्रभेदकम् ।

शिवभेदसमाख्यानि तन्त्राण्येवं दश क्रमात् ॥

विजयं चैव निःश्वासं प्रोद्धातं पारमेश्वरम् ।

आग्नेयं मुखबिम्बं च स्वायम्भुवमतः परम् ॥

रौरवं माकुटं चैव किरणं लम्बितं तथा ।
 चन्द्रज्ञानं वीरभद्रं सिद्धं सान्तानिकं ततः ॥
 शर्वोद्गीतं च विमलं वातूलं चेत्यनुक्रमात् ।
 रुद्रभेदोद्भवान्येव तन्त्राण्यष्टादशैव हि ॥
 एषां भेदोपभेदाश्च तत्तत्प्रकरणान्यपि ।
 सुबहूनीत्यतोऽस्माभिर्निर्दिश्यन्ते न नामभिः ॥
 उपभेदेन भेदानामस्य संख्या न विद्यते ।
 भेदान्तराणि सर्वाणि महान्ति न महान्त्यपि” ॥

इति । स्वायम्भुवे —

“पुनः स्वेच्छावतारेषु तन्त्रं पाशुपतं तथा ।
 वाकुलं सोमतन्त्रं च जगाद परमेश्वरः ॥
 तत्र शैवं हि मुख्यं स्याद् यदादौ शिवभाषितम् ।
 एभिः शैवादिभिस्तन्त्रैश्चतुर्भेदविलक्षितैः ॥
 दीक्षादिसक्त्याचर्याज्ञानयोगैर्महेश्वरः ।
 दुःखपङ्काद् भवाम्भोवेस्तारयत्यमलान्गून् ॥
 अपरागमभेदोऽपि प्रथमो दशधा स्मृतः ।
 ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः साम चाथर्व एव च ॥
 शिक्षा कल्पो निरुक्तं च च्छन्दो ज्यौतिषमेव च ।
 ततो व्याकरणं चैव वेदानामित्यतो दश ॥
 मीमांसा न्यायशास्त्रं च पुराणं स्मृतिरेव च ।
 चतुर्भेदा हि विद्यास्ताः सर्वास्त्वेवं चतुर्दश ॥
 एतासामपि विद्यानां वेदादीनां पृथक् पृथक् ।
 शाखाश्च संहिताभेदाः शास्त्रभेदाश्च नैकधा ॥
 संख्यातुं प्रायशोऽशक्याः शिवेच्छातः प्रवर्तिताः ।
 तदेकप्रत्ययात् साध्यैरग्निष्टोमादिकर्मभिः ॥
 नित्यैर्नैमित्तिकैः काम्यैरिष्टापूर्तैश्च नैकधा ।
 स्वर्गादिपाशवान् भोगानिह चामुत्र चाप्नुयात् ॥

अत्र केचित्तु वेदानामुद्भवं शिववक्तुः ।
 अज्ञानात् सहन्ते यत् तन्न वेदहितावहम् ॥
 पदवाक्यार्थसन्दर्भगर्भा शब्दमयी श्रुतिः ।
 बुद्धिमत्पुरुषोदीर्णा नान्यथैवं प्रदृश्यते ॥
 तत्र ह्यासप्रणीतत्वं शिष्टस्वीकरनिश्चितम् ।
 अनासककर्तृकत्वं च न श्रुतेः श्रूयते कश्चित् ॥
 तस्मादत्यन्तमासेन शिवेन श्रुतयोऽखिलाः ।
 प्रणीताः सर्वकर्त्रेति प्रमाणं जायते सताम् ॥”

अपिच,

इह वेदपङ्क्तानां शिक्षार्दानां जगत्रये ।
 सिद्धं हि पौरुषेयत्वं सूत्राणां तन्मतेऽपि च ॥ ५० ॥
 अङ्गाङ्गिभावसम्बन्धो द्वेकजातिशरीरवान् ।
 अबलाबालगोपालैरपि लोके सुसम्मतः ॥ ५१ ॥
 न गजाङ्गैरजः सिध्येन्नाजाङ्गैर्वा गजो भवेत् ।
 तत्तदङ्गाङ्गिभावाः स्युरेवं सर्वत्र नान्यथा ॥ ५२ ॥
 वेदाः प्रमाणमीशेन स्वाप्तेन सुधियोदिताः ।
 स्वासप्रणीताङ्गवत्त्वात् तादृक् सूत्रादिमत्तया ॥ ५३ ॥
 यो यो बुद्धिमदासोक्तैः स्वाङ्गैर्युक्तोऽत्र दृश्यते ।
 आयुर्वेदादयो यद्वदुक्तसाध्यं तथा ततः ॥ ५४ ॥

अपि चात्र स्मृतेः —

“अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
 पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या द्वेताश्चतुर्दश ॥”

इति ।

न्यायविस्तरमीमांसापुराणस्मृतयः समम् ।
 पठिता वेदसाधर्म्यात् सपक्षत्वेन वैदिकैः ॥
 मन्वादिभिस्तु निपुणैर्यदासैर्वेदवित्तमैः ।
 सिद्धास्माच्छासयोगीन्द्रबुद्धिमत्कर्तृता श्रुतेः ॥
 अत्र वेदः स्वयं प्राह सिसृक्षोरादिपूरुषान् ।
 जन्मैवाखिलवेदानां विस्पष्टं तद्यथोच्यते ॥

“तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत” ॥

इति ।

अस्मिन्नर्थे पुराणेषु ब्राह्मकूर्मादिकेष्वपि ।
वैष्णवादिषु वाक्यानि सन्ति सृष्टौ प्रजापतेः ॥ ५५ ॥

तद्यथा —

“गायत्रं च ऋचं चैव त्रिवृत् स्तोमं रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दस्तोमं पञ्चदशं तथा ।
बृहत्साम तथोक्थ्यं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ।
सामानि जागतं छन्दस्तोमं सप्तदशं तथा ।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥
एकविंशमथर्वाणमसौर्यामाणमेव च ।
आनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्” ॥

इति ।

यच्चतुर्दशविद्यासु वेदाद्यास्वेकपाठतः ।
अङ्गीकृतं हि प्रामाण्यं पुराणानां तु वैदिकैः ॥ ५६ ॥
एभिः पुराणवाक्यैस्तदनुमेयार्थवृंहिता ।
याजुषी श्रुतिरप्यस्ति ऋचां प्राचीति पूर्विका ॥ ५७ ॥
पूर्वादिचक्रजातत्वात् तत्तद्दिङ्नियमश्रुतिः ।
दृश्यते स्वच्छ वेदानां नो चेद्दिङ्नियमः कुतः ॥ ५८ ॥
तत्त्वैः कलादिपृथग्यन्तैः शरीरं ब्रह्मणोऽप्यभूत् ।
तत्त्वानां कारणं माया मायायाश्च महेश्वरः ॥ ५९ ॥
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मार्थिनं तु महेश्वरम् ।
इत्यादिवचनात् कर्ता ब्रह्मणोऽपि महेश्वरः ॥ ६० ॥
सिद्धः स्कन्दपुराणेऽपि दृश्यते देवकस्तवे ।

तद्यथा —

“ब्रह्मा भूत्वा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
यत् सृजत्यम्बुमध्यस्थं तस्य ब्रह्मात्मने नमः ॥”

इति ।

एतस्मादपि वेदानां वक्ता ज्ञेयो महेश्वरः ॥ ६१ ॥

तथाच न्याये—

“वेदस्य पुरुषः कर्ता नहि यादृशतादृशः ।

किन्तु त्रैलोक्यनिर्माणनिपुणः परमेश्वरः ॥”

इति ।

यद्येवमागमानां हि जन्म सिद्धं महेश्वरात् ।

आदिमत्त्वादनित्यत्वं श्रुतेः स्यादिति केचन ॥ ६२ ॥

वदन्ति चेन्न तत् साधु यतोऽनादिर्महेश्वरः ।

नित्यशुद्धोऽमलो धीमान् मन्त्रविद्यातनुः स्वयम् ॥ ६३ ॥

यास्य विद्यातनुः सापि ह्यनादिरनपायिनी ।

तथाच श्रुतिः—

“या ते रुद्रशिवातनूरघोरापापकाशिनी

तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशंता ॥”

इति ।

तस्मादभिन्ना तत्संस्था लवः काष्ठा कलादिवत् ॥ ६४ ॥

तस्यैवेच्छाक्रियाज्ञानशक्त्युत्कर्षापकर्षतः ।

बिम्बादिपरिणामेन सूक्ष्मान्तर्वर्णसङ्गहात् ॥ ६५ ॥

वैस्वर्यादिपदैर्व्यक्तिं प्राप्यैषा शिववक्त्रतः ।

तद्वता वाग् विनिर्याति शश्वद् वेदागमात्मिका ॥ ६६ ॥

सा वागुत्पत्तिरत्रापि परतः किञ्चिदुच्यते ।

तां वाचमुपजीवन्ति विश्वे विश्वेश्वरोदिताम् ॥ ६७ ॥

सिसृक्षुर्विसृजत्येनां पुनर्भसति संहतौ ।

सृष्टिं करोति कारुण्यात् पुंसां भुक्त्यै च मुक्तये ॥ ६८ ॥

खिन्नानामिह संसारे विश्रमार्थं च संहृतिम् ।

अनादिः स शिवो मुख्यो यथान्येभ्यो विलक्षणः ॥ ६९ ॥

तथा तद्वदेनोदीर्णा वाचोऽन्याभ्यो विलक्षणाः ।

शिवागमाश्च वेदाश्च नित्या एव प्रमाणतः ॥ ७० ॥

नित्यः शिवागमा वेदैः शिवेनादावभेदतः ।
 नित्यस्थितास्त्वभिव्यक्तास्तस्मिंस्तेऽनादयो यतः ॥ ७१ ॥
 यद् यन्नित्ये स्थितं शश्वदभिव्यक्तं च तन्मुखात् ।
 नित्यमेव यथा कालकलाकाष्ठादिनादयः ॥ ७२ ॥
 तथाच प्रकृतं तस्मादुक्तसाध्यं न संशयः ।

द्विविधागमानामीश्वरप्रणीततया प्रामाण्यस्थापनाधिकारः ।

स सिसृक्षुर्विभुर्विश्वमागमांश्च महेश्वरः ॥ ७३ ॥
 स्वशक्तिव्यक्तिमादधे पूर्णचन्द्रः स्वभामिव ।

अत्र

“चिदचिदनुग्रहेतोरस्य सिसृक्षोर्य आद्य उन्मेषः ।
 तच्छक्तितत्त्वमभिहितमविभागापन्नमस्यैव ॥”

इति । तत्त्वप्रकाशे —

“शिवादभिन्ना सा शक्तिर्नित्या बलवती ध्रुवा ।
 एकाप्यनेककार्याणां व्यक्तये बहुधोदिता ॥”

इति ।

रत्नत्रयेऽपि —

“इच्छाकार्यमनिच्छापि कुर्वाणेच्छा निगद्यते ।
 ज्ञानमज्ञेयरूपापि क्रियामप्यक्रिया सती ॥”

इति ।

तस्मादिच्छाहया शक्तिः क्रियाशक्तिश्च सा भवेत् ॥ ७४ ॥

ज्ञानशक्तिश्च विज्ञेया तत्तत्कार्यप्रवर्तनात् ।

इच्छया प्रेरितो हीशः क्रियया कुरुतेऽखिलम् ॥ ७५ ॥

ज्ञानशक्त्या विजानाति सा च कुण्डलिनी मता ।

साध्याज्ज्ञानक्रियाशक्त्योः प्रसरो यः शिवात्मकः ॥ ७६ ॥

सदाशिवाख्यं तत् तत्त्वं विद्यादेहं शिवात्मकम् ।

तस्मात्तत्त्वं तु परतः पूजाविषय उच्यते ॥ ७७ ॥

ज्ञानशक्तिर्यदा स्वल्पा क्रियाशक्तिस्तथाधिका ।
 तत्रेश्वराख्यं तत्त्वं स्यात् सर्वकर्तृत्ववैभवम् ॥ ७८ ॥
 निमित्तकारणं सुष्टेरीश्वराख्यं क्रियाधिकम् ।
 यथा घटीघटादीनां कुलालः संप्रवर्तकः ॥ ७९ ॥
 क्रियाशक्तिर्यदा स्वल्पा ज्ञानशक्तिस्तथाधिका ।
 शुद्धविद्याख्यतत्त्वं तज्ज्ञानरूपप्रकाशकम् ॥ ८० ॥

यथा तत्त्वप्रकाशे —

“न्यग्भवति कर्तृशक्तिर्ज्ञानाख्योद्रेकमश्नुते यत्र ।
 तत्तत्त्वं विद्याख्यं प्रकाशकं ज्ञानरूपत्वात् ॥”

इति ।

बिन्दुनादौ यदा स्निग्धौ सदाशिवसमाश्रयौ ।
 तत्र विद्येश्वरा जाताः श्रीकण्ठानन्तपूर्वकाः ॥ ८१ ॥
 यत्र विद्याह्वयं तत्त्वं बिन्दुनादशिवाश्रयम् ।
 तत्र विद्याश्च मन्त्राश्च स्फुरन्त्यब्धौ तरङ्गवत् ॥ ८२ ॥

अत्र तत्त्वप्रकाशे —

“आद्याननुगृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ ।
 मन्त्राश्च करोत्यपरांस्ते चोक्ताः कोटयः सप्त ॥”

इति । रत्नत्रयेऽपि —

“तत्र बिम्बाभुजः पूर्वे मन्त्रा विद्याश्च नामतः ।
 विद्येश्वरनियोज्यास्ते संख्याताः सप्तकोटयः ॥”

इति ।

इत्थं शिवादिविधान्तं शुद्धतत्त्वानि पञ्च हि ।
 येषां व्यतिकराद् विद्येश्वरविद्यादिसम्भवः ॥ ८३ ॥
 विद्याविद्येशमन्त्राणां सामर्थ्यादीश्वरेच्छया ।
 अशुद्धतत्त्वं मायाख्यमिन्द्रजालवदुद्भवी ॥ ८४ ॥

तत्र गायतत्त्वमिन्द्रजालबीजम् । तदभिज्ञो भगवान् मायाकन्दली-
कन्दः शिवो मलविदारणेन स्वयमभिव्यनक्ति । सा हि स्वयं न सती ।
यदि सती भवेद् मायैव न स्यादिति षट्त्रिंशत्तत्त्वसिद्धौ । तथाहि—

“मायाविना न मायास्ति विना मायी शरीरवान् ।

दृष्टोऽस्मिन्निन्द्रजालादौ यथा लोके प्रयोजकम् ॥ ८५ ॥

तथा कलादितत्त्वानां मायोपादानमिष्यते ।

अचेतनं चेतनवत् प्रतिभाति विचित्रकम् ॥ ८६ ॥

असत् स्वतः सदाभासमिन्द्रजालं यथा तथा ।

तां मायां शक्तिभिः स्वाभिर्विक्षोभ्य परमेश्वरः ॥ ८७ ॥

स्वकर्मानुगुणं सृष्टिं करोति करुणानिधिः ।

तस्यां कालकलादीनि पञ्च तत्त्वान्यनुक्रमात् ॥ ८८ ॥

प्रभवन्त्यविशुद्धानि यथा तत्त्वप्रकाशके ।

“पुंसोऽज्ञकर्तृकार्थं मायातस्तत्त्वपञ्चकं भवति ।

कालो नियतिश्च कला अशुद्धविद्या च रागश्च ॥”

इति ।

तत्र कालाह्वयं तत्त्वं त्रिविधं भूतपूर्वकम् ॥ ८९ ॥

वर्तमानं भविष्यञ्च जाग्रत् कलयति स्फुटम् ।

तथा नियतितत्त्वं च जातं नियमनात्मकम् ॥ ९० ॥

जातं तथा कलातत्त्वमणूनां मलमेकतः ।

कलयित्वा व्यञ्जयति कर्तृशक्तिं यतः कला ॥ ९१ ॥

“मलं नृणामेकतस्तु कलयित्वा व्यञ्जयति कर्तृशक्तिमि”ति तत्त्वप्र-

काशे ।

कलोद्बलितसामर्थ्यकर्तृशक्तेः प्रवर्तिका ।

अशुद्धविद्या सा पुंसां विषयाणां प्रदर्शिनी ॥ ९२ ॥

“पुंसो विषयप्रदर्शनार्थमथो विद्यातत्त्वं सूते प्रकाशकमि”ति तत्त्व-

प्रकाशे ।

विद्यातो रागतत्त्वाख्यं जातमर्थेषु पूरुषः ।

प्रवर्तयत्यभिष्वङ्गाद् विषयेष्वभिरञ्जकम् ॥ ९३ ॥

तत्त्वैरोभिर्निबद्धोऽसावणुभोक्तृत्वमागतः ।

तत्त्वं पुरुषसंज्ञं स्यात् कर्तृशक्त्युपबृंहितम् ॥ ९४ ॥

तथाहि —

“तत्त्वैरेभिः कलितो भोक्तृत्वदशां यदा पशुर्नीतः ।

पुरुषाख्यतां तदायं लभते तत्त्वेषु गणनां च ॥”

इति ।

पुरुषादस्य भोगार्थं तत्त्वं प्रकृतिसंज्ञितम् ।

जातं त्रिगुणसाम्येन तदेवाव्यक्तमिष्यते ॥ ९५ ॥

बुद्ध्यादितत्त्वविकृतेः प्रकृतित्वात् तथा स्मृतम् ।

गुणसाम्यात् तदव्यक्तगुणमव्यक्तसंज्ञितम् ॥ ९६ ॥

बोद्धव्यलक्षणा सै प्रकृतिः शक्तिर्बृंहिता ।

बुद्धितत्त्वं भवेद् ० क्तं सात्त्विकं मुणमाश्रिता ॥ ९७ ॥

सैव बुद्धिर्महान् नाम तत्त्वं सांख्यैर्निगद्यते ।

अव्यक्तमेव तु व्यक्तसत्त्वरजसतामसैः ॥ ९८ ॥

स्यादहङ्कारतत्त्वं तन्मोहाहम्मानलक्षणम् ।

सोऽहङ्कारस्त्रिभेदः स्यात् पृथक् सत्त्वादिभेदवान् ॥ ९९ ॥

सात्त्विकस्तैजसो नाम वैकारी राजसः स्मृतः ।

भूतादिस्तामसस्तेऽपि पृथक् तत्त्वान्यवामृजन् ॥ १०० ॥

“तैजसतस्तत्र मनो वैकारिकतो भवन्ति चाक्षाणि ।

भूतादेस्तन्मात्राण्येषां सर्गोऽयमेतस्मात् ॥”

इति तत्त्वप्रकाशे ।

इच्छारूपं मनस्तत्त्वं ससङ्कल्पविकल्पकम् ।

तैजसादेव सञ्जातं जडं तच्च निरन्वयम् ॥ १०१ ॥

वैकारिकात् तु जातानि श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी तथा ।

जिह्वा घ्राणं च पञ्चैव तानि बुद्धीन्द्रियाणि हि ॥ १०२ ॥

तथा वाक् पादपाणी च पायूपस्थेन्द्रिये अपि ।

वैकारिकाख्यादेव स्युः पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि ॥ १०३ ॥

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
 तन्मात्राण्येव विषया भूतादेरभवन् क्रमात् ॥ १०४ ॥
 तन्मात्रेभ्यस्तु जातानि खानिलाग्न्यब्धराः क्रमात् ।
 गुणोत्तराणि तान्याहुः पञ्च भूतानि सूरयः ॥ १०५ ॥
 श्रोत्रादिपञ्चेन्द्रियाणि शब्दादीनामनुक्रमात् ।
 आधारत्वेन तन्मात्रव्यञ्जकानि भवन्ति हि ॥ १०६ ॥
 उक्तिर्गतिरूपादानं सर्गश्चानन्द एव च ।
 कर्मेन्द्रियाणां कर्माणि नियतानि पृथक् पृथक् ॥ १०७ ॥
 परस्परानुप्रविष्टैर्महाभूतैश्चतुर्विधैः ।
 व्याप्ताकाशैर्जगत् कार्यं दृश्यं निष्पाद्यतेऽखिलम् ॥ १०८ ॥
 अत्र सांख्यादयो ब्रूयुः पञ्चविंशतिसङ्ख्यया ।
 तत्त्वानि वा चतुर्विंशन्नास्ति तत्त्वमतः परम् ॥ १०९ ॥
 एतावता जगत्सिद्धेः कस्मात् तत्त्वान्तराश्रयः ।
 इत्यादिकः प्रलापोऽयं तेषामर्थं न साधयेत् ॥ ११० ॥
 कथमित्यत्र तद् ब्रूमस्तत्त्वैरन्यैः प्रयोजनम् ।

तद्यथा —

“न भूतेन्द्रियतन्मात्रैर्नैवान्तःकरणैः पुमान् ।
 रज्यते विषयार्थेषु रागतत्त्वं हि रज्जकम् ॥”

रागकामावित्यनर्थान्तरम् ।

“रागाद्धि कामयत्यर्था (?) प्रवृत्तिः कामतो भवेत् ।
 तस्माद् रागाह्वयं तत्त्वमस्तीत्येवावगम्यताम् ॥
 तद्वद् रागादिभूम्यन्ततत्त्वानां विषयादिषु ।
 परोपलम्भशक्तेर्यन्नाभिव्यञ्जकता भवेत् (?) ॥
 परोपलम्भशक्तेर्यद् व्यञ्जकं तत् प्रचक्षते ।
 विद्यातत्त्वं हि रूपादिबोधे नेत्रादिकं यथा ॥”

इति तत्त्वसिद्धौ ।

तस्माद् विद्याह्वयं तत्त्वमस्तीत्येवावधार्यताम् ॥ १११ ॥

तथा विद्यादिभूम्यन्ततत्त्वप्रच्छादकं मलम् ।

अनादिविश्वगं भेतुं कलातत्त्वमृतेऽन्यथा (!) ॥ ११२ ॥

“अनादिसिद्धमलतिरोहिते पुंसि भगवतः प्रजापतेरस्य मोहपङ्कादुत्ति-
तीर्षोः कारुण्यान्मायाप्रकृत्युपादानं मलभेदनक्षमं कलातत्त्वमुत्पद्यते” इति
तत्त्वसिद्धौ ।

“तथैव हि कलाद्यैर्यत् तत्त्वैः क्षित्यन्तकैः क्वचित् ।

दिग्देशद्रव्यजात्यादौ नियमो नैव सिध्यति ॥

नियमोऽप्यन्य एवैषां नियन्त्री नियतिर्यतः ।

तस्मान्नियतिसंज्ञं स्यात् तत्त्वमित्यधिगम्यते ॥

यन्नियत्यादिपृथ्व्यन्ततत्त्वैः कालो न सिध्यति ।

तेभ्योऽन्य एव कालोऽस्तीत्यभ्युपेयः परीक्षकैः ॥

तथा कालादिभूम्यन्तैः स्वस्वोपादानगोचरैः ।

अनाश्रयैरशक्यं हि जगत्कार्यप्रवर्तनम् ॥

तस्मात् तदाश्रयीभूता मायास्त्येव दुरन्वया ।

विचित्रचित्रस्फूर्तीनां भित्तिराश्रयणी यथा ॥

इत्थं मायादिपृथ्व्यन्तैर्भिथो नातिविलक्षणैः ।

अशुद्धाध्वनि निष्पन्नमिन्द्रजालोपमं जगत् ॥

मायाकार्येन्द्रजालस्य जडत्वात् स्यान्न कर्तृता ।

भित्त्यादेश्चित्रजालस्य क्रियाकर्तान्य एव हि ॥

तथा मायादिसम्भूतेर्विद्यातत्त्वादिमाञ्छिवः ।

कर्तान्य एव मन्त्रात्मा शब्दवर्णादिकारणम् ॥

तस्मिञ्छिवादौ विद्यान्ते शुद्धाध्वनि सुनिर्मले ।

शब्दविद्याः सविद्येशा दृश्यन्ते व्योमगोचराः ॥

शिवशक्त्योः सन्निकर्षाद् बिन्दुर्नादात्मकोऽभवत् ।

चन्द्रचन्द्रिकयोर्यद्ब्रह्माद्वादगुणसम्भवः ॥

जायतेऽध्वा यतः शुद्धो वर्तते यत्र लीयते ।

स बिन्दुः परनादाख्यो नादबिन्द्वणुकारकम् ॥

इति रत्नत्रये ।

“नादाख्यं यत् परं बीजं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।

मुक्तिदं परमं दिव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥

सान्तं सर्वगतं शून्यं मात्राद्वादशकस्थितम् ।

इस्वा ब्रह्म समाख्याता दीर्घा ह्यङ्गानि षण्मुखे ॥”

इति कालोत्तरे ।

“अथादावभवच्छब्दः कारणादक्षरं ततः ।

अक्षरान्मोक्षदं ब्रह्मन् । ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ॥”

इति स्वायम्भुवे । रत्नत्रयेऽपि —

“स तु शब्दश्चतुर्धा वाग्वैखर्यादिविभेदतः ।

जायते बिन्दुसंक्षोभादनन्तस्यार्थासिद्धये ॥”

“चत्वारि वाक्परिमितापदानि” इति श्रुतिश्च ।

शक्तिर्नादो महामाया व्योमेति च चतुर्विधः ।

बिन्दुरेवास्य तु पुनश्चतस्रो वृत्तयः स्मृताः ॥ ११३ ॥

वैखरी मध्यमा चैव पश्यन्ती चापि सूक्ष्मया ।

व्युत्क्रमेण भवन्त्येताः कुण्डलिन्यादितः क्रमात् ॥ ११४ ॥

सूक्ष्मा कुण्डलिनी मध्ये ज्योतिर्मात्रात्यणीयसी ।

अश्रोत्रविषया तस्मादुद्गच्छन्त्यूर्ध्वगामिनी ॥ ११५ ॥

स्वयम्प्रकाशा पश्यन्ती सुषुम्नामाश्रिता भवेत् ।

सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी ॥ ११६ ॥

अन्तःसञ्जरूपमात्रास्यादविभक्तोर्ध्वगामिनी ।

सैवोरःकण्ठतालुस्था शिरोघ्राणद्विजोपगा ॥ ११७ ॥

जिह्वामूत्रेष्ठनिष्ठचूता कृतवर्णपरिग्रहा ।

शब्दप्रपञ्चजननी श्रोत्रग्राह्या तु वैखरी ॥ ११८ ॥

हकारः सविकारोऽथ रेफेण समयुज्यत ॥ ११९ ॥

ईकारमभजत् तस्माद् बिन्दुनादविभूषितम् ॥ १२० ॥

शक्तिबीजं तु तद्योगादखिलोत्पत्तिकारणम् ॥ १२१ ॥

हरत्वाच्च हरित्वाच्च शिवशक्त्योस्तु युक्तयोः ॥ १२२ ॥
 शिलष्टोच्चारितयोः शाब्दं रूपं तद् बीजमीरितम् ।
 हकारस्तु भवेद् ब्रह्मा ईकारो विष्णुरिष्यते ॥ १२३ ॥
 रेफो रुद्रोऽग्निरेव स्याद् बिन्दुरीश्वर उच्यते ।
 नादः सदाशिवो ज्ञेयो नादान्तस्तु शिवः स्वयम् ॥ १२४ ॥
 हकारो व्यक्तिमापन्नो हार्दषोषविवर्जितः ।
 अकारतां गतस्तस्य भेदो ह्यक्षरसन्ततिः ॥ १२५ ॥
 ऊकारान्तान्यकारादीन्यक्षराणि षडस्य तु ।
 विकृतिः स्याद् विशेषेण रेफस्य तु ऋ ऋ लृ लृ ॥ १२६ ॥
 ईकारभेदतस्त्वासनेकाराद्यक्षराणि षट् ।
 इत्थं षोडशोत्पन्नाः स्वराख्याः शक्तिबीजतः ॥ १२७ ॥
 ऋऋलृलृवियुक्तास्ते द्वादशेत्यपरे जगुः ।
 ह्रस्वस्वरा बिन्दुयुताः पुमांसो ह्यर्करूपिणः ॥ १२८ ॥
 दीर्घस्वरा विसर्गान्ताः स्त्रीलिङ्गाः सोमरूपिणः ।
 ऋऋलृलृचतुष्कं तु सौम्यामेयं नपुंसकम् ॥ १२९ ॥
 हकारः शब्दगुणवानाकाशमसृजत् पुरः ।
 व्योमः स्पर्शगुणो वायुः स्पर्शरूपाः कादयोऽभवन् ॥ १३० ॥
 पञ्चपञ्चाक्षरास्ते तु पञ्चवर्गास्त्विनात्मकाः ।
 याद्यक्षरचतुष्कं तु वाय्वग्निक्षमाम्भसां तनुः ॥ १३१ ॥
 स्पर्शो रूपं तथा गन्धो रसाख्यस्तद्गुणाः क्रमात् ।
 शेषास्तु व्यापकाः शाद्याः सामीषोमाः स्वरस्पृशः ॥ १३२ ॥
 इत्थं पञ्चाशदुत्पन्ना वर्णाः शक्तिप्रभेदतः ।
 कादयः पञ्चविंशार्णा यादयः शादयस्तथा ॥ १३३ ॥
 स्थानप्रयत्नभेदेन जायन्ते खल्वकारतः ।
 अकारादिस्वरैर्युक्तहलां योगान्मिथोऽपि च ॥ १३४ ॥
 शब्दप्रपञ्चः सर्वोऽपि विचित्रं जायते स्फुटम् ।
 इयं हि मातृका ख्याता पञ्चाशद्वर्णसंहतिः ॥ १३५ ॥

अस्यास्तु विकृतिर्विश्वं शब्दजातमिति स्फुटम् ।
 सेयं वाग्देवता स्वार्णमूर्तिर्विद्या शिवात्मिका ॥ १३१ ॥
 सामान्यपादे प्रागेव सविशेषं प्रदर्शिता ।

तत्त्वमातृकाधिकारः ।

बिन्दोर्नादात्मकात् तस्माच्छिवेच्छातः प्रवर्तिताः ॥ १३७ ॥
 कलाः पञ्च निवृत्त्याद्या यासु विश्वं प्रतिष्ठितम् ।
 क्षकारः क्षितितत्त्वं च निवृत्तौ व्याप्य संस्थितम् ॥ १३८ ॥
 तथाहाद्याष्टकारान्तास्त्रयोविंशतिरक्षराः ।
 प्रकृत्यन्तं प्रतिष्ठायां स्यात् कलायां प्रतिष्ठितम् ॥ १३९ ॥
 जादिधान्ताः सप्त वर्णाः पुंसो मायान्तमेव च ।
 सप्ततत्त्वानि विद्याख्यकलायां संस्थितानि वै ॥ १४० ॥
 गखकास्तु त्रयो वर्णाः शुद्धविद्येश्वरा अपि ।
 स्यात् सदाशिवतत्त्वं च शान्त्याख्यायां प्रतिष्ठितम् ॥ १४१ ॥
 अकाराद्यास्त्वकागन्ता विलोमं षोडश स्वराः ।
 शक्तितत्त्वं शिवश्चापि शान्त्यतीतकलोपगाः ॥ १४२ ॥
 इत्युक्ता वर्णतत्त्वानां कलाव्याप्तिः समासतः ।
 तत्त्वानां च मिथो व्याप्तिर्देवतानां च कथ्यते ॥ १४३ ॥
 शक्तिः शिवादिभूम्यन्तं व्याप्य विश्वमवस्थिता ।
 सदाशिवेश्वरौ चापि बिन्दूद्विद्वान्तगोचरौ ॥ १४४ ॥
 सदाशिवादिभूम्यन्तं विद्यातत्त्वं व्यवस्थितम् ।
 मायाकालादिपृथ्व्यन्तं कलातत्त्वं तु सर्वगम् ॥ १४५ ॥
 अतः परं स्यात् तत्त्वानां यथाक्रममवस्थितिः ।
 मायादिक्षमान्तकं रुद्रो विष्णुर्मायाधरावधिः ॥ १४६ ॥
 ब्रह्मा पुमादिभूम्यन्तं व्याप्य तत्त्वेष्ववस्थितः ।
 विद्येश्वरास्त्वनन्ताद्या विद्यातत्त्वं व्यवस्थिताः ॥ १४७ ॥

विघ्नेश्वरसरस्वत्यौ स्यातां तत्त्वे सदाशिवे ।
 नन्दादयोऽपि विद्यायां प्रकृतौ चाण्डिका स्थिताः ॥ १४८ ॥
 लक्ष्मीरीश्वरतत्त्वस्था बुद्धौ चान्यास्तु शक्तयः ।
 शब्दतत्त्वे च सोमार्कौ यजमानोऽपि पूरुषे ॥ १४९ ॥
 स्वस्य कारणसंस्थानि भूताक्षाणि भवन्ति हि ।
 देवयोन्यष्टकं चापि पुर्यष्टकगतं स्मृतम् ॥ १५० ॥
 जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जान्यखिलान्यपि ।
 पृथ्वीतत्त्वगतान्येव शिवशक्तिकलाबलात् ॥ १५१ ॥
 इत्थं संक्षेपतस्तत्त्वव्याप्तिरत्र प्रदर्शिता ।
 एषैव परतो ज्ञेया विस्तरेणाध्वनिर्णये ॥ १५२ ॥
 षट्त्रिंशदेव तत्त्वानीत्येवं केन नियम्यते ।
 तस्य भावः स्मृतस्तत्त्वं तद् घटादौ च दृश्यते ॥ १५३ ॥
 कश्चिदेवं यदि ब्रूयात् तत्र तत्त्वं निरुच्यते ।
 तच्छब्दः प्रकृतार्थे स्यात् त्वम्पदं तस्य भावगम् ॥ १५४ ॥
 सन्ततं यत् तत् तत्त्वं स्थितमाप्रलयादपि ।

यथा तत्त्वसिद्धौ —

“तत्त्वात् सन्तत्त्वाच्च तत्त्वानीति ततो विदुः ।
 तत्त्वं देशतो व्याप्तिः सन्तत्त्वं च कालतः ॥”

इति । अपि च,

“लक्षादि व्योम च व्यापि तत्त्वमाप्रलयात् स्थितम् ।
 अन्यथा स्तम्भकुम्भाद्यमपि तत्त्वं प्रसज्यते ॥”

इति । तत्त्वप्रकाशे च —

“आप्रलयं यत् तिष्ठति सर्वेषां भोगदायि भुवनानाम् ।
 तत् तत्त्वनामधेयं न शरीरघटादिकं तत्त्वम् ॥”

इति ।

षट्त्रिंशदित्थं तत्त्वानि ज्ञेयानि प्रविभागतः ॥ १५५ ॥
 तत्त्वज्ञानं हि तज्ज्ञानमतत्त्वज्ञानमन्यथा ।
 षट्त्रिंशदेव तत्त्वानि विश्वसिद्धैर्यथार्थतः ॥ १५६ ॥

तत्त्वान्तरस्य चाभावात् परतत्त्वानपेक्षया ।

यावता प्रकृतं कार्यं कारणेन प्रसिध्यति ॥ १५७ ॥

नास्त्यत्र कारणं चान्यत् तत्रालं तावतैव हि ।

कुलालचक्रदण्डाम्भोमृत्पिण्डाद्यं घटोदये ॥ १५८ ॥

कारणं चाप्यपेक्ष्यं च नान्यदस्ति यथा तथा ।

तस्मादिदमिह प्रोक्तं साध्यमेव विपश्चिताम् ॥ १५९ ॥

तात्त्विकोऽध्वायमेवं स्याद् विज्ञेयः परतोऽपि यः ।

इत्ययं वस्तुनिर्देशस्तन्त्रेऽस्मिन् प्रतिपादितः ॥ १६० ॥

क्रियादीक्षाप्रतिष्ठादेः साफल्यार्थप्रसिद्धये ।

मुख्ये श्रेयसि भोगमोक्षफलदो विश्वस्य कर्ता सुधीः

स्वास्योदीर्णपरापरागमपरज्ञानाणुसन्तारणः ।

योऽनादिर्विमलो विलक्षणतयान्येभ्यः स्वतन्त्रो विमु-

स्तत्त्वैर्वर्णकलादिभिः स विदुषां वेद्यश्च सिद्धः शिवः ॥ १६१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे

उपरिभागे क्रियापादे वस्तुनिर्देशाख्यः

प्रथमः पटलः ।

अथ द्वितीयः पटलः ।

प्रणम्य भक्त्या प्रथमं गणेश्वरं प्रपञ्चसूतिं च गिरं शिवां शिवम् ।

सपाशविश्लेषशिवत्वबोधिनीं पशोस्तु दीक्षां प्रवदाम्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अत्र मतङ्गे —

“पशुः पाशयिता पाशस्त्रयमेतद् व्यवस्थितम् ।

साध्यसाधकभावोक्त्या यथा तत् प्रकटं भवेत् ॥”

इति ।

य एष देहे नियतस्तु देहभृच्छरीरभिन्नो ह्यशरीरलक्षणः ।

स जीव आत्मा पशुरित्युदीर्यते स्मृतश्च संसारितया पुमानणुः ॥ २ ॥

पशुः पाशः पतिः शक्तिर्विचारश्चेति पञ्चधा ।

पदार्थाः स्युः क्रिया चर्या षष्ठी शैवागमोदिता ॥

पशुः प्रागीश्वरो विद्यायोनिर्मुक्तिरिहान्तिमा ।

इति श्रीपराकृये ।

“इतीह षट्पदार्थानां पृथग् याथार्थ्यनिर्णयः ।

विदित्वा समयी सम्यग् भोगं मोक्षं च विन्दति ॥

न पशुर्नाममात्रेण शरीरी परिभाष्यते ।

शरीरेऽस्मिन् कुतो ह्यात्मा शरीराद् व्यतिरिच्यते ॥”

इति मतज्ञे । तथाहि —

बौद्धाः क्षणध्वंसिनमाहुरेनं विज्ञानसन्तानमयं च युक्त्या ।

तं प्रत्यगात्मानमुशन्ति नित्यं व्यय्यन्तिदन्तिप्रवरास्तथैकम् ॥ ३ ॥

आशाम्बरा देहमितं स्वतन्त्रं तं गर्विचार्वाकपिशाचसङ्घाः ।

प्राहुस्तथा भूतनिकायमात्रदेहेन्द्रियात्मानमिहैकमानात् ॥ ४ ॥

सांख्याः सङ्ख्यापरं त्वेनं प्राहुः प्रकृतिवादिनः ।

बद्धावस्थमकर्तारं मुक्तावस्थागतं विदम् ॥ ५ ॥

जैमिनीयमतैर्ज्ञानी कर्तानेकात्मतां गतः ।

मुक्तौ पाषाणकरूपो वा धर्मज्ञानैकसाधनात् ॥ ६ ॥

नैयायिकादिभिर्भिन्नो बुद्धिदुःखसुखान्वितः ।

इच्छाद्वेषप्रयत्नैश्च धर्माधर्मयुतोऽपि च ॥ ७ ॥

संस्कारवान् नवगुणो ह्यात्मा प्रतितनु स्मृतः ।

शब्दार्थयोरभेदेन ब्रूयुः शब्दात्मनित्यताम् ॥ ८ ॥

बद्धं मुक्तं च तज्ज्ञानाद् येऽमी व्याकरणास्पदाः ।

एवं मिथो विरोधेन ह्यात्मा तीर्थैः पृथक् स्मृतः ॥ ९ ॥

स पशुः पाशितः पाशैः पतिः पाशयिता शिवः ॥ ९१ ॥

पशुस्त्वमूर्तः खलु नित्यनिर्गुणः स निष्क्रियो ज्ञप्रभुदेहगोचरः ।

मलादशुद्धोऽपि च भोक्तृतां गतः स्वकर्मणामीश्वरमायया वृतः ॥ १० ॥

स्वयं तु किञ्चिज्ज्ञतयाथ रागतः स रञ्जितः सत्त्वरजस्तमोगुणैः ।

तथापि बुद्ध्यादिभिरेव बुध्यते विचिन्तको भोगविधानतृष्णया ॥ ११ ॥

तथाच किरणे —

“पशुर्नित्योऽप्यमूर्तोऽज्ञो निष्क्रियो निर्गुणः प्रभुः ।

व्यापी मायोदरान्तःस्थो भोगोपायविचिन्तकः ॥”

इति । वरुणोऽप्याह —

“किञ्चिज्ज्ञो मलिनो भिन्नः कर्ता भोक्ता स्वकर्मणाम् ।

शरीरान्यो विभुर्नित्यः संस्कार्यः सेश्वरः पशुः ॥”

इति । स्वायम्भुवे च —

“अचेतनो विभुर्नित्यो गुणहीनोऽक्रियोऽप्रभुः ।

व्याघाती भोगशक्तश्च शोध्यो बोध्योऽकलः प्रभुः ॥”

इति । पराख्ये च —

“देहाढ्यो नश्वरो व्यापी विभिन्नः समलो जडः ।

स्वकर्मफल(भुक्ता ? भोक्ता) च किञ्चिज्ज्ञः सेश्वरः प्रभुः ॥”

इति । किं बहुना —

यदा नियत्या विनियम्यतेऽवशः पशुः समे कर्मणि कालयोगतः ।

शिवेच्छया शक्तिनिपातशोधितस्ततो विमुच्येत यथार्हदीक्षया ॥ १२ ॥

अत्र —

“समे कर्मणि सञ्जाते कालान्तरवशात् ततः ।

तीव्रशक्तिनिपातेन”

इत्यादिना किरणेऽभिहितत्वाद् दीक्षितस्य पाशमुक्तिः सिद्धेत्यतः
स्त्वदीक्षितो बद्ध एव ।

‘अथात्मा मलिनो बद्धः पुनर्मुक्तश्च दीक्षया’ ।

इति । स्वायम्भुवे । अत्र —

बद्धः पाशैः पशुर्देही सोऽसम्यग्ज्ञानहेतुतः ॥ १३ ॥

गवादिवद् भोक्तृतया यद् यदित्थं तथैव तत् ।

पशुविचाराधिकारः ।

“तथैव पाशास्त्रिविधास्तु देहिनां मलं च मायाप्यथ कर्मसञ्चितम् ।
तदाणवं नाम मलं सहोद्भवं यदेव मायेयककर्मणाह्वयम् ॥

पाशा अपि त्रयो ज्ञेया मलं माया च कर्म च । ”

इति वरुणः ।

“पाशस्तु मलकर्ममाययोस्तेषां पशूनां त्रिविधा ।”

इति रामकण्ठे । स्वायम्भुवे च —

“अथानादिमलं पुंसां पशुत्वं परिकीर्तितम् ।
तुषकम्बुकवज्ज्ञेयं मायापापाङ्कुरस्य तत् ॥
मायातत्त्वं जगद्धीजमविनाश्यं शिवात्मकम् ।
कर्म तद् द्विविधं भोग्यम् ”

इति च ।

“अनात्मभूतेऽत्र कलेबरे पशोर्यदात्मबुद्धिर्ममता च वस्तुषु ।
असत्सु सद्बुद्धिरितीह तत् त्रयं मलाख्यमज्ञानमिदं परिस्फुटम् ॥
सहजो हि मलो माया कार्यमागामिको मलः”

इति किरणे । तथाच मतङ्गे —

“मोहो नाम मलः पुंसां सहजोऽनादिमान् मतः ।
यो हि षण्णां मुदादीनां प्रधानत्वाद् द्विजोत्तमः ॥”

इति । “मलं चाशुद्धिरज्ञानमि”ति वरुणः ।

“मोहो मदश्च मात्सर्यं रागद्वेषौ च तृष्णया ।
लोभश्च सप्तधाज्ञानमलं यत् सहजं पशोः ॥”

इति बृहत्कालोत्तरे ।

“मायेत्युक्ता कलाद्यात्र क्षित्यन्ता तत्त्वसंहतिः ।
यस्यां विश्वप्रपञ्चोऽयं सहाभिः ह्यतिगोचरः ॥
कलादिकं तु तत्कार्यं सूक्ष्मं स्थूलं धरान्तकम् ।
स्वकर्मतः शरीरेऽस्मिन् सम्बद्धमनुमीयते ॥
सर्वकार्यं यतो माति मायातत्त्वमतः स्मृतम् ॥”

इति परारूपे ।

“कला च पूर्वं नियतिश्च विद्या रागः पुमांश्च प्रकृतिश्च बुद्धिः ।
 अहङ्कृतिर्मानसमिन्द्रियाणि दशैव तन्मात्रकपञ्चकं च ॥
 व्योमानिलाग्न्यम्बुधरान्तमेभिस्तत्त्वैः प्रसिध्येत् तनुरत्र भोक्तुः ।
 संसारिणः कर्मवशाद्धि सैषा मायेन्द्रजालप्रतिमा विभाति ॥
 अचेतनं चेतनवद् विचित्रं सर्वत्रगं नित्यमतीव सूक्ष्मम् ।
 यतस्ततः स्थूलमपीह मायातत्त्वं न शक्यं गदितुं यथावत् ॥
 कर्माणि च स्याद् द्विविधं कृतं प्राक् पुण्यात्मकं चाप्यथ पापकं च ।
 ते च त्रिभेदे खलु मानसं प्राग् वाज्जं च शरीरमिति क्रमेण ॥
 त्रैधानि कर्माणि पुनस्त्रिधा स्युः प्रागार्जितानीह च संभृतानि ।
 आगामिकानीति च तानि येषां द्वन्द्वात्मकानीह फलानि भोक्तुः ॥
 अणोरशुद्धस्य शरीरिणोऽस्य मलं हि शुल्बस्य तु कालिमेव ।
 सहैव जातं शिवशक्तिपाताद् रसेन्द्रवेधादिव यात्यभावम् ॥

शिवा नुग्रहयोगात् तु शक्तिपातादनन्तरम् ।

प्रवर्तितायां दीक्षायां पशुत्वादेश मुच्यते ॥

शिवेच्छया परानन्ता शैवी शैवार्थदायिका ।

सा शक्तिरापतत्याद्या पुंसो जन्मन्यपश्चिमे ॥

तन्निपातात् क्षरत्यस्य मलं संसारकारणम् ॥”

इति स्वायम्भुवे ।

तस्य चिद्धानि भक्तिश्च विरागो भवसागरे ।

सम्यग् ज्ञानं शिवत्वस्य व्यक्तिश्चेति भवन्ति हि ॥ १४ ॥

तस्माज्ज्ञानं च भक्तिश्च वैराग्यमिति चात्मनः ।

दीक्षितस्य तु चिद्धानि पशोस्त्वेतानि नाज्जसा ॥ १५ ॥ इति ।

घरुणपाशविचाराधिकारः ।

पतिस्तु शुद्धः शिव एव नित्यस्तृप्तश्च सर्वज्ञगुणः स्वतन्त्रः ।

अनादिबोधोऽयमलुप्तशक्तिः सोऽनन्तशक्तिर्निखिलाध्वपालः ॥ १६ ॥

अत्र रामकण्ठः—“पतिस्तु भगवान्छिवसदाशिवदितत्त्वभेदेन भुवनपञ्चकभेदेन च वक्ष्यमाणः परमेश्वरः” इति ।

अतीत्य तत्त्वानि विराजमानो व्योमाखिलं व्याप्य यतो ह्यरूपः ।

व्योमप्रकाशो भगवानमेयो ह्यनादिमध्यान्तमहेश्वरोऽसौ ॥ १७ ॥

क्रीडन् स बिन्दोरवतीर्य शक्त्या स्वयोपगूढः परमप्रभावः ।

सर्वाध्वकार्यं निखिलं सिसृक्षुः स्वशक्तिजालावरणो बभूव ॥ १८ ॥

स मन्त्रनाथोऽप्युपचारयोगात् स्वमन्त्रपञ्चात्मतनुं व्यधत् ।

अनन्तसूक्ष्मादिभिरष्टसंख्यैः समं तु विश्वेश्वरशक्तिभेदैः ॥ १९ ॥

ईशानमूर्ध्नी पुरुषाख्यवक्त्रामघोरहृद् गुह्यकवामदेवाम् ।

सद्याख्यमूर्तिं त्वञ्च हारिणीं च तथा जनित्रीं च निरोधयित्रीम् ॥

अत्र मतङ्गे—

“तनुर्यस्योपचारेण पञ्चमन्त्रमयी शिवा ।

ईशानमूर्ध्नी पुंवक्रो ह्यघोरहृदयः प्रभुः ॥

उच्यते वामगुह्योक्त्या सद्योमूर्तिस्तथासने ।

हारिणी जननी चैव रोधयित्री च शक्तयः ॥”

इति ।

अनन्तोऽनन्तवीर्यात्मा सूक्ष्मश्चेत्यादिनामि च ।

विघ्नेश्वराः प्रसिद्धाः । समासादेवंविधः पतिः सदाशिवरूपी वा निर्दिष्टः ।

पतिविचाराधिकारः ।

शिवास्य शक्तिः परमार्थसूक्ष्मा चित्तिः स्वतन्त्राखिलसिद्धिहेतुः ।

प्रभेव दीपात् तु शिवादभिन्ना जगद्भवोन्मीलनबोधदक्षा ॥ २१ ॥

तथाच मतङ्गे—

“पत्युः शक्तिः परा सूक्ष्मा जगदुन्मीलनक्षमा ।

तया प्रभुः प्रबुद्धात्मा स्वतन्त्रश्च सदाशिवः ॥

प्रबोध्यते महातेजा ज्ञानशक्तितकृतास्पदः ॥”

इति ।

तत्त्वेन सा चेश्वरसंज्ञितेन युक्ता चतुर्भिर्भुवनैः समग्रा ।

इच्छाक्रियाज्ञानमयी त्रिभेदा भिन्ना पुनः षोडशधा च शक्तिः ॥

तथाच मतङ्गे —

“तत्सामर्थ्यादनन्तस्य तत्तेजः पारमेश्वरम् ।

भेदैः षोडशधा भिन्नमिच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥”

इति ।

संक्षोभणी स्याज्जननी ततश्च स्यात् क्रोधयित्री च तथैव गोप्त्री ।

नेत्री च योक्त्रीत्युदिता परस्तात् त्राणाह्वया वामनियामिका च ॥

रौद्रीत्यतः ह्लाविकया ततोऽपि श्रद्धा परस्तादथ भासनी स्यात् ।

ज्वालिन्यथाह्लादनिकेति गीता स्तम्भिन्यपि स्याद् विकिरा च शक्तिः ॥

क्रमादमी षोडश शक्तिभेदाः प्रोक्ताः शिवो यामिरुर्दीर्णशक्तिः ।

स निष्कलः सन् सकलोपचारात् क्रीडत्यजः कर्तृतया स्म लोकैः ॥

“प्रबोध्यते महातेजा ज्ञानशक्तिकृतास्पदः ।

स्थानभेदेन कर्तृत्वं यस्मात् तस्योदितं सदा ॥”

इति पारमेश्वरे ।

पत्युः शरीरं भुवनक्रियायां भोगाश्च सिध्यन्ति यथेश्वरेऽपि ।

स्थितास्तु तत्त्वाध्वनि शक्तयस्तास्तथा स्वनामानुगुणक्रियाभ्याः ॥

तथाच रामकण्ठः — “शक्तिपदार्थोऽत्रेश्वरतत्त्वेन वक्ष्यमाणभुवनचतुष्टययुक्त-
श्चतुर्थोऽभिधीयते । तदधिष्ठानं विना पुंसां ज्ञानानुत्पादनात् ” इति ।

मतङ्गे च —

“स्वभावस्याप्युत क्रीडा स च क्षोभ इति स्मृतः ।

क्षोभेणातिजवात् कर्तुः शरीरमभवत् पुरा ॥

येनावतीर्य सम्भोगास्तत्त्वादीश्वरसंज्ञितात् ।

व्यापारस्थितयेऽनन्तः कृतवान् भुवनं महत् ॥

एवं क्षोभयिता देवः क्षोभ्याश्च पशवः स्मृताः ॥”

इत्येतस्मात् ,

“क्षोभण्या क्षोभयल्लोकाञ् जनन्या भोगसृष्टिकृत् ।

रोधयिष्या निरुध्याणून् स्वे स्वे कर्मफले न्यसेत् ॥

गोप्या जगद् गोपयति नेष्या विश्वं नयत्यसौ ।

रुक् पाशनिचयो भोक्तुर्येयं द्रावयितुं क्षमा ॥”

इति मतङ्गे ।

पशूनां दुःखसन्तानं विमृज्य प्लाविकाह्वया ॥ २७ ॥
 भोगामृतैः प्लावयति श्रद्धयार्थैश्च योजयेत् ।
 स्वभावाभावभावैश्च भाविन्या भावयत्यणून् ॥ २८ ॥
 संहृत्य विश्वं ज्वालिन्या ज्वालयत्यपि संहृतौ ।
 ह्लादिन्या ह्लादयेद् भोगैर्मोक्षेण च शिवाश्रयात् ॥ २९ ॥
 स्तम्भिन्या स्थापयेद् विश्वं स्वाज्ञायां स महेश्वरः ।
 नानायोनिसहस्रेषु जनिमद् विकिरत्यणून् ॥ ३० ॥
 विकिरण्या चरस्थानुत्रसत्सु बहुधा शिवः ।

मतङ्गे च—

“विकिरिण्या यथोपात्तस्वाङ्गावयवगोचरे ।
 व्यक्तीकरोति जगतः शरीराणि सहस्रधा ॥”

इति ।

इत्थं शिवः षोडशशक्तिभेदैस्तद्भेदजाभिर्यदनन्तशक्तिः ।
 विद्यासमग्रस्वविभूतिजालैर्विश्वं विदित्वा च सृजत्यजस्रम् ॥ ३१ ॥
 तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च नियोगेनाधिरोपिताः ।
 विद्यातत्त्वविधौ शक्त्यस्तासामेव विभूतयः ॥ ३२ ॥

अपिच,

अभ्युद्गताः कर्तुरमोघवीर्याः प्रविस्तृतास्ताश्च जगत्प्रपञ्चे ।
 प्रकाशितं याभिरुदारवृत्तं स्वकं स्वकं कारणकार्यभावात् ॥ ३३ ॥
 उन्मीलिताः पाशविभागयुक्त्या कृताश्च सर्वे पशवः समृद्धाः ।
 भोगेषु युक्त्यावसरागतानां विभाजितं कर्मफलं यथावत् ॥ ३४ ॥
 प्रभोः स्थितास्त्वात्मवशे महत्यस्ताः शक्तयोऽशेषजगत्प्रदीपाः ॥ ३५ ॥

इति ।

शक्तिविचाराधिकारः ।

विचारशब्देन तु पूरुषस्य कर्मानुसाराद् भुवनाध्वनश्च ।
 साधारणेनापि च सृष्टिपूर्वं जगत्त्वसाधारणतोऽपि गीतः ॥ ३६ ॥

षड्विंशतिर्यो भुवनाध्वभेदो विद्यासविद्येश्वरतत्त्वयुक्तः ।

तस्यापि पश्चादिपुरोदितानां मीमांसनं चात्र विचारमाहुः ॥ १७ ॥

विचारपदार्थाधिकारः ।

क्रियेति च स्यादिह कृत्यचक्रं दीक्षादिसंस्कारविशेषयुक्त्या ।

सनित्यनैमित्तिककाम्यकर्म चर्याह्वयं तद्युगलं पदार्थः ॥ १८ ॥

षष्ठः प्रसिद्धः किरणादिकेषु शैवेष्वथैषां तु पदार्थकानाम् ।

व्युत्पादकं यद् भवतीह तन्त्रं तन्नीति धातोरिह धारणार्थात् ॥ १९ ॥

क्रियाचर्यापदार्थाधिकारः ।

दीक्षया शिवत्वव्याप्तिव्यावर्णनप्रसङ्गाच्च पटलस्य प्रथमश्लोके प्रवदा-
म्यथोत्तरमित्युक्तत्वाच्च प्रतिष्ठादिकं क्रियाचक्रमपि क्रियाचर्यापदार्थेऽन्तर्भूतमे-
वोपरिष्ठात् प्रदर्शयते ॥

निगदितमिति शैवतन्त्रबीजं त्विह पशुपाशपतीश्वरीविचारैः ।

फलति यदिह चापि सत्क्रियोऽसं सुरतरुषण्डमिवेष्टकामदोहम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसोर उपरिभागे

क्रियापादे षट्पदार्थविचारो नाम

द्वितीयः पटलः ।

अथ तृतीयः पटलः ।

अथोच्यते नैत्यकमत्र कर्म सामान्यतः सिद्धिकरं यथावत् ।

समस्तवर्णाश्रमलिङ्गभाजामावश्यकं यत् करणीयमेकम् ॥ १ ॥

प्रभावतीप्सुवेव हि तारकासु कालं तु सूर्योदयदर्शनात् प्राक् ।

वदन्ति सन्ध्यां मुनयः प्रभातां तस्यां विनिद्रः शयनं च जघ्नात् ॥ २ ॥

स्मरन् हृदम्भोरुहकोटरस्थं शैवं परं ज्योतिरथात्मसंस्थम् ।

ब्रजेत् समुत्थाय दिशं विशुद्धमम्भः प्रभूतं सुलभं च यस्याम् ॥ ३ ॥

विदूरतो मार्गजलाशयादेश्छन्ने तृणैर्भूमितले निर्वीती ।

उदङ्मुखो याम्यमुखोऽहि रात्रौ त्यक्त्वा मलं चाथ गृहीतशिश्नः ॥ ४ ॥

कर्णावसक्तयज्ञोपवीतोऽवगुण्ठितशिरस्क इति यावत् ।

जलाशयं प्राप्य मृदं विशुद्धामादाय चाष्टाङ्गुलखातलब्धाम् ।

निधाय तां दक्षिणतो धृताभिरद्विस्तु शौचं विधिवत् प्रकुर्यात् ॥ ५ ॥

एकैव लिङ्गे करयोस्तु तिस्रस्तथा गुदे पञ्च मृदः प्रदेयाः ।

नाभे करे द्वादश तत्प्रसङ्ख्याः पाण्योरयं शौचविधिर्हि मुख्यः ॥ ६ ॥

उत्थाय वासः परिधाय सम्यगाजानुसन्धेश्चरणौ करौ च ।

प्रक्षाल्य मृत्स्नासलिलैर्विशुद्धैर्वक्रं च गण्डूषजलैर्विशोध्य ॥ ७ ॥

पृष्ठाग्रजम्बूककुभाश्चकर्णमाल्हरकाशोकलवङ्गजाद्यम् ।

बैकुण्ठतौदुम्बरचम्पकं वा शस्तं बुभुक्षोः खलु दन्तकाष्ठम् ॥ ८ ॥

स्वैरङ्गुलैर्द्वादशभिर्मितं तत् कनिष्ठिकानाहसनं सवलकम् ।

पूर्वमुखोऽघातुपविश्य मौनी प्रदक्षिणं वामरदादधः प्राक् ॥ ९ ॥

मोक्षार्थिनां कण्टकिनस्तु वृक्षास्तद्वच्छिरीषार्जुननक्तमालाः ।

शस्तं ह्यपामार्ग इतीह तेषामष्टाङ्गुलं दन्तविशोधनाय ॥ १० ॥

सनिम्बधात्रीधवसेलुशिमुवानीरकैरण्डतृणैः कुशैर्वा ।

स्थितः प्रजल्पन् शयितोऽथवाद्यात् तैलावसिक्तोऽपि न दन्तकाष्ठम् ॥

नोपोषितः पारणपूर्वकालं न जन्मभे पर्वणि नासिताहे ।

नाप्यष्टमीश्राद्धदिनेषु दन्तान् प्रधावयेदङ्गुलिभिर्नखैर्वा ॥ १२ ॥

अत्र कालोत्तरे —

“प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्यामपि वा गुह । ।

दन्तानां काष्ठसंयोगे महान् दोषोऽभिधीयते ॥”

तद्वत्तु जिह्वामपि मार्जयित्वा तद्वन्तकाष्ठादि विसृज्य दूरे ।

गण्डूषकद्वादशकेन पश्चादाचम्य तु स्नानमुपक्रमेत् ॥ १३ ॥

सरिस्तु गङ्गादिषु मुख्यमुख्यं तीर्थेषु चान्यासु नदीषु मुख्यम् ।

सरस्तटाकादिषु मध्यमं स्यात् स्नानं तु कूपेषु गृहे च नीचम् ॥ १४ ॥

स्नायात् तु कृपादिषु शुद्धपात्रैः स्नातैर्द्विजैरेव समाहृताङ्घ्रिः ।

स्नायात् तु नोष्णाम्भलि कर्मयोग्यं नैतद् यतो रोगिषु सम्मतं तत् ॥

भुवमष्टाङ्गुलां स्नात्वा त्यक्त्वाधो मृदमस्नतः ।

स्नातां मृदं समादाय तत् स्नातं परिपूर्य च ॥ १६ ॥

शिरसा पयसस्तीरे धौते संस्थाप्य तां पुनः ।

शिखया शोधयित्वा तु वर्मणा विभजेत् त्रिधा ॥ १७ ॥

लिप्त्वैकभागमानाभेः प्रक्षाल्याचम्य वाग्यतः ।
 द्वितीयेमास्त्रयुक्तेन दीप्तेनाङ्गानि लेपयेत् ॥ १८ ॥
 प्राणानायम्य सलिले निमज्ज्यास्त्रमनुस्मरन् ।
 कालानलप्रतीकाशं तथोपतटमम्भसि ॥ १९ ॥
 उपविश्य समाचान्तः कृत्वास्त्राद् दिग्विबन्धनम् ।
 शिष्टं तु पूर्वमृद्भागमादायानाभि वारिणि ॥ २० ॥
 स्थित्वा वामकरस्थं तत् त्रिधा तु विभजेत् पुनः ।
 दक्षिणं भागमस्त्रेण प्राक् स्वमूलेन तूत्तरम् ॥ २१ ॥
 अङ्गमन्त्रैः समालभ्य गृहीत्वास्त्रेण दक्षिणम् ।
 हुम्फडन्तेन रक्षायै दशदिक्षु क्षिपेत् सुधीः ॥ २२ ॥
 मूलालब्धेन पूर्वेण जले दक्षिणपाणिना ।
 निक्षिप्य भ्रामयेद् वारि शिवतीर्थमनुस्मरन् ॥ २३ ॥
 अङ्गालब्धार्कदीप्तेन शिष्टभागेन विग्रहम् ।
 सर्वमालिप्य तत्तीर्थं स्वनाम्नावाह्य पूजयेत् ॥ २४ ॥
 गन्धपुष्पैर्यथालाभं मनसा वा समाहितः ।
 मुख्यनद्यब्धितीर्थेषु नान्यतीर्थानि कीर्तयेत् ॥ २५ ॥
 कीर्तनान्निष्फलं तत् स्यात् कुध्येचातो न कीर्तयेत् ।
 केवलाम्भस्सु गङ्गादितीर्थानां कीर्तनं स्मृतम् ॥ २६ ॥
 तत्तत्फलप्रदं तस्मात् तत्तत्तीर्थानि कीर्तयेत् ।
 ततः प्राणान् समायम्य त्रिर्निमज्ज्य समाहितः ॥ २७ ॥
 निमग्न एव साङ्गं स्वमूलं शक्त्या जपेद्दृष्ट्वा ।
 एकाशीतिपदं मन्त्रं जपेच्छक्तोऽघमर्षणे ॥ २८ ॥
 द्विजश्चेद् वैदिकं सूक्तमाघमर्षणिकं जपेत् ।
 हिरण्यशृङ्गमित्यादि यथोक्तं पूर्वपद्धतौ ॥ २९ ॥

यथा जलोद्भे लवणस्य सञ्चयः प्रयाति सद्यो विलयं महानपि ।
 तथा महानप्यघमर्षणोऽहसां चयो विनाशं व्रजतीति निश्चितम् ॥ ३० ॥
 ततः स्थितो वारिणि वामदक्षिणौ करौ शशाङ्कार्कशिवद्वयात्मकौ ।
 विभाव्य मूलेन च कुम्भमुद्रया शिरस्यथाङ्गैरपि चाभिषेचयेत् ॥ ३१ ॥

ततोऽम्भस्तटमागत्य कौपीनं मेखलामपि ।
परिवर्त्याथवा शुक्ले वाससी परिधापयेत् ॥ ३२ ॥

यथा ब्रह्मशम्भुः —

“द्वितीयं हस्तविस्तीर्णं कौपीनं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रयोदशाक्षसङ्कोचं सत्सूत्रगुणमेखलम् ॥”

ब्रह्मचारिग्रहणमुपलक्षणं यतीनां लिङ्गिनामपीत्यर्थः ।

स्नातो नाङ्गानि निर्धृज्यात् पाणिना वार्द्धवाससा ।
तथा नेक्षेत पाषण्डिपातकिश्चान्त्यजाशुचीन् ॥ ३३ ॥
प्रमादाद् यदि वीक्षेत पुनः स्नात्वा विशुध्यति ।
चिताचण्डालयूपश्वचितिकाष्ठादिरासभान् ॥ ३४ ॥
वराहकुक्कुटोदक्यासृगालोलूकवायसान् ।
सूतकीशावकाशौचिमहापातकिनोऽशुचीन् ॥ ३५ ॥
स्पृष्टा देवलकं चापि सचेलो जलमाविशेत् ।
नैमित्तिकेषु कृत्येषु ग्रहणेन्दुक्षयादिषु ॥ ३६ ॥
अयनद्वयतीर्थादौ सचेलः स्नातुमर्हति ।
सन्ध्यासु वपने शुक्लविण्मूत्रोच्छिष्टकुष्ठिनाम् ॥ ३७ ॥
सम्पर्के वमने चाब्धेः स्पर्शने चाप्यपर्वणि ।
वृषलमतिलोमानां मार्जारस्पर्शनेऽपि च ॥ ३८ ॥
श्मश्रुकर्मणि चोत्तीर्य नदीं वारुणमाचरेत् ।
दानादौ स्नानजप्यादौ तर्पणे हवनेऽपि वा ॥ ३९ ॥
सर्वत्र सपवित्रः स्यादन्यथा स्यात् तदामुरम् ।
यद्वा मुक्तशिखो नम्रः प्रलपन् वावगुण्ठितः ॥ ४० ॥
करोति कृत्यं दैवादि सर्वं विद्यात् तदामुरम् ।
अथानुदित आदित्ये सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ॥ ४१ ॥
तत्र पूर्वं तु मृत्तोयैः क्षालिताङ्घ्रिकरद्वयः ।
द्विराचामेद् यथाकल्पं स्वागमस्मृतिचोदनात् ॥ ४२ ॥

तद्यथा —

अङ्गुल्यग्रे दैवमङ्गुलमूले ब्राह्मं तीर्थं पर्वसन्धिष्वथार्षम् ।
 प्राजापत्यं स्यात् कनिष्ठामधोऽथ पित्र्यं तर्जामूलदेशे द्विजानाम् ॥ ४३ ॥
 हस्ते तूक्तं दक्षिणे तत्तले स्यादाग्नेयाख्यं तीर्थमन्यत्र सौम्यम् ।
 दैवं चान्यत् कर्म कुर्यात् स्वतीर्थादाचामेतु ब्रह्मतीर्थेन तोयैः ॥ ४४ ॥
 ज्येष्ठाग्रेऽग्निस्तर्जनीमूर्ध्नि वायुर्मध्याग्रेऽर्कोऽनामिकाग्रे सुरेन्द्रः ।
 प्राजापत्यः स्यात् कनिष्ठेति देवैरङ्गुल्यः स्युर्दक्षिणे विप्रपाणौ ॥ ४५ ॥
 अत्र विप्रशब्दग्रहणमुपलक्षणं दीक्षितानां द्विजातीनामित्यर्थः ।
 प्राग्वक्त्रो वोदङ्मुखः सोपवीतो बद्धा चूडां जानुमध्यस्थबाहुः ।
 तोयापेक्षी सूपविष्टोऽथ मौनी स्यादाप्रहस्त्वेकधीराचामिष्यन् ॥ ४६ ॥

अदुष्टरसगन्धाद्यैरकीटाफेनबुद्बुदैः ।
 अनुष्णैरम्बुभिः शुद्धैराचामेदभिर्वीक्षितैः ॥ ४७ ॥
 आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैरीश्वरायनमोन्तकैः ।
 प्रणवाद्यैः पृथग्युक्तं त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम् ॥ ४८ ॥
 हस्तं गोकर्णवत् कृत्वा यवमग्नमितं जलम् ।
 पिबेदशब्दवद् ब्रह्मतीर्थेन त्रिर्थादेतम् ॥ ४९ ॥
 ओष्ठावस्त्रेण सम्मृज्य खानि सर्वात्मना स्पृशेत् ।

कालोत्तरटीकायां —

“हृत्कण्ठास्यगताः पुनन्ति विविनैवापो द्विजातीन् क्रमात्
 त्रिः पीता वृषलस्त्रियावपि तथा कुण्डानुलोमादिकान् ।
 आचम्य त्रिरपस्त्रिवेदपुरुषाः प्रीणन्ति निर्माष्टि यद्
 द्विः सार्धवर्षडङ्गयज्ञपुरुषाः प्रीताः स्युरप्यग्नयः ॥
 प्रीणात्यर्कमनामिका नयनयोः स्पर्शात् तथाङ्गुष्ठयुक्
 साङ्गुष्ठा त्वथ तर्जनी सममिता प्राणद्वये मारुतान् ।
 अङ्गुष्ठेन कनिष्ठिका श्रवणयोराशां च नाभेर्वसू-
 नात्मानं तु हृदोऽस्योर्दिवमृषीन् मूर्ध्निः समस्ताङ्गुलैः ॥”
 इत्थं सन्यग् द्विः समाचम्य शुष्येदुच्छिष्टे वा क्षालने पादयोश्च ।
 कक्ष्यामोक्षे वा शिखाबन्धमोक्षे निष्ठीवे वा जृम्भिकायां क्षुते च ॥ ५० ॥

ज्ञानाचमेनाधिकारः ।

हृत्थमाचम्य तु ततः सन्ध्यावन्दनमाचरेत् ॥ ५१ ॥

तत्र प्राग्वैदिकात् तन्त्रसन्ध्या मन्त्राहुया ततः ।

क्षत्रवैश्यावपि तथा ह्यन्ये केवलतान्त्रिकीम् ॥ ५२ ॥

ईशानपुरुषाघोरवामदेवा यथोदिताः ।

सद्यश्च सचतुर्थामी(!) नमोन्ताः पञ्च ते पृथक् ॥ ५३ ॥

हृच्छिरश्च शिखा वर्म नेत्रमस्त्रं च षट् क्रमात् ।

षडङ्गानि सजातीनि मूलं प्रासादसंज्ञितम् ॥ ५४ ॥

अस्त्रं पाशुपतास्त्रं चेत्येषा स्यान्मन्त्रसंहिता ।

अत्र कालोत्तरे —

“ब्रह्माणि च शिवं साङ्गं नेत्रं पाशुपतं च यत् ।

समासात् कथितः सर्वो मन्त्रोद्धारस्त्वयं शुभः ॥”

इति ।

शिवाङ्गान्यत्र लिख्यन्ते वक्ष्यमाणक्रियासमे ॥ ५५ ॥

ओं हां शिवाय हृदयाय नमः । ओं हीं शिवाय शिरसे स्वाहा । ओं
हूं शिवाय शिखायै वषट् । ओं हैं शिवाय कवचाय हुम् । ओं हौं शिवाय
नमः नेत्रत्रयाय वौषट् । ओं हं शिवाय नमः अस्त्राय फट् ।

षष्ठवर्गद्वितीयं तु चतुर्थाद्येन भूषितम् ।

द्वितीये प्रथमार्णं तु पञ्चमाद्येन संयुतम् ॥ ५६ ॥

एतत् पाशुपतास्त्रं स्यात् सोपदेशं यथाक्रमात् ।

एतदेव शिवास्त्रेण युक्तं विघ्नान्निहन्ति हि ॥ ५७ ॥

गन्ध तुलितकरयोस्तु मिथोऽपवर्षात्तालत्रयास्त्रववारितविघ्नसङ्घः ।

ज्येष्ठादिकाङ्गलिषु युग्मकनिष्ठिकान्तमीशानपूर्वकप्रनूर् कमशो न्यसेच्च ॥ ५८ ॥

ह्रस्वैः स्वरैस्तु बिन्द्वन्तैर्युक्तं व्योमाक्षरं यथा ।

ओकाराद्यमकारान्तमीशानाद्यैर्न्यसेत् तथा ॥ ५९ ॥

अथाङ्गमन्त्रैस्तु पुनः कनिष्ठादिषु विन्यसेत् ।

ज्येष्ठान्तमस्त्रमन्त्रं तु तलयोरुभयोरपि ॥ ६० ॥

नष्टाङ्गुष्ठा बद्धमुष्टिरैशानी स्यादवाङ्मुखी ।

शेषाः स्युः पुरुषादीनामङ्गुल्यो ज्येष्ठिका ग्रहाः ॥ ६१ ॥

पञ्चब्रह्मोदिता मुद्रा न्यासेष्वेवं क्रमोदिताः ।
 ताभिर्मूर्धास्यहृद्गुह्यपादाद्यामस्तकांस्तनोः ॥ ६२ ॥
 ईशानादीन् स्वमन्त्रैस्तु मूर्ध्नि मस्तकपूर्वतः ।
 दक्षिणे चोत्तरे पश्चाद् भागेषु शिरसो न्यसेत् ॥ ६३ ॥
 स्वाङ्गानि हृदयादीनि स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत् ।
 पञ्चब्रह्ममुखं स्वैक्यं विद्यादेहं सदाशिवम् ॥ ६४ ॥
 सन्ध्योपास्यार्चनादौ च शिवोऽहमिति भावयेत् ।
 सकलीकरणाधिकारः ।

अत्र कालोत्तरे .

“कृतविद्यातनुः सन्ध्यां ध्यात्वा कालक्रमेण तु ।
 उपस्थितारुणश्चेतश्यामलाभां विभागशः ॥
 ब्रह्मादिकारणोपाधिभेदभिन्ना विभाविनी ।
 साक्षिणी कर्मणां शम्भोः शक्तिः सन्ध्येति गीयते ॥
 तत्प्रभामण्डलाभोगप्रविष्टात्मानस्तनुम् ।

कुर्यात् ” इति ।

तद्यथा —

हंसारूढां स्वतेजोगणमणिवसनालेपनामञ्जनेत्रां
 वेदास्यामक्षमालां स्रवमथ कलशं दण्डमप्यादधानाम् ।
 ध्यायेद् दोर्भिश्चतुर्भिस्त्रिभुवनजननीं पूर्वसन्ध्यां तु वन्द्यां
 सावित्रीमृक्सवित्रीमभिनववयसं मण्डले चण्डरश्मेः ॥ ६५ ॥
 तार्क्ष्यारूढाम्बुजाक्षीं शतमखमणिभा शङ्खचक्रे दधानां
 दोर्भिर्युक्तां चतुर्भिः स्थितिरिह जगतां या यजुंष्युद्विरन्ती ।
 व्यालोलानेकहारद्युतिरुचिरुचिरा वैष्णवी मध्यमेऽहः
 सावित्री ध्येयरूपा विलसति सवितुर्मण्डले पीतवस्त्रा ॥ ६६ ॥
 पञ्चवास्यां पिङ्गविद्युत्ततिरुचिरजटामण्डलां चन्द्रमौलिं
 रङ्गद्भवाभुजङ्गोत्फणमणिकिरणोद्भासिभस्माङ्गरागाम् ।
 ध्यायेत् खट्वाङ्गशूलाभयवरदकरां व्याघ्रचर्माम्बराढ्यां
 सावित्रीं सन्निनेत्रां परिणतवयसं सामसूतिं दिनान्ते ॥ ६७ ॥
 प्रतिसन्ध्यं क्रमात् सन्ध्यां पृथग्रूपां विचिन्त्य तु ॥ ६८ ॥

स्वदक्षिणेतरो हस्तावग्रीषोमात्मकौ पुनः ।
 शिवशक्त्यात्मकौ ध्यात्वा तोयमादाय दक्षिणे ॥ ६९ ॥
 शिवतीर्थमनुस्मृत्य गङ्गादिसरिदन्वितम् ।
 जपित्वा संहितां कुम्भमुद्रया मूर्ध्नि योजयेत् ॥ ७० ॥
 दक्षिणेन पुनस्तोयं हस्तेनादाय चास्रतः ।
 तद्दामहस्ते विन्यस्य दिव्यं ध्यात्वा सुधामृतम् ॥ ७१ ॥
 ततः सुताम्भसो बिन्दून् दक्षिणेन करेण तु ।
 आदाय सपवित्रेण पठन् वै संहितामनून् ॥ ७२ ॥
 अभ्युक्षन् योजयेन्मूर्ध्नि शेषं हस्तेऽथ दक्षिणे ।
 ज्वलज्ज्योतिर्मयं ध्यात्वा दक्षिणघ्राणसङ्गमात् ॥ ७३ ॥
 शरीरान्तर्गतं पापं निःशेषेण तमोमयम् ।
 तज्ज्योतिष्प्रभया क्षिप्तं वामनासाविनिर्गतम् ॥ ७४ ॥
 चिन्तयेत् पुनरस्त्रेण दह्यमानं भुवि क्षिपेत् ।
 सर्वपापक्षयकरं ह्येतदप्यघमर्षणम् ॥ ७५ ॥

ओं हौं शिवात्मने सूर्याय नमः ।

आदायाञ्जलिना तोयं मन्त्रेणानेन भानवे ।
 त्रिरूर्ध्वमुत्क्षिप्य पुनराचम्याभिमुखो रवेः ॥ ७६ ॥
 जपित्वा शिवगायत्रीं प्रासादाद्यन्तसंयुताम् ।
 अष्टोत्तरशतं शक्त्या दशमात्रमथापि वा ॥ ७७ ॥
 शिवात्मानं रविं ध्यात्वा त्रिधा कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
 अभिवाद्याप्यनुज्ञाप्य तर्पणं प्रारभेत च ॥ ७८ ॥
 धृतोत्तरासङ्गपवित्रपाणिर्ब्रह्माणि चाङ्गानि च मूलमन्त्रम् ।
 चतुर्मुखं चाप्यथ विष्णुरुद्रौ तथेश्वरं चापि सदाशिवं च ॥ ७९ ॥
 स्वाहानमोन्तं निजनामधेयैः सन्तर्प्य शीतैः सलिलैर्विशुद्धैः ।
 तारं पदद्वन्द्वमुदीर्य पश्चात् स्वाहान्तवाग्वादिनिशब्दयुक्तम् ॥ ८० ॥
 इन्द्रादिदिकपालदिशः स्वनाम्ना युक्तं चतुर्थ्यर्थं नमोन्तकं च ।
 सन्तर्प्य चोर्ध्वमपि नाकपृष्ठां तथा धरां चापि च नागभोग्याम् ॥ ८१ ॥
 इति दशदिक्तर्पणम् ॥

इन्द्राग्निवैवस्वतराक्षसेशतोयेशवाय्वर्थपतींश्च सोमम् ।

ईशाह्वयं विधसमप्यनन्तं प्राग्वत् स्वनाम्ना दक्ष तर्पयेत् तान् ॥ ८२ ॥

तत्र सोमं धनदादिशि इन्द्रेशानयोर्मध्ये ब्रह्माणमूर्ध्वदिक्पतिं निर्वर्त्तित-
वरुणयोर्मध्येऽनन्तं मधोदिक्पतिं विद्यादित्युपदेशः ।

इति दिक्पतितर्पणम् ।

अत्रिस्तद्वत् कौशिकारुयः पुलस्त्यो भारद्वाजश्चाङ्गिराः स्याद् वसिष्ठः ।

दक्षोऽथान्यः स्याद् भृगुर्वै मरीचिश्चैतान् प्राग्वत् तर्पयित्वा क्रतुं च ॥

सनकं च सनातनं सनन्दं भृगुसंज्ञं च सनत्कुमारपैलौ ।

सह पञ्चशिखेन तर्पयामीत्यभिधानादिनमोन्तकं पृथक् स्यात् ॥

इति योगिमनुष्यान् ।

शिवं च रुद्रं श्रियमप्युमां च ब्रह्माणमग्निं च तथैव विष्णुम् ।

वायुं च सूर्यं त्वथ धर्मसोमावीशानमेतानथ तर्पयेच्च ॥ ८५ ॥

इति सिद्धान् ।

आदित्यं च तथा सोममङ्गारकबुधावपि ।

गुरुं शुक्रं शनिं राहुं केतुं चेति नव ग्रहान् ॥ ८६ ॥

चतुर्थ्यन्तं स्वनामभिर्नमोन्तं तर्पयेत् । ओं सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट् नमः इति
सर्वभूतानि सन्तर्प्य,

ततोऽपसव्यं तिलदर्भतोयैः पितॄन् स्वतीर्थेन तु तर्पयित्वा ।

सोमः पितृमान् यमोऽङ्गिरस्वानग्निः कव्यवाहनादयो ये पितरः तान्

पितॄन् स्वधा नमस्तर्पयामि ।

पितृपत्नीः पितृगणान् पत्नीः पितृगणस्य च ।

ततः स्वनामगोत्राभ्यां स्वपितृनपि तर्पयेत् ॥ ८७ ॥

स्वधा नमस्तर्पयामीत्यन्ते नाम्ना नियोजयेत् ।

पितॄन् पितामहांश्चापि तथैव प्रपितामहान् ॥ ८८ ॥

मातृः पितामहीश्चैव तथैव प्रपितामहीः ।

मातामहांस्तथा मातुस्तर्पयेच्च पितामहान् ॥ ८९ ॥

प्रपितामहकान् मातुर्मातुर्मातामहीरापि (?) ।

मातुः पितामहीश्चैव मातुश्च प्रपितामहीः ॥ ९० ॥

ज्ञातींश्च ज्ञातिपत्नीश्चाप्याचार्याश्च तथा पुनः ।

सखीनपि च तत्पत्निरन्यानप्यात्मवंशजान् ॥ ९१ ॥

तर्पयित्वा यथापूर्वं प्रणम्याद्भ्यो नमोऽस्तिवति ।

पादक्षेपादिसंक्षोभदोषशान्त्यै विभावयेत् ॥ ९२ ॥

ह्रस्वप्रासादतस्तीर्थं संहृत्य हृदि योजयेत् ।

इत्थमुत्थानकावश्यशौचदन्तविशोधनैः ॥ ९३ ॥

स्नानसन्ध्याविधेरूर्ध्वमाग्नेयं स्नानमिष्यते ।

“स्नानं प्राग् वारुणं कृत्वा पश्चादाग्नेयमाचरेत् ।”

इति वचनात् ।

तथाच मतङ्गे —

“एवं सकृत् तथाशक्त्या स्नातोऽम्भसि विचक्षणः ।

भस्मस्नानाधिकारी स्यान्नान्यथा मुनिपुङ्गव! ॥”

इति ।

रोगपीडावशात् स्नातुमशक्तो वारुणे यदा ॥ ९४ ॥

आग्नेयमेव तस्येष्टं रोगप्रशमनं च तत् ।

आग्नेयं भस्मना स्नानमखिलाघनिर्बर्हणम् ॥ ९५ ॥

स्वतेजस्सम्भवेनैव येन स्नातः स्वयं शिवः ।

सन्ध्यात्रये च जप्यादौ चर्यापूर्वावसानयोः ॥ ९६ ॥

भुक्त्वा सुप्ट्वाम्बु पीत्वा वा कृत्वाप्यावश्यकादिकम् ।

स्त्रियं वाप्यनुलोमादीन् स्पृष्ट्वा वा मूषिकाशुचीन् ॥ ९७ ॥

आचरेत् स्नानमाग्नेयं यथैवाथर्वचोदितम् ।

देवाग्निगुरुविद्यानां समीपेऽन्त्यजदर्शने ॥ ९८ ॥

अशुद्धभूमौ मार्गे वा स्थितो नोद्धूलयेद् बुधः ।

कल्पानुकल्पोपकल्पभेदात् तद्वदकल्पकम् ॥ ९९ ॥

चतुर्धा भस्म शैवोक्तं पूर्वं पूर्वं गुणाधिकम् ।

अरोगायाः सवत्साया भूमावपतितं तु गोः ॥ १०० ॥

गोमयं पद्मपालाशपत्राद्यन्यतमेन तु ।
 गृहीत्वा तु विशुद्धात्मा गायत्र्या शिवसंज्ञया ॥ १०१ ॥
 शिवामौ संहितामन्त्रैः साधितं करूपसंज्ञितम् ।
 आरण्यगोमयं दूरे ग्रामादेः पूतमाहरेत् ॥ १०२ ॥
 प्राग्वच्छिवाग्निना दग्धं यत् तत् स्यादनुकल्पकम् ।
 चतुर्विधं च तद् भस्म जातिसंकरवर्जितम् ॥ १०३ ॥
 अग्निदग्धेष्वरण्येषु गृहीत्वा भस्म तत् पुनः ।
 गोमूत्रावद्भपिण्डं तु विशोष्याथ शिवानले ॥ १०४ ॥
 दग्धं भस्मोपकल्पं स्यादकल्पकमथोच्यते ।
 विशिष्टविप्रगोवाटजातं वा देवतालयात् ॥ १०५ ॥
 गृहीत्वा साधितं प्राग्वत् तद् भस्म स्यादकल्पकम् ।
 चतुर्विधं च तद् भस्म जातिसंकरवर्जितम् ॥ १०६ ॥
 अपरिग्रहमन्येषां कर्मस्पर्शाद्यदूषितम् ।
 श्लक्ष्णं पूतमरोगं च पात्रस्थं भसितं सितम् ॥ १०७ ॥
 आग्नेयस्नानयोग्यं स्याद् यथोक्तं ब्रह्मशम्भुना ।
 तद्भस्म संहितामन्त्रैः शक्या लब्ध सुरक्षितम् ॥ १०८ ॥
 पात्रात् सङ्गृह्य हस्तेन दक्षिणेनाभिमन्य तु ।
 विशोध्य धारिणीभिस्तु भूतशुद्धिविधानतः ॥ १०९ ॥
 षडङ्गेनाभिमन्यवादौ कृत्वा वामकरे पुनः ।
 कृत्वास्त्रेण मलस्नानं मस्तकप्रभृति क्रमात् ॥ ११० ॥
 ततस्त्वीशानपुरुषाधारवामैः ससद्यकैः ।
 क्रमान्मूर्ध्वास्यहृद्गुह्यजङ्घान्ताशेषविग्रहम् ॥ १११ ॥
 उद्धूलयेद् द्विजोऽन्ये तु ललाटांसहदादिषु ।
 धारयेयुस्त्रिपुण्ड्राणि तथैव ब्राह्मणादयः ॥ ११२ ॥
 त्रियायुषं धारयेयुर्वेदप्रामाण्यदर्शनात् ।
 “त्रियायुषं जमदग्नेः काश्यपस्य त्रियायुषम्” इत्यादिश्रुतेः ।
 आग्नेयस्नानाधिकारः ।

ऐन्द्रादीन्यपि दृश्यन्ते स्नानान्यागमदर्शनात् ॥ ११३ ॥

येषु स्नानादघध्वंसं पुण्यं भद्रञ्च विन्दति ।

अनग्रे प्रतपत्यर्के वृष्टिं दृष्ट्वोर्ध्वबाहुना ॥ ११४ ॥

माहेन्द्रस्नानमीशानात् कार्यं सप्तपदावधि ।

गवां खुरपुटोत्खातरेणुभिः पवनोपगैः ॥ ११५ ॥

गोमध्यगस्तत्पुरुषं गो(मूत्रं ? सूक्तं) वा जपन् द्विजः ।

अन्यस्तु गोस्तुतिं गोभ्यो नमो वेत्यभ्युदीरयन् ॥ ११६ ॥

वायव्यमाचरेत् स्नानमाखिलाघनिबर्हणम् ।

स्नानानामिह सर्वेषां मूलं श्रेष्ठं च वारुणम् ॥ ११७ ॥

तस्मात् प्राग् वारुणं कृत्वा ततः स्नानान्तरं भजेत् ।

प्रक्षाल्य पाणिपादं तु समाचम्याथ वाग्यतः ॥ ११८ ॥

विद्यादे(हयुतो) भूत्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत् ।

पञ्चभिर्ब्रह्माभिर्विप्रो गायत्र्या शिवसंज्ञया ॥ ११९ ॥

मूलेन च षडङ्गैश्च शिवतीर्थमनुस्मरन् ।

स्वशिरः प्रोक्षयेद् दर्भकूर्चाद् वा कुशमूलतः ॥ १२० ॥

अद्विजो दीक्षितो यस्यां मन्त्रैरीशानपूर्वकैः ।

मूलाङ्गैरपि चाभ्यस्तैः प्रोक्षयेत् तु स्वमस्तकम् ॥ १२१ ॥

आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैर्मन्त्रस्नानं हि वैदिकम् ।

तेनापि मार्जयेद् विप्रो विशुद्धिं परमामियात् ॥ १२२ ॥

ततो यागगृहं गच्छंस्तीर्थं हस्वेन संहरेत् ।

ह्रस्वप्रासादेनेत्यर्थः ।

स्नानवस्त्रादिकं दण्डे संयम्यामन्य तज्जलम् ॥ १२३ ॥

स्मृत्वा गुरुं गणेशं च हृदयेनाभिपूज्य तु ।

विशोध्यास्त्रेण पन्थानमस्त्रपञ्चकमध्यगः ॥ १२४ ॥

गच्छेत् तत्त्वान्यधस्तात् तु कल्पयन् यागमन्दिरम् ।

विद्यातत्त्वास्पदं ध्यायन् सर्वविद्यानिकेतनम् ॥ १२५ ॥

स्नानमात्राः समारोप्य नागदन्तादिके क्वचित् ।

शुद्धे विविक्ते मौनी तु ततः पूजामुपक्रमेत् ॥ १२६ ॥

सन्ध्योपास्तिप्रसङ्गादिति विधिविहितं नैत्यकं कर्मचक्रं

संक्षेपाच्छैवतन्त्रे स्मृतमिह कथितं लिङ्गिनां वर्णिनां च ।

दृष्टादृष्टेष्टसिद्धिप्रदमिह मुनिभिः सेवितं चेति सन्तः

स्वीकुर्वन्तु स्ववित्तं स्वयमिव सुहृदः सत्पथावर्तयन्तः ॥ १२७ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे

क्रियापादे नित्यस्नानादिपटलस्तृतीयः ।

अथ चतुर्थः पटलः ।

प्रणम्य शम्भुं शशिखण्डशेखरं भवं भवच्छेदकरं समासतः ।

सभूतशुद्धिक्रममात्मशोधनं निगद्यते योगजपादिसिद्धये ॥ १ ॥

स्नातो यथावत् समुपास्य सन्ध्यां यागालयं प्राप्य कृताङ्घ्रिशौचः ।

आचम्य चान्तर्विधिवत् प्रविष्टः शस्तासने वाग्यमवान् निविष्टः ॥

आमस्तकाङ्घ्रिद्वयमात्मदेहे ध्यायन् सुसूक्ष्मं सुषिरं तदन्तः ।

बाह्ये तु विन्यस्य तु शक्तिमच्छां व्योमत्विषं तामथ देहमध्ये ॥ ३ ॥

हुङ्कारबीजं रुचिमद् विचिन्त्य प्राणान्नियम्यात्र निवेश्य चित्तम् ।

तद्रेचकान्तोक्तफण्डन्तमस्त्राद् ग्रन्थिप्रभेदं क्रमशो विदध्यात् ॥ ४ ॥

अस्त्रशब्देन पाशुपतास्त्रेणेति यावत् ।

ये ग्रन्थयः पञ्च तमोमलिष्ठा हृत्कण्ठतालुस्थितयः प्रसिद्धाः ।

भूमध्यो मूर्धनि चेति तेषां भेदात् तु नाडीसरणिः प्रसिद्धचेत् ॥ ५ ॥

वायुं नियम्यात्मनि पूरकार्धाच्चैतन्यसान्तात्मकजीवरूपम् ।

सान्तात्मकशब्देन हंसमन्त्र उच्यते ।

तं बिन्दुभूतं च निरामयं स्वे हृत्पङ्कजे कुम्भकतो विभाव्य ॥ ६ ॥

तत्रोर्ध्ववायोः प्रसरेण जीवं सौषुम्नमार्गान्निहितं स्वमूर्ध्नि ।

उद्धातमात्रेण तु बीजवृत्त्या तं द्वादशान्तःस्थशिवं नयेच्च ॥ ७ ॥

उद्धातो नाम द्वादशमात्रः । अत्र योगानुशासने —

“जानु प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम् ।

यत् करोत्यङ्गुलिस्फोटं तावन्मात्रां विदुर्बुधाः ॥

मात्राद्वादशकः काल उद्धात इति कथ्यते” ॥

इति ।

कादङ्गलद्वादशकेऽत्र सौम्यं शुक्लं सहस्रच्छदपुण्डरीकम् ।

व्योमामृतव्याप्तमधोमुखं तन्मध्यं शिवाध्यासितमभ्युपेयम् ॥ ८ ॥

लीनः शिवेऽङ्गैरभिरक्षितात्मा साधोमुखं देहतुरं विभाव्य ।

तत्त्वानि षट्त्रिंशदथो विलोमं नीत्वा लयं स्वेप्विह कारणेषु ॥ ९ ॥

तद्यथा —

भूम्यम्बुतेजोमरुदम्बरैः स्याद् गन्धो रसश्चाप्यथ रूपमुक्तम् ।

स्पर्शाख्यशब्दौ कथितानुपस्थं वाक्पाणिपादं च तथैव पायू ॥ १० ॥

प्राणं च जिह्वा नयनं तथा त्वक् श्रोत्रं मनोऽहङ्कृतिबुद्ध्यश्च ।

गुणप्रकृत्या पुरुषश्च रागोऽप्यशुद्धविद्या च कला नियत्या ॥ ११ ॥

तथैव कालः कथिता च माया विशुद्धविद्या च तथेश्वरश्च ।

सदाशिवः शक्तिरथो शिवश्चेत्युक्तानि तत्त्वानि शिवादिकानि ॥ १२ ॥

पञ्चाथ भूतानि परस्परान्तः शोध्यानि स्वादीनि विलोममार्गात् ।

विरिञ्चपूर्वैः समधिष्ठितत्वात् तत्तत्कलविम्बगुणाक्षदेवैः ॥ १३ ॥

भूमण्डलं यच्चतुरश्रवीतं वज्राङ्कितं गन्धगुणं ससद्यम् ।

प्राणेन्द्रियं तत्कलया निवृत्त्या युक्तं च दैवेन चतुर्मुखेन ॥ १४ ॥

ह्रंबीजतः पूरककुम्भकाभ्यां व्याप्तं तदाजानु तदङ्घ्रियुग्मात् ।

शोध्यं तदुद्धातकपञ्चकान्तं वायौ प्रविष्टं परिभावयेच्च ॥ १५ ॥

अब्जिबम्बमर्धेन्दुसितं सिताब्जे चिह्नं रसाढ्यं रसनेन्द्रियं च ।

वामास्थितं विष्णुसमन्वितं तद्युक्तं प्रतिष्ठाकलया विशोध्यम् ॥ १६ ॥

ह्रींबीजमुद्धातचतुष्कशोध्यमग्नौ तदानामितटं प्रविष्टम् ।

बहोन्निकोणारुणमण्डलं स्याद् विद्याकलं स्वस्तिकलाञ्छनं च ॥ १७ ॥

द्विगिन्द्रियं रूपगुणं सरुद्रं ह्रंबीजतोऽधोरयुतं विशोध्यम् ।

व्युद्धाततस्तच्च जले प्रविष्टं व्याप्तं तु कण्ठावधि सन्निरूप्य ॥ १८ ॥

षड्बिन्दुचिह्नं त्वथ वायुबिम्बं कृष्णं षडश्रं पुरुषास्थितं च ।

त्वक्स्पर्शशान्त्यन्वितमीश्वरेण ह्रंबीजमुद्धातयुगाद् विशोध्यम् ॥ १९ ॥

व्याप्तं च तद्भूयुगलावसानं स्थूलांशमात्रेण धरां प्रविष्टम् ।
वृत्तं खविम्बं स्फटिकावदातं सश्रोत्रशब्दं च सविन्दुशक्तिम् ॥ २० ॥

ईशानसादेशयुतं त्वतीतं व्याप्तं समूलास्तक्रमाशिरोन्तात् ।
तद् द्वादशान्तः स्थितमूलमन्त्राच्चन्द्रामृतासारजलैः समस्तम् ॥ २१ ॥

आप्लाव्य निर्वर्तितभूतशुद्धिः सम्पाद्य तत्त्वानि यथाक्रमेण ।

शिवादिपृथग्यन्ततत्त्वैः स्वशक्त्यधिष्ठानशिवस्येच्छया विद्यादेहं सम्पादयेत् ।

शिवेच्छयोत्पादितशुद्धदेहो हृद्यासनं तु प्रणवेन दत्त्वा ॥ २२ ॥

तद्यापिर्नी न्यस्य शिवां तु शक्तिं स्वबीजजीवं निहितं शिवाख्ये ।

तं द्वादशान्तादथ पूरकेण त्वानीय नाड्या हृदयाब्जमध्ये ॥ २३ ॥

संस्थाप्य मूलामृतवारिपूरैराप्लाव्य पूजादिकमारभेत ।

भूतशुद्ध्यधिकारः ।

अत्रोच्यतेऽन्या स्फुटमात्मशुद्धिर्या शोषणादिक्रमशोर्ध्वदेहे ॥ २४ ॥

निःशेषदोषक्षयशुद्धिदानाद् रोगान् जरां मृत्युमपि क्षिणोति ।

प्रागवत् स्वदेहे सुषिरं विचिन्त्य तद्यापिर्नी चान्तरबाह्यशक्तिम् ॥ २५ ॥

हुङ्कारमध्यस्थितचित्तजीवः प्राणान्नियम्याहृतपूरकेण ।

ग्रन्थीन् विदार्याहृतरचकान्तमस्त्रेण वायुं विनिवर्त्य पूरात् ॥ २६ ॥

चैतन्यमाहृत्य ससान्तजीवं हृत्सम्पुटे ज्योतिरनामयाख्यम् ।

तं कुम्भकोद्धातवशात् तदूर्ध्वं चाकृष्य सौषुम्नेपथेन कान्तम् ॥ २७ ॥

तं द्वादशान्तःस्थशिवे नियुज्यात् तत्त्वानि नीत्वा विलयं विलोमात् ।

वर्णान् विलोमात् क्षहसक्रमोक्तान् नीत्वा लयं शब्दततिं च शक्तौ ॥ २८ ॥

शून्यं तु देहं मलपापमात्रं विचिन्त्य कृष्णं त्वथ नाभिचक्रे ।

बिम्बे तु वायोरतिधूम्रवर्णं यङ्कारमुद्गाव्य तु चण्डवायुम् ॥ २९ ॥

ध्यायेदधःशाखमथोर्ध्वमूलं संसारवृक्षात्मकमात्मदेहम् ।

“देहात्माधोमुखस्तत्र ध्यातव्यो भवपादपः” ।

इति ब्रह्मशम्भुः ।

तं शोषयेन्नाभिर्विनिर्गतान्तश्चण्डानिलेनाघमले च शोष्ये ॥ ३० ॥

उद्धातकैः पञ्चभिरस्य शोषं वायोनिरोधेन विधाय पश्चात् ।
हृत्पङ्कजेऽन्त्याक्षरमभियुक्तं सानुग्रहार्धेन्दुयुतं सनादम् ॥ ३१ ॥

बीजं तु सञ्चिन्त्य हुताशकल्पं बिम्बे हुताशस्य तु रक्तवर्णम् ।
विन्यस्य षट्कोणलसत्रिशूलज्वालासहस्रप्रसरैरघौघम् ॥ ३२ ॥

सम्यग्दहन्तं तु कलेवराख्यं तद्भस्मसाद्भूतमपीह चिन्त्यम् ॥

‘दहेत् पाशुपतास्त्रेण’ इति पराख्यपौरुषयोरुक्तत्वात् पाशुपतास्त्रेण वा
तद् दहेत् ।

प्रोत्सार्य चण्डानिलवायुबीजात् तद्भस्म सर्वं तु दिशो विकीर्य ॥ ३३ ॥

शून्यं खतुल्यं परिभाव्य देहं शुद्धं तु तत्केवलपुण्यशेषम् ।

व्योमाम्बुजान्तःस्थशिवस्य शक्तेरिच्छाक्रियाज्ञानवशात् सिद्धशोः ॥

शक्तैर्यथावलिपिवर्णपूगैस्तत्त्वानि चोत्पाद्य तु तैः शरीरम् ।

सृष्ट्वा तदण्डात्मकविश्वलोकं सम्भाव्य शुद्धं गतपाशवन्धम् ॥ ३५ ॥

प्राग् द्वादशान्ताहितबीजजीवमाक्लृप्य तत्पूरकवायुमिश्रम् ।

तद् ब्रह्मरन्ध्रेण निवेश्य मार्गाद्धृत्पद्ममध्यं शिवमात्मरूपम् ॥ ३६ ॥

व्योमाब्जमध्येन्दुकलास्वराख्यं द्यष्टच्छदाधारमुधाकलाभिः ।

सुषुम्नयानीय पृथग् यथावच्चापूरयेद् व्युत्क्रमतः स्वराणाम् ॥ ३७ ॥

सामृतामानिनी तुष्टिपृष्ठी तथा प्रीतिरुक्ता रतिः श्रीश्च शान्तिः सुधा ।

कान्त्यथ ज्योत्स्नया हैमवत्या प्रभा पूरणी वामया स्यादमा षोडशी ॥ ३८ ॥

दक्षिणाङ्गुष्ठतो गुल्फजानुकमात् स्यात् कटिश्चोदरं पाणिसन्धिर्भुजः ।

मूर्ध्नि चार्धं क्रमाद् वामभागेऽपि च स्थानमुक्तं कलास्तद्विलोमा न्यसेत् ॥

अः अमायै नमः । अं वामायै नमः । औं पूरण्यै नमः । इत्याद्यङ्गुष्ठा-
दिमूर्धान्ते षोडश कला विन्यस्य तदमृतैः क्रमादापूरयेदित्युपदेशः ।

तोयमर्धेन्दुमत्पूर्णचन्द्रप्रभं खास्त्रुजे भावयेत् तत्कलात्तत्स्वरम् ।

शङ्खकुन्देन्दुगोक्षीरगौरामृतैर्ब्रह्मनाड्या पथापूर्य देहं स्वकम् ॥ ४० ॥

द्यष्टवर्षाकृतिं शुद्धविद्यातनुं तत्सुधापूरणप्लाव्यमानाकृतिम् ।

पुण्यपूगार्जितं शुद्धमित्थं धिया यः स्मरेदेकदाप्येष योगी भवेत् ॥ ४१ ॥

इत्थमभ्यासतः शुद्धसत्त्वः स्वयं शक्तिपातं लभेत्तेश्वरानुग्रहात् ।

जप्यपूजादिभिश्चेष्टासीद्धिं तथा सुप्रसन्ना मुखान्निःसरेद् भारती ॥ ४३ ॥

न हि सलिलविशेषैः केवलं क्षालनाद्यैः

प्रभवति परिशुद्धिर्यन्मलिष्ठं शरीरम् ।

द्विविधमितिह साद्धिः सान्तरङ्गात्मशुद्धिः

सविधि समुपदिष्टां तां भजेन्नित्यशोऽपि ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्देशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे

क्रियापादे भूतशुद्धपादि

पटलश्चतुर्थः ।

अथ पञ्चमः पटलः ।

अथ विद्यातनोरस्य शिवस्य परमात्मनः ।

पूजा सिद्धिकरी ज्ञेया दृष्टादृष्टफलप्रदा ॥ १ ॥

सा हि पूजा त्रिधा भिन्ना श्रेष्ठमध्याधमक्रमात् ।

पूजोत्तमा भवति षोडशोपचारैर्या मध्यमा प्रभवतीह दशोपचारात् ।

पञ्चोपचारविधिनात्वधमा सपर्येत्यासां यथाविभवमर्चनमाददीत ॥ २ ॥

आसनावाहनाध्यानि पाद्यमाचमनीयकम् ॥ ३ ॥

साङ्गोपाङ्गं तथा स्नानं वसनाभरणानि च ।

गन्धपुष्पे तथा धूपो दीपश्चरुनिवेदनम् ॥ ४ ॥

अग्निकार्यं नमस्कारो जपपूजासमर्पणम् ।

इति षोडश चोदिष्टा ह्युपचाराः समासतः ॥ ५ ॥

पाद्यमर्घ्यं तथाचामः स्नानं गन्धश्च पुष्पकम् ।

धूपदीपनिवेद्यानि नमस्कारश्च ते दश ॥ ६ ॥

मध्यमायां तु पूजायामुपचाराः प्रकीर्तिताः ।

गन्धः पुष्पं धूपदीपौ निवेद्य पञ्चैते स्युस्तूपचाराः कनिष्ठे ॥

अप्येतेषां लक्षणानां प्रभेदाः संलिख्यन्ते साधकानां हिताय ॥ ७ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः—

“आसनमूर्तिमावाह्य मेरु+ + + मध्वनि ।
व्याप्यव्यापकभावेन ज्ञात्वा यजनमारभेत् ॥
आसनं शुद्धविद्यान्तमूर्तिः शक्त्यन्तगोचरा ।
आवाह्यः स शिवा मुष्टिमूर्तिमानुपरि स्थितः ॥

अपि च,

अनन्तमासनं शक्तिमूर्तिस्तद्वाञ्छितोऽपरे ।
शक्तिमेवासनं केचिद् वदन्ति कृतबुद्धयः ॥”

इति ।

आधारो वेत्यासनं देवतायाः स्वासीनास्मिन् पूज्यते देवतेष्टा ।
धातोरासेत्यस्य चैवोपवेशः सिद्धस्तस्मादासनं प्राक्प्रशस्तम् ॥ ८ ॥

आधारशक्तिं ज्योत्स्नाभां न्यसेत् कूर्मेशिलां गताम् ॥ ९ ॥
अनन्तमासनीभूतं न्यसेद् ब्रह्मशिलोपरि ।

अनन्त इति सकलपालनहेतुशक्तिर्विष्णुरेव ।

अथाभेयरक्षोनिलेशानदिवस्थान् यजेच्चारुसिंहाकृतीन् पीठपादान् ।
क्रमादिन्दुकाश्मरितालालिवर्णान् सतारं हृदा नामभिः स्वैर्नमोन्तैः ॥ १० ॥
तथैवाधर्ममज्ञानमवैराग्यं यथाक्रमम् ।
इन्द्रादिदिक्षु पीठस्याप्यनैश्वर्यं च विन्यसेत् ॥ ११ ॥

अत्र किरणे—

“चतुर्युगमहापादं पृथिवीतत्त्वकन्दकम् ।
कलातत्त्वान्तनालं तत् पञ्चाशद्भावकण्टकम् ॥
मायातत्त्वबृहद्ग्रन्थिं शुद्धविद्याब्जशोभितम् ।
विद्येश्वरदलच्छत्रं शक्तिकेसरसंयुतम् ॥
शिवशक्तिद्वयारब्धकर्णिकाबीजराजितम् ।
पीठमेवंविधं कल्प्यं मातृकाबीजसम्भवम् ॥”

इति ।

कालोत्तरेऽपि —

“पद्ममष्टदलं श्वेतं कर्णिका कनकप्रभा ।
 उद्यदकौशुसङ्काशं शक्तिचक्रं मनोन्मनीम् ॥
 ज्योत्स्नाभां मण्डलानीकं स्वस्वरूपेण चिन्तयेत् ।
 सूर्यबिम्बं दलव्यापि ब्रह्मा तस्याधिपो भवेत् ॥
 तथैव सोमबिम्बं च केसरे विष्णुपालकम् ।
 कर्णिकाव्यापि चाग्नेयं मण्डलं रुद्रदैवतम् ॥
 पृथिव्याद्यष्टमूर्तीनां वामाद्याः शक्तयः क्रमात् ।
 जगत्प्रवृद्धिसंसिद्धिर्याभिः सिध्येच्छिवाज्ञया ॥
 नवमी तु शिवस्यैव शक्तिर्देवी मनोन्मनी ।”

इति ।

वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काला कलविकरणी ॥ १२ ॥

बलविकरणी चैव बलप्रमथिनी ततः ।

सर्वभूतदमन्याख्या नवमी स्यान्मनोन्मनी ॥ १३ ॥

श्वेता रक्ता त्वसिता पीतवर्णा श्मामा कृष्णाञ्जनाभा स्याज्जपाभा ।

ज्योत्स्नाभा वेत्युदिताश्चारुरूपा वामाद्याः स्युः परितो भूषिताङ्गयः ॥ १४ ॥

“एकवदना द्विभुजाः कृताञ्जलिपुटौ देवाभिमुखा ध्यातव्याः” इति
 कालोत्तरटीकायाम् ।

तारहृद्बीजपूर्वं तु स्वनाम्नैव नमोन्तकम् ।

शिवासनं तु सङ्कल्प्य ध्यात्वा तत्त्वाध्वगं यजेत् ॥ १५ ॥

अशेषाध्वविनिर्मितमित्यन्ये ।

आसनाधिकारः ।

स्वत एवाभिपूर्णस्य तत्त्वस्येहार्चनादिषु ।

सादरं सम्मुखीभावं तदावाहनमिष्यते ॥ १६ ॥

पुष्पैरञ्जलिमापूर्य शिवमूर्तिं ततः स्मरन् ।

लिङ्गादौ विन्यसेत् तेन हृदायेन नमोन्तकम् ॥ १७ ॥

पृथ्व्यादिशक्तिपर्यन्तैस्तत्त्वैर्मूर्तिर्भवेद् यथा ।

बद्धपद्मासना शुद्धचन्द्रप्रभा षोडशाब्दोपमोद्देशादिव्याकृतिः ।

पञ्चभिर्ब्रह्मभिः पञ्चवक्त्रा क्रियेच्छान्वितज्ञानशक्तित्रयं त्रीक्षणा ॥ १८ ॥

पङ्क्तिसंख्यैर्भुजैः साभयेष्टप्रदे विभ्रती शक्तिशूले च खट्वाङ्गकम् ।

दक्षिणेत्यन्यतो नागमक्षस्रजं डामरूकोत्पले बीजपूरं तथा ॥ १९ ॥

“पञ्चस्रोतःशिराः शान्तो दशदिग्बाहुरीश्वरः ” ।

इति ब्रह्मशम्भुः ।

मूर्तिमेवं तु सञ्चिन्त्य लिङ्गे पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

विद्यादेहं ततो ध्यायेत् पूर्णपुष्पाञ्जलिः शिवम् ॥ २० ॥

अपि च,

निष्पत्तये सदेशानशरीरस्यानघात्मनः ॥ २१ ॥

शान्त्यतीतकलामूर्धा शान्तिवक्त्रसरोरुहा ।

विद्याविशालवक्षोसा प्रतिष्ठागुह्यमण्डला ॥ २२ ॥

निवृत्तिजानुजङ्घाङ्घ्रिर्भुवनाध्वतनूरुहा ।

वर्णाध्वमन्त्ररुधिरा पदमांससिरान्विता ॥ २३ ॥

तत्त्वाध्वमज्जशुक्लास्थिधातुरेषा तनूः शिवा ।

इति ।

ध्यात्वा विद्यातनुं त्वेवं तारह्णमूलहृद्युतम् ॥ २४ ॥

विद्यादेहाय नत्यन्तमुक्त्वा मूर्तौ नियोजयेत् ।

अष्टत्रिंशत् कलास्त्वत्र विद्यादेहे तु विन्यसेत् ॥ २५ ॥

यथा पुरस्तात् तन्न्यासः पूजाविषय इष्यते ।

ततस्त्वावाहयेद् देवं विद्यादेहे शिवं विभुम् ॥ २६ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमस्मिन् परमकारणम् ।

सर्वज्ञादिगुणैर्युक्तमनादिं परमेश्वरम् ॥

सत्कुर्यात् संविधाभिस्तु निष्कलं सकलात्मानि ।

आवाहनादिभिर्भक्त्या प्रासादात्मानमुच्चरन् ॥

पुष्पैरञ्जलिमापूर्य हृदयाग्रेसरं शिवम् ।
 तावदुच्चारयेद् यावत् प्राप्तं निष्कलगोचरम् ॥
 तद्भावभावनाविष्टं प्रस्फुरद्रश्मिमण्डले ।
 बिन्दावभ्युदितं ध्यायेदावाहनविधिं प्रति ॥
 तस्मादादाय विसब्धः स्थिरधीः पुरतः स्थिते ।
 देहे लक्षीकृते न्यस्य स्थापयेद्दधृदयेन तम् ॥”

इति ।

आवाहनाङ्गभूतानि स्थापनं सन्निधापनम् ।
 सन्निरोधामृतीकाराववकुण्ठनमेव च ॥ २७ ॥
 शिवस्यावाहितस्यास्य विद्यादेहेऽत्र सन्ततम् ।
 स्थिरीकरणमुद्दिष्टं स्थापनं भक्तितोऽर्चने ॥ २८ ॥
 तेन स्वस्वामिसम्बन्धे स्वसामर्थ्यप्रदर्शनम् ।
 यत् सान्निध्यं तदस्येह सर्वगस्यापि कीर्त्यते ॥ २९ ॥
 आसमाप्तेस्तु पूजायाः सान्निध्यं तु शिवस्य यत् ।
 स सन्निरोध उद्दिष्टो विभारण्यस्य भक्तितः ॥ ३० ॥
 आनन्दायतनं तत्त्वं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
 तदत्र सकले व्याप्तं ध्येयं स्यादवकुण्ठनम् ॥ ३१ ॥
 अपि भिन्नस्वभावानां यदभिन्नं प्रयोजनम् ।
 अङ्गानामङ्गिना सार्धममृतीकरणं हि तत् ॥ ३२ ॥
 अवकुण्ठनवत् तेजोरुचिराङ्गप्रवर्धनम् ।
 तन्महामुद्रया कार्यं यतस्तद्धि प्ररोचनम् ॥ ३३ ॥

आवाहनाधिकारः ।

अर्घ्यं तत् त्रिविधं शैवं षडङ्गाष्टाङ्गभेदतः ।
 शाक्तं चाष्टाङ्गमर्घ्यं स्यात् + + + दितं यथा ॥ ३४ ॥
 गन्धपुष्पाक्षतकुशा दूर्वाग्निं च तथोदकम् ।
 भोजेन्द्रब्रह्मशम्भूक्तं षडङ्गार्घ्यमुदाहृतम् ॥ ३५ ॥

कुशाक्षततिला दूर्वा गन्धः पुष्पं यवास्तथा ।
क्षीरं चाष्टाङ्गमर्घ्याम्भः शैवं स्याद् विजयोदितम् ॥ ३६ ॥

मतङ्गे —

“जलं विल्वफलं दूर्वा तिलाः पुष्पाणि तण्डुलाः ।
गव्यं दधि च दर्भाग्रमर्घ्यमष्टाङ्गमीरितम् ॥”
गन्धपुष्पाक्षतयवाः कुशदूर्वाग्रसर्पपाः ।
आपश्चेत्यष्टभिर्द्रव्यैः शाक्तमर्घ्यं प्रचक्षते ॥ ३७ ॥
हैरण्यं राजतं ताम्रमलाम्बे वाथ दारवम् ।
पात्रं त्रिकुटुबैः पूर्णमर्घ्ये शङ्खोऽथवा भवेत् ॥ ३८ ॥
यन्त्रिकाधारसंस्थं तदस्त्रधौतमधोमुखम् ।
अ(वा ? वो)क्ष्योत्तानयित्वास्मिन् कूर्चं शक्तिं च विन्यसेत् ॥ ३९ ॥
आपूर(वि ? मि)न्दोश्च्योतद्विरमृतैः संहितां जपन् ।
अष्टाङ्गैर्वा षडङ्गैर्वा विन्यस्याङ्गैः शिवं ततः ॥ ४० ॥
मन्त्रसंहितयालभ्य प्ररोच्यामृतमुद्रया ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैरिष्टास्त्रेण सुरक्षितम् ॥ ४१ ॥
कवचेन सुगुप्तं तत् सर्वविघ्ननिवारणम् ।
तदद्भिः कुशकूर्चेन स्वशिरः प्रोक्षयेत् ततः ॥ ४२ ॥
प्रत्येकमर्चनाद्रव्यं भुवं च प्रोक्षयेत् क्रमात् ।
तत्सुगुप्तं विशेषार्घ्यं यत् पूजायां प्रदीयते ॥ ४३ ॥
केवलाम्भोभिरापूर्य गन्धपुष्पाक्षतैरपि ।
शिवास्त्रजपितं ज्ञेयं सामान्यार्घ्यं शिवार्चने ॥ ४४ ॥

अर्घ्यविधिः ।

पाद्यं सामान्यतो ज्ञेयं दूर्वाश्यामाकपङ्कजैः ।
प्राग्वत् पात्रे समापूर्य पाद्यं दद्यात् तु पादयोः ॥ ४५ ॥
सजातिफलतक्रोललवङ्गं शीतलं जलम् ।
कर्पूरचन्दनोन्मिश्रं ज्ञेयमाचमनीयकम् ॥ ४६ ॥

पुनराचमनीयेषु शस्तमम्भः सुगन्धि यत् ।
 नमः स्वधा तथा स्वाहावषड्जातियुजा हृदा ॥ ४७ ॥
 अर्घ्यादिकचतुष्कं तु दद्यादेवं यथाक्रमम् ।
 अर्घ्यस्य त्रीणि पात्राणि पाद्यस्यापि त्रयं भवेत् ॥ ४८ ॥
 षडाचमनपात्राणि स्यादप्येकमसम्भवे ।
 अर्घ्यमादौ तथा स्नाने पूजान्ते च प्रदीयते ॥ ४९ ॥
 आदौ स्नाने विभूषान्ते पाद्यं कालेषु वै त्रिषु ।
 पाद्यान्ते मधुपर्कान्ते स्नानाद्यन्ताम्बरादिषु ॥ ५० ॥
 निवेद्यान्ते च षट्स्वेषु दद्यादाचमनीयकम् ।
 गन्धपुष्पादिकं द्रव्यं दत्त्वा दत्त्वा पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥
 सामान्याचमनं दत्त्वा कर्तव्यं कर्म चोत्तरम् ।

पाद्याचमनाधिकारः ।

आत्माश्रयद्रव्यमन्त्रशुद्धिं कृत्वा यथाक्रमम् ॥ ५२ ॥
 यथेह सम्यक् परतः पूजापटल उच्यते ।
 सूर्यविघ्नेश्वरगुरुन् संपूज्यात्मानमेव च ॥ ५३ ॥
 गन्धपुष्पादिनाभ्यर्च्य सङ्कल्पेष्ट्वा शिवासनम् ।
 आवाह्योदितमार्गेण लिङ्गे तु सकलं शिवम् ॥ ५४ ॥
 मूर्ध्नि दूर्वाक्षतं दत्त्वा विशेषार्घ्यं प्रदाय तु ।
 गङ्गुकांस्तोयवस्त्रं च प्रक्षाल्यास्त्रेण वै सकृत् ॥ ५५ ॥
 पूरयेद् गालितैरद्भिर्गङ्गुकांश्चास्त्रवर्धनीम् ।
 हृदा वाप्यथ गायत्र्या गन्धं पुष्पं क्षिपेत् पृथक् ॥ ५६ ॥
 अर्घ्यविन्दुं क्षिपेदेषु मूलं विन्यस्य तेष्वथ ।
 तैर्जैलैः स्नापयेद् देवमर्चितं धूपितं पुनः ॥ ५७ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“वामहस्ततले कृत्वा गङ्गुकान् लिङ्गमस्तकान् ।
 कुसुमं पूर्वविन्यस्तं तदर्घ्येणापनीय तु ॥

धौतपाणिः स्वमन्त्रेण शङ्खमुद्रापरिप्लुतैः ।
 जलैरनुचलद्भिस्तु स्नापयेदीशमस्तके ॥
 नोपरि भ्रामयेद्धस्तं न मुद्रां बन्धयेदधः ।
 अद्भिरुच्चलिताभिस्तु पूजाद्रव्यं न सेचयेत् ॥”

इति ।

सुगन्धतैलेनाभ्यज्य यवमाषादिचूर्णकैः ।
 विरूक्षयित्वा कोष्णेन प्रक्षाल्य सलिलेन तु ॥ ५८ ॥
 सम्पूज्य धूपयित्वा तु पिष्टदीपादिविस्तरैः ।
 नीराज्य गीतवाद्यादिस्तुतिमङ्गलसंयुतम् ॥ ५९ ॥
 दुग्धेन दध्ना चाज्येन मधुना चैक्षवेण च ।
 प्रत्येकं जलपुष्पाभ्यां धूपेनान्तरितं क्रमात् ॥ ६० ॥
 पञ्चगव्यैः समस्तैर्वा व्यस्तैस्तमभिषिच्य तु ।
 पुनर्विरूक्ष्य प्रक्षाल्य गन्धपुष्पाधिवासितैः ॥ ६१ ॥
 अशून्यमस्तकं लिङ्गमभिषिच्य विशेषतः ।
 कलशैर्वा यथोद्दिष्टैः शङ्खैर्वा गङ्गुडैरपि ॥ ६२ ॥
 ब्रह्मभिः संहितामन्त्रैः सरुद्रपवमानकैः ।
 द्विजाश्चैवदभिषिञ्चेयुरितरः संहितां जपन् ॥ ६३ ॥
 पर्याप्तौ गन्धतोयेन कृत्वा स्नानं सवैदिकम् ।
 मार्जयेत् सितवस्त्रेण यथा निर्जलतां व्रजेत् ॥ ६४ ॥
 स्थिरलिङ्गे विधिस्त्वेष चललिङ्गे च सम्मतः ।
 स्नानवेद्यां तु तत्पीठे चलमाधाय यत्नतः ॥ ६५ ॥
 स्नापयित्वा विधानेन पूजापीठे निधाय तु ।
 यजेद् यथावद् व्यक्तानां शैलेयानां मणिष्वपि ॥ ६६ ॥
 लौहीषु प्रतिमास्वन्ये न नित्यस्नपनं विदुः ।
 चित्रेष्वन्यत्र लिङ्गे वा स्नपनं नेति चापरे ॥ ६७ ॥
 क्षणिके स्थण्डिले चामौ स्नपनं मानसं स्मृतम् ।

स्नानाधिकारः ।

ततो वासांसि शुद्धानि सूक्ष्माण्यभिनवानि तु ॥ ६८ ॥

दुकूलपट्टकार्पासदेवाङ्गादीनि यानि हि ।

अन्यत्रानुपयुक्तानि विकेशान्यहतानि च ॥ ६९ ॥

भक्त्या यथोपपन्नानि तैर्देवं परिधापयेत् ।

भूषणानि च हैमानि नानारत्नोज्ज्वलानि च ॥ ७० ॥

पादाद्याकेशयोग्यानि यानि तैस्तं विभूषयेत् ।

अलाभे मानसैर्वापि दर्पणं च प्रदर्शयेत् ॥ ७१ ॥

वस्त्रभूषणाधिकारः ।

गन्धस्तु द्विविधः शैवः पञ्चाङ्गोऽष्टाङ्ग एव च ।

चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमानि हिमाम्भसा ॥ ७२ ॥

श्लक्ष्णपिष्टानि गन्धोऽयं पञ्चाङ्गः समुदाहृतः ।

चन्दनं कुङ्कुमं कुष्ठं दलं शीतमथागरु ॥ ७३ ॥

कर्पूरं हिरिवेरं च गन्धोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः ।

“चन्दनागरुकर्पूरकाश्मीरोशीरोचनाः ।

कुष्ठं हिमजलं चेति गन्धोऽष्टाङ्गः शिवप्रियः ॥”

इति वातुले ।

“चन्दनागरुकर्पूरमांसीकुङ्कुमरोचनाः ।

स्पृग्वानराभ्यामष्टाङ्गः शाक्तो गन्ध उदाहृतः ॥”

इति (च) ।

पुष्पाणि सात्त्विकानीह शुक्लवर्णानि यानि वै ॥ ७४ ॥

राजसानि च रक्तानि तामसान्यसितान्यपि ।

श्यामं तमोरजोभिश्च पीतं राजससात्त्विकम् ॥ ७५ ॥

सात्त्विकाद्यैस्तु कुसुमैः स्यात् फलं सात्त्विकादिकम् ।

श्वेतार्कं करवीरकं च कमलं धुर्धूरकारग्वधे

राजार्कं च सिताम्बुजं च तुलसी साशोकसच्चम्पकैः ।

कलहारं वकपाटले वकुलकं द्वे मल्लिके मालती

पालाशस्थलपद्मदर्भदमनापामार्गदूर्वाङ्कुरैः ॥ ७६ ॥

तद्वद्गन्धिशमीवृहन्मरुचकैः पुन्नागनागासनै-
 नन्द्यावर्ततमालकुब्जविजयामन्दारकाश्मीरकैः ।
 शस्तान्युत्पलकर्णिकारकुसुमैः कादम्बवैल्वान्यथो
 नीलं चोत्पलमित्यमूनि कुसुमान्युक्तानि शैवान्यलम् ॥ ७७ ॥

अम्भोजोत्पलबन्धुजीवविजयापुन्नागनागान्यथो
 जातीकुन्दकरण्डचम्पकजपाय्थीरमापाटलैः ।
 बिल्वाशोकहयारिकुब्जदमनैर्मेन्दारदूर्वादलै-
 नन्द्याह्वाप्यपराजितेति कुसुमान्युक्तानि शाक्तान्यलम् ॥ ७८ ॥

निर्गन्धानि तथोग्रगन्धकटुकान्यस्तद्वदुष्टानि चा-
 प्यन्यायोपहतानि वा कृमिनसाच्छिद्यानि भिन्नानि वा ।
 ऊर्णासूत्रशिरोरुहाद्युपहतैर्म्लायत्पुराणानि वा
 कालातीतविलङ्घितानि च तथा पुष्पाण्यथो वर्जयेत् ॥ ७९ ॥

शस्ते द्वे तुलसी सिताम्बुजमथो रक्ताब्जपालाशके
 जातीकुब्जकमाधवीदमनकैः पुन्नागनागासनैः ।
 नन्द्यावर्तशमीस्थलाब्जविजयासन्मल्लिकाचम्पकै-
 बिल्वं चोत्पलकेतकानि च नवं कुन्दं तथा पाटलम् ॥ ८० ॥

लक्ष्मीदेविसहाः सभृङ्गमुसलीनीतेन्द्रवल्गवः सदा-
 भद्रा श्रीपतिलङ्घिता च दशमी मूर्त्त्या जम्बूच्छदः ।
 कल्हारं करवीरमेकदलकं पद्मं कुशाः कैरवं
 रक्तं चेति विलोमतोऽधिकफलं पुष्पं भवेद् वैष्णवम् ॥ ८१ ॥

त्रेधा चोदितपुष्पजातिषु तथानुक्तानि वर्ज्यानि ता-
 न्यन्योन्यप्रतिषेधदर्शनमपि साद् यत्र चोक्तं विना ।
 अन्यस्मै परिकल्पितानि च तथा वर्ज्यानि तद्युक्तितो
 यद् यस्यात्र विशेषतस्तु विहितं तद्वैवर्तं तोषयेत् ॥ ८२ ॥

सूर्याग्न्योस्त्रिविधानि चापि कुसुमानीष्टानि विम्लेशितुः
 शाक्तान्यप्यथ शाम्भवानि च तथा स्कन्दार्यचण्डादिषु ।

शाक्तान्येव मनोजवागिरिसुतादुर्गाष्टमातृप्रिया-

ण्यम्भोजासनदेवराजकमलाः पूज्यास्तथा वैष्णवैः ॥ ८३ ॥

नन्दावर्तैः प्रातरेवापराह्णे प्राग्नात्रे वा मालतीमल्लिकाभिः ।

अह्वयेवाब्जैरुत्पलैः सर्वदा वा हैमैः प्रातः केसरैः पूर्वरात्रे ॥ ८४ ॥

आ वैवर्ण्यात् केसराणां सरोजं वैल्वं पत्रं दामनं च त्रिरात्रम् ।

पूजायोग्यं कर्णिकारं तु पक्षं न स्याज्जीर्णं मासषट्कं बकाख्यम् ॥ ८५ ॥

पुष्पाधिकारः ।

धूपद्रव्येषु सर्वेषु श्रेष्ठः कृष्णागरुर्भवेत् ॥ ८६ ॥

कर्पूरमधिकश्रेष्ठमगरूपहितं तथा ।

गुग्गुलुर्महिषाक्षाख्यः श्रेष्ठ एव शिवप्रियः ॥ ८७ ॥

चन्दनोशीरके चैव मध्यमे तु प्रकीर्तिते ।

श्रीवाससर्जावधमौ ततो लाक्षा घृतं मधु ॥ ८८ ॥

सर्वैरेतैः सितोपेतैर्धूप उक्तो दशाङ्गकः ।

निर्धूमस्फुरदङ्गारे निज्वाले च निरिन्धने ॥ ८९ ॥

धूपं दद्यादधः किञ्चिद् घण्टां वामेन नादयन् ।

विशुद्धसितसूत्रेण वर्त्यः कार्पासजाः शुभाः ॥ ९० ॥

दीपार्थं गोघृतं मुख्यं मध्यान्त्ये तैलमाहिषे ।

सकर्पूरदशो दीपः फलं दद्याच्छताधिकम् ॥ ९१ ॥

दीपः केवलकर्पूरः सहस्रगुण उच्यते ।

प्रभूतसहस्रम्पूर्णेर्दशभिर्वा नवाष्टकैः ॥ ९२ ॥

दीपैः प्रतिनवैराराद् भ्राम्यमारात्रिकं भवेत् ।

न दग्धशेषवर्त्या तु पुनर्दीपं प्रवर्तयेत् ॥ ९३ ॥

नोच्छिष्टाशुचितैलाद्यैर्नान्यतैलघृतादिना ।

धूपदीपारात्रिकविधिः ।

ब्रीहेः पञ्चशतं तलं द्विगुणितं ते द्वे प्रकुञ्जं स्मृतं
 ते द्वेऽथ प्रसरस्तथैव कुडुबं प्रस्थार्धकं तद्वयम् ।
 प्रस्थं पात्रमथाढकं शिवमथो द्रोणं च खारिः क्रमात्
 खारीणां त्रितयं हि भार उदितो मानं यथाशास्त्रतः ॥ ९४ ॥
 नित्यं नैमित्तिकं चेति नैवेद्यं द्विविधं मतम् ॥ ९५ ॥
 तच्चोत्तमोत्तमाद्यं तु नवभेदेन वक्ष्यते ।
 तत्र नित्यविधेरष्टद्रोणशालिजतण्डुलैः ॥ ९६ ॥
 सार्धरात्रचतुष्कालपूजायां विनिवेदयेत् ।
 पायसं कूसरं गौलमन्नं तच्च चतुर्विधम् ॥ ९७ ॥
 यथोचितोपदंशाज्यदध्यूपरसोत्तरम् ।
 सगीतनृत्तवादित्रं सभूतबलिमङ्गलम् ॥ ९८ ॥
 तत्र पञ्चशतं दीपास्त्वेवं स्यादुत्तमोत्तमम् ।
 षड्भिर्द्रोणैश्चतुष्कालमभ्यर्च्य विनिवेदयेत् ॥ ९९ ॥
 शतद्वयं तथा दीपाः स्युर्गीतबलिनर्तनैः ।
 कुर्यात् पूर्वानुसारेण तत् स्यादुत्तममध्यमम् ॥ १०० ॥
 पञ्चद्रोणैश्चतुष्कालं निवेद्यं पूजनं तथा ।
 अष्टोत्तरशतं दीपा गीतवाद्यबलिक्रियाः ॥ १०१ ॥
 अग्निकार्यं च कुर्वीत स्यादेवं तूत्तमाधमम् ।
 सचतुर्द्रोणनैवेद्यं चतुष्कालोचितार्चनम् ॥ १०२ ॥
 गीताद्यं बलिहोमौ च प्रदीपाः स्युश्च सप्ततिः ।
 मध्यमोत्तममेवं स्यान्मध्यममध्यमथोच्यते ॥ १०३ ॥
 तण्डुलैरर्धभारैस्तु नैवेद्यं चार्चनान्वितम् ।
 मध्याह्न एव होमः स्याद् द्विकालं नर्तनादिकम् ॥ १०४ ॥
 चत्वारिंशत् प्रदीपाः स्युर्मध्यमध्ये बलिस्तथा ।
 खारितण्डुलनैवेद्यं चतुष्कालार्चना बलिः ॥ १०५ ॥
 होमो द्वादश दीपाः स्युर्गीताद्यं मध्यमाधमे ।

सायंप्रातस्त्वादकाभ्यां शिवं तन्मध्याह्ने स्यादहि वेदप्रदीपाः ।

रात्रावष्टौ स्युस्त्रिकालार्चनं यत् पञ्चातोद्यैः स्यात् कनिष्ठोत्तमाख्यम् ॥ १०६ ॥

प्रातः पात्रं सायमप्यत्र पात्रं स्यान्मध्याह्ने त्वादकं चाह्नि दीपौ ।

चत्वारो वै रात्रिदीपास्त्रिकालं पूज्येत्युक्तं मध्यमं यत् कनिष्ठे ॥ १०७ ॥

सायम्प्रातः प्रतिप्रस्थद्वयनैवेद्यमर्चनम् ॥ १०८ ॥

दीपोऽहि निशि दीपावित्युक्तं स्यादधमाधमम् ।

नित्यनैवेद्यप्रकरणम् ।

अष्टद्वेष्टेणं समारभ्य यावद् द्वादशभारकम् ॥ १०९ ॥

नैमित्तिकं स्यान्नैवेद्यं नवधात्रापि पूर्ववत् ।

उत्तमोत्तमपूर्वं तु पूजां चैव समूहयेत् ॥ ११० ॥

स्यात् काम्यमपि नैवेद्यं यावद्वा प्रार्थितं भवेत् ।

न कालनियमस्तत्र साङ्गं पूजां प्रशस्यते ॥ १११ ॥

नैमित्तिककाम्यकविधिः ।

क्षीरं त्रिभागं भागस्तु तण्डुलाः पायसस्य तु ।

भिन्नमुद्वैः समं तण्डुलाः स्युः समास्तस्य चार्थं घृतं स्याद् घृतार्थं गुलम् ।

तण्डुलेभ्यस्तथा गोपयः षड्गुणं स्याद् गुलान्नं तु तद्युक्तं रम्भाफलम् ॥ ११२ ॥

धौतदन्ता द्विजाः स्नातशुक्राम्बरा वस्त्रपूताम्भसा मौनिनस्तण्डुलान् ।

क्षालयेयुस्तथा सप्तवारं हृदा ज्वालयेयुस्तथार्थि धवित्रादिना ॥ ११३ ॥

ध्यात्वा चुलिं शक्तिमग्निं च रुद्रं वद्वेर्वीजात् तारकाद् वाभिपूज्य ।

तस्मिन्नग्नौ तद्भविः साधयेयुरोद्धाराद्येनाभिधार्याहरेयुः ॥ ११४ ॥

बृहत्यः कदल्यस्तथा कण्डहाल्यः (?) सकूश्माण्डमुर्वारुकं कर्कटी च ।

तथा कारवल्ल्याम्रके शृङ्गिवेरं वृहन्मुद्गमुद्गास्तथा नालिकेरम् ॥ ११५ ॥

तथा माषशिम्ब्यादकीमातुलुङ्गाः कुलस्थाश्च शस्तोपदंशाः सुराणाम् ।

कदल्यादिपैकैः सिताव्योषलोणैर्युतः स्याद् यवानीडधिकाथसूपः ॥ ११६ ॥

तथा मोदकांश्चोपदंशांश्च कुर्याद् घृतव्योषलोणैर्यवानीडधिकाथसूपैः ।

ततः पात्रवर्गं बहिः शोधयित्वा सशङ्खध्वनिच्छत्रमुत्थापयेच्च ॥ ११७ ॥

हिरण्याद्य (मा ? म) त्रं हृदा धौतमाद्विः कदल्यादिपत्राणि वात्राभिघार्य ।
हविस्तत्र दस्योमदंशादियुक्तं कदल्यादिपत्रैः फलैर्मोदकैश्च ॥ ११८ ॥

सिताक्षौद्रदध्युत्तरे तत्र गव्यं घृतं नूतनं षोडशद्वन्द्वकांशम् ।
निवेद्यात् प्रदेयं तु पुष्पाचिंतेऽस्मिंस्ततो धेनुमुद्रामृतैः प्लावयित्वा ॥ ११९ ॥

सम्प्रोक्ष्य मूलमन्त्रेण द(ग्ध्वा ? त्वा)म्भोऽग्निप्रियान्तकम् ॥ १२० ॥

सपुष्पदक्षिणकरो हविः स्पृष्ट्वा निवेदयेत् ।

ध्यायेत् तन्मनसा दिव्यमन्त्राद्यं तृप्तिकारणम् ॥ १२१ ॥

पानीयं च निवेद्यास्मै हृद्यं शीतं सुगन्धि च ।

बहिर्निर्गत्य तच्छेषमन्नं हुत्वानलेऽपि च ॥ १२२ ॥

मूलाङ्गादिविधानेन तत्तन्मन्त्रेण साधकः ।

तत्रोदितबलिं दत्त्वा वह्निं भक्त्या विसर्जयेत् ॥ १२३ ॥

प्रदक्षिणनमस्कारस्तुतिभिस्तं प्र(दाप ? साद)येत् ।

प्रक्षाल्य चरणौ सम्यगाचान्तोऽन्तः प्रविश्य तु ॥ १२४ ॥

सुतृप्तं शङ्करं स्मृत्वा दद्यादाचमनीयकम् ।

ततो लवङ्गकपूरतक्कोलक्रमुकान्वितम् ॥ १२५ ॥

निवेदयेच्च ताम्बूलं गन्धपुष्पाचिंतं ततः ।

पूजयित्वा नमस्कृत्य जपेन्मूलं तु शक्तितः ॥ १२६ ॥

अथवान्नं तु होमार्थं पात्रे संस्थाप्य रक्षितम् ।

सुतृप्ते त्वथ देवेशे वह्निकार्ये नियोजयेत् ॥ १२७ ॥

नैवेद्याधिकारः ।

अङ्गानि चैव परिवारगणांश्च + + पञ्चोपचारविधिना तु यथोपपत्त्या ।

सम्पूजयेदनुपपन्नमिहार्चने यत् तत् कल्पयेत् तु मनसैव समाहितात्मा ॥

अत्रोपचारभेदेन पूजाभेदास्तथापरे ।

वदन्ति तांश्च वक्ष्यामः किञ्चिद्भेदात् पुरोदितात् ॥ १२९ ॥

दशोपचाराः कथिता निवेद्यान्ते तु पूजने ।

होमान्तको तु कथिता षुपचारास्तु षाडेश ॥ १३० ॥

बल्यन्ते चापि ते ख्याताः पञ्चविंशतिसङ्ख्यया ।

नृत्तान्ते वापि षट्त्रिंशदुपचाराः प्रकीर्तिताः ॥ १३१ ॥

उत्तमोत्तमपूजायामुत्तमे वा भवन्त्युत ।

आसनावाहनाध्याणि पाद्यमाचमनीयकम् ॥ १३२ ॥

साङ्गं स्नानं तथा वस्त्रमुपवीतं च भूषणम् ।

गन्धपुष्पे च मालाश्च धूपो दीपश्च दर्पणम् ॥ १३३ ॥

नीराजनं च नैवेद्यमभिकार्यं प्रदक्षिणम् ।

नमस्कारः स्तुतिवाद्यगाते नित्यबलिस्तथा ॥ १३४ ॥

पूजासमर्पणं चेति पञ्चविंशति चोदिताः ।

अथासनादयः पञ्च पञ्चगव्याभिषेचनम् ॥ १३५ ॥

पञ्चामृताभिषेकश्च स्नानं राजोपचारतः ।

वस्त्रोपवीताभरणं गन्धपुष्पस्रगक्षतम् ॥ १३६ ॥

धूपदीपौ च मुकुरं नरिजनविधिस्ततः ।

नैवेद्यं चाथ ताम्बूलं विद्यापीठार्चनं ततः ॥ १३७ ॥

अभिकार्यं यथावच्च पादुके चामरेऽपि च ।

छत्रं च नित्ययात्रा च बलिदानं पवित्रकम् ॥ १३८ ॥

प्रदक्षिणनमस्कारस्तोत्राण्यातोद्यमेव च ।

गीतं नृत्यं च पूजादेः समर्पणमतः परम् ॥ १३९ ॥

षट्त्रिंशदुपचाराः स्युरेवं तन्त्रोदिताः क्रमात् ॥

इति निगदितमार्गास्तूपचाराः प्रदिष्टाः

पृथगिह परिपाठ्या शैवतन्त्रेषु दृष्टाः ।

यजनविधिषु शम्भोर्वेदितव्या यथावत्

स्वभिमतफलसिद्धिः स्याद् यथा भक्तिभाजाम् ॥ १४० ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे

क्रियापादे उपचारपटलः पञ्चमः ।

अथ षष्ठः पटलः ।

अत्रैः षड्भिः स्यात् क्रियायाः प्रसिद्धिर्मन्त्रा मुद्राः कुण्डवन्मण्डलानि ।
द्रव्यावासिः साधकाश्चेति सम्यग् वक्ष्यन्ते तान्यत्र तन्त्रोदितानि ॥ १ ॥

अत्र मतज्ञे—

“मुद्रामण्डलमन्त्राश्च क्षेत्रद्रव्याणि साधकाः ।
गुरुणा + + + + नि यथावत् तन्निबोधत ॥”

इति । तद् यथा—

मननत्राणधर्मित्वं वाचके दैवतस्य तु ।
यत्र तन्मन्त्रसंज्ञं स्याद्भ्रस्वदीर्घादिलक्षणैः ॥ २ ॥
मननात् सर्वभूतानां त्राणात् संसारसागरात् ।
मन्त्ररूपा हि तच्छक्तिर्मननत्राणधर्मिणी ॥ ३ ॥

रत्नत्रये—

“निर्विकल्पात्मकं ब्रह्म यन्नित्यानन्दविग्रहम् ।
शिवतत्त्वं हि तन्नित्यं निर्मलं व्यापि चिद्ब्रह्मम् ॥
शिवादभिन्ना तच्छक्तिर्नित्या तद्वत् सुनिर्मला ।
चितिः स्वतन्त्रा विश्वस्य सिद्धिहेतुर्हि सा मता ॥
कृत्यं पञ्चविधं तस्य शिवस्य करुणानिधेः ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः ॥
सिध्येच्छक्त्यान (ये ? या) स्वेच्छाक्रियाज्ञानाख्यभेदया ।
सा शक्तिर्बिन्दुतामेति परापरविभागतः ॥
तस्माच्च नादो ह्यभवन्मूलबीजं शिवात्मकम् ।

तथाहि—

नादाख्यं यत् परं बीजं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥
मुक्तिदं परमं दिव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
सान्तं सर्वगतं शून्यं मात्राद्वादशकास्थितम् ॥

ह्रस्वा ब्रह्म समाख्याता दीर्घा ह्यङ्गानि षण्मुखा ।
 अनुस्वारो भवेत्त्रेत्रं सर्वेषां चोपरि स्थितः ॥
 षष्ठं त्रयोदशान्तं च पञ्चमे विनियोजयेत् ।
 शिवं तं तु विजानीयान्मन्त्रमूर्तिं सदाशिवम् ॥”

इति । कालोत्तरे —

“मूलमन्त्रो विनिर्दिष्टो ब्रह्मभिः स्वाङ्गसंयुतः ।
 अकारश्चाप्युकारोऽथ मकारो बिन्दुनादवान् ॥
 ताराख्यः प्रणवो ह्येष शब्दब्रह्मात्मको मतः ।
 अहमबिन्दुनादाढ्यं वाग्भवं बीजमीरितम् ॥
 विश्ववाग्भूतिदं तत् तु वागीश्वर्यास्तनुर्भवेत् ।
 शक्तिबीजं तथा तारो वाग्भवं च ततः परम् ॥
 पञ्चाशद्वर्णरूपा या मातृका परमेश्वरी ।
 अवर्गोऽस्या मुखं साङ्गं कचवर्गौ भुजद्वयम् ॥
 टतवर्गौ तथा पादौ पार्श्वयुग्मं पफौ बभौ ।
 पृष्ठं वकारो नाभिस्तु भकारो ह्रन्मकारकम् ॥
 त्वगसृक्कांसमेदोस्थिमज्जाशुक्लानि यादयः ।
 धातवः सप्त वर्णाः स्युर्हकारः प्राण इष्यते ॥
 स्फूर्तिः क्षकारः सक्रोधो विश्वलोकमयी तनुः ।
 लिपेर्हृदादीन्यङ्गानि लिख्यन्तेऽत्र यथाक्रमम् ॥
 ह्रदयं षष्ठवर्गान्त्यं बिन्दुमद्वीप्सितं भवेत् ।
 प्रथमप्रथमं बिन्दुयुक्तं तद्वच्छिरः स्मृतम् ॥
 प्रथमस्य द्वितीयं तु सानुस्वारं शिखा तथा ।
 वीप्सितः कचशब्दस्तु तथैव कवचं स्मृतम् ॥
 तृतीयं च चतुर्थं च प्रथमस्य त्रिनेत्रकम् ।
 वर्गान्त्यं सविसर्गं तु वीप्सितं त्वच्छमुच्यते ॥

तारप्राणान्वितं शुक्लमौकारस्वरमण्डितम् ।
 षण्णां च मातृकाज्ञानामादौ संयोजयेत् क्रमात् ॥
 नमः स्वाहा वषट् चाथ हुं वौषट् फट् च जातयः ।
 चतुर्थ्यन्ताङ्गमन्त्राणामन्ते योज्या यथाक्रमम् ॥
 मुद्राक्ष (?) स्फटिकाक्षसूत्रकलशांश्चाविभ्रती पुस्तकं
 हस्तैर्दक्षिणपूर्वकैस्त्रिनयना शुक्लस्रगालेपना ।
 कुन्दाभाक्षरविग्रहा शशिकलामौलिः प्रसन्नानना
 ध्येया स्याद्विपिदेवताम्बुजगता (सुप्ताभिः ? मुक्ताभः) रालङ्कृता ॥
 पञ्चाशद्वर्णमूर्तिं तामेवं ध्वात्वा स्वविग्रहे ।
 तद्वर्णान् क्रमशो न्यस्य जपन् मन्त्रान् स साधयेत् ॥
 केशान्ते मुखवृत्तेऽक्ष्णोः श्रोत्रयोर्ग्राणयोरपि ।
 गण्डयोरोष्ठयोर्दन्तपङ्क्त्योर्मूर्धस्ययोः स्वरान् ॥
 कवर्गं दक्षिणे हस्ते चवर्गमितरे भुजे ।
 टतवर्गौ तथा पङ्क्त्यां पफौ पार्श्वद्वये न्यसेत् ॥
 पृष्ठे नाभौ च हृदये न्यसेद् बभ्रमसंज्ञितान् ।
 त्वगसृङ्मांसमेदोस्त्रिमज्जाशुक्लासुपङ्कजे ॥
 हृत्स्थे तत्पत्रगान् यादीनष्टार्णानात्मनि न्यसेत् ।
 क्षकारं कर्णिकायां तु सर्बगं संसरन् न्यसेत् ॥

मातृकान्यासः ।

पञ्चानां ब्रह्मणां चापि स्वरूपन्यास इष्यते ।
 सद्योजातादिकानि स्युर्ब्रह्माण्युद्धानुजप्ययोः (?) ॥ ४ ॥
 तान्येवेशा (नादि ? न) पूर्वाणि न्यासपूजादिकेषु वै ।
 गौक्षीरधवलं सद्यं वामदेवं जपारुणम् ॥ ५ ॥
 नीलाङ्गनाभं चाघोरं पुरुषं कुङ्कुमप्रभम् ।
 शुद्धस्फटिकसङ्काशमीशानाख्यं मुखं विभोः ॥ ६ ॥

वक्त्रं वर्णास्तु तन्मन्त्राः कलास्तन्मूर्तयोऽपि च ।
 अपृथक् च पृथक् चैव ज्ञातव्यास्तत्र तत्र हि ॥ ७ ॥
 सद्योजातं तु वारुण्यां वामदेवं तथोत्तरे ।
 अघोरं दक्षिणमुखं प्राचि तत्पुरुषाद्वयम् ॥ ८ ॥
 ईशानमूर्ध्ववक्त्रं स्याद् ब्रह्माणीमानि पञ्च हि ।
 ह्रस्वस्वरान् बिन्दुयुतांस्ताराद्यान् ब्रह्मणां क्रमात् ॥ ९ ॥
 संयोज्यादौ चतुर्थ्यन्तं नमोन्तं च पृथक् पृथक् ।
 ब्रह्माणीमानि पञ्च स्युः सामान्यान्यर्चनादिषु ॥ १० ॥
 दीक्षितानां तु सर्वेषां पाठ्यान्वेवाविशेषतः ।
 अथ वेदागमोक्तानि पञ्च ब्रह्माणि पञ्च हि ॥ ११ ॥
 तानि द्विजातिपाठ्यानि न स्त्रिशूद्रादिभिः क्वचित् ।
 तान्युद्ध्रियन्ते सावित्री गायत्री शैवसम्मता ॥ १२ ॥
 तद्वत् पाशुपतास्त्रं च व्योमव्यापि च मन्त्रराट् ।
 तारं च शुक्लद्योकारो जातं षष्ठाद्यमभियुक् ॥ १३ ॥
 षष्ठाद्यं ध्यामिचेत्यादौ नववर्णान् समुद्धरेत् ।
 सद्योजातं चतुर्थ्यन्तं द्वादशस्वरकं जलम् ॥ १४ ॥
 नतिं भवेति द्विगुणमनात्यन्ते भवे पदम् ।
 भजस्वेति च मां चोक्त्वा चतुर्थ्यन्तं भवोद्भवम् ॥ १५ ॥
 नमश्च सद्यस्त्वेकोनचत्वारिंशद्विरक्षरैः ।
 प्रणवो वामदेवश्च चतुर्थ्यन्तो नमोन्वितः ॥ १६ ॥
 ज्येष्ठश्च रुद्रः कालोऽपि त्रयस्तावन्नमोन्तकाः ।
 पृथक् कालबलान्ते स्यात् पदं विकलनाय तु ॥ १७ ॥
 बलप्रमथनाय स्यात् सर्वभूतपदं ततः ।
 दमनश्च चतुर्थ्यन्तः तद्विभक्त्या मनोन्मनः ॥ १८ ॥
 नमोन्तो नवभिस्तारैः पञ्चसप्ततिवर्णकैः ।
 वामदेवस्य मन्त्रोऽयं नवशक्त्युपबृंहितः ॥ १९ ॥

तारं वर्गादिकं चोक्त्वा घोरेभ्योऽथेति चोद्धरेत् ।
 अथमुक्तं पुनश्चैतत् पदं घोरद्वयं ततः ॥ २० ॥
 तारेभ्यस्त्यक्षरादूर्ध्वं चशब्दं सर्वतःपदम् ।
 सर्वसर्वेभ्य इत्युक्त्वा नमस्तेति पदद्वयम् ॥ २१ ॥
 अस्तु रुद्रपदान्ते तु रूपेभ्य इति चोद्धरेत् ।
 अघोरमन्त्र एष स्यादुक्तः षट्त्रिंशदक्षरैः ॥ २२ ॥
 तारं तदिति चोद्धृत्य पुरुषायपदं ततः ।
 विघ्नेत्यर्णद्वयं हे च महादेवाय चोद्धरेत् ॥ २३ ॥
 पञ्चमस्य चतुर्थं स्याच्चतुर्थस्वरभूषितम् ।
 महितञ्चतुर्वर्णान् रुद्रः प्रेत्यक्षरत्रयम् ॥ २४ ॥
 चोदयादिति मन्त्रोऽयं पञ्चविंशतिवर्णकः ।
 भवेत् तत्पुरुषस्यापि मन्त्रोऽथेशान उच्यते ॥ २५ ॥
 तारं स्वरं चतुर्थं च सप्तमात् पञ्चमादपि ।
 पञ्चमे दीर्घसर्गान्ते चोद्धृत्यार्णचतुष्टयम् ॥ २६ ॥
 सर्वशब्दं च विद्यानामीश्वरश्चाक्षराणि षट् ।
 सर्ववर्णौ च भूतानां ब्रह्माधिपतिरित्यपि ॥ २७ ॥
 षष्ठ्यन्तं ब्रह्मशब्दं च प्रोक्तोऽथाधिपतिस्त्विति ।
 ब्रह्मा शिवश्चतुर्वर्णान् मेअस्त्वित्यक्षरत्रयम् ॥ २८ ॥
 सदाशिवं च तारान्तः स्याच्चत्वारिंशदक्षरैः ।
 प्रोक्तो ह्रीशानमन्त्रोऽयं ब्रह्माणीमानि पञ्च हि ॥ २९ ॥
 अष्टौ त्रयोदशाष्टौ च चतस्रः पञ्च एव च ।
 कलाः सद्यादिकानां स्युरष्टात्रिंशद् यथाक्रमम् ॥ ३० ॥
 ब्रह्मभङ्ग्या न्यसेद् देहे पञ्च वक्त्रेषु च न्यसेत् ।
 बक्रभङ्ग्या कलान्यासं कुर्यात् स्थानेष्वनुक्रमात् ॥ ३१ ॥
 शशिनीं चाङ्गदामिष्टां मरीचीं ज्वालिनीं तथा ।
 ईशानस्य कलाः पञ्च न्यसेत् तत्पदपञ्चकैः ॥ ३२ ॥
 शान्तिं विद्यां प्रतिष्ठां च निवृत्तिं च स्वकैः पदैः ।
 सह तत्पुरुषस्यैताश्चतस्रो विन्यसेत् क्रमात् ॥ ३३ ॥

तामसीं च तथा मोहां क्षपां निष्ठाह्वयामपि ।
 मृत्युं मायां भयां चैव जरां चाषोरजाः कलाः ॥ ३४ ॥
 राजसीं चैव रक्षां च रतिं चाप्यथ पालिनीम् ।
 सज्जमन्या क्रियां तद्वद् बुद्धिं छायाह्वयामपि ॥ ३५ ॥
 धात्रीं च भ्रामणीं चैव मोहिनीं चाभयां न्यसेत् ।
 स्वैः पदैर्वामदेवस्य कला हेतास्त्रयोदश ॥ ३६ ॥
 सिद्धिं चार्द्धं द्युतिं लक्ष्मीं मेधां कान्तिं स्वधां स्थितिम् ।
 सद्योजातकला हेतास्तत्पदैर्विन्यसेत् क्रमात् ॥ ३७ ॥
 नवाष्टादिजगत्यर्णैः शरवेदाक्षरैरपि ।
 क्रमादीशानमन्त्रस्य कलाः पञ्च न्यसेद् बुधः ॥ ३८ ॥
 नवाष्टवेदवेदार्णैः कलास्तत्पुरुषस्य च ।
 शरबाणाश्विगायत्रशराग्निशरसायकैः ॥ ३९ ॥
 स्वाक्षरैर्विन्यसेद् विद्वानघोरस्य कलाष्टकम् ।
 ऊर्ध्वप्रादक्षिणोदीच्यपार्श्वमाशास्थमूर्धसु ॥ ४० ॥
 ईशानस्य कलाः पञ्च नमोन्तं विन्यसेत् पृथक् ।
 ऊर्ध्वास्ये शान्त्यतीताख्यां प्रणवेन कलां न्यसेत् ॥ ४१ ॥
 ततः प्रा + + + + + पौरुषीः ।

कला विन्यसेदिति यावत् ।

अघोरस्याथ हृदये कण्ठे चैवासयोः क्रमात् ॥ ४२ ॥
 नाभौ च जठरे पृष्ठे तथोरसि कलां न्यसेत् ।
 गुह्योपरिष्ठाद् गुह्ये चाप्यूर्वोर्जान्वोश्च जङ्घयोः ॥ ४३ ॥
 स्फिजोः कट्यां पार्श्वयोश्च वामदेवकलां न्यसेत् ।
 पादयोश्च तथा पाण्योर्नासिकायां च सूर्ध्वनि ॥ ४४ ॥
 बाह्वोश्च विन्यसेदष्टौ सद्योजातकलाः क्रमात् ।
 अंसोर्वादिषु युग्मेषु पूर्वं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ ४५ ॥

वामे पश्चात् क्रमोऽयं स्यात् सर्वत्र स्वस्वमुद्रया ।
सामान्येन षडङ्गानि वक्ष्यन्ते ब्रह्मणां क्रमात् ॥ ४६ ॥

यथा —

प्रोक्तं प्रयोगमञ्जर्यां पौष्करे च निबन्धने ।
शरतारादिसर्वज्ञशब्दः स्यात् सचतुर्थिकः ॥ ४७ ॥
नमोन्तं हृदयं प्रोक्तमथ वर्गादिमुद्धरेत् ।
षष्ठान्तं सप्तमोपेतं पञ्चमाद्यं दशान्तयुक् ॥ ४८ ॥
तेजोमालिनिशब्दश्च तृप्तया ब्रह्मशब्दयुक् ।
शिरश्चतुर्थ्या स्वाहान्तः शिवो मन्त्र उदाहृतः ॥ ४९ ॥
तृतीयस्य तृतीयार्णं सजलं त्वथ सप्तमात् ।
तृतीयं तत्स्वरोपेतं तकारं शिखिशब्दयुक् ॥ ५० ॥
शिखे चानादिबोधोऽयं जातियुक्तं शिखां तथा ।
वज्रिणे च समुद्धृत्य वज्रशब्दं धराय च ॥ ५१ ॥
स्वतन्त्रं च चतुर्थ्यन्तं कवचाय च जातियुक् ।
अष्टमाद्यं तृतीयाद्यं चतुर्थं चाष्टमस्य च ॥ ५२ ॥
त्रयोदशान्तयुक्तानि बिन्दुमन्त्युद्धरेत् क्रमात् ।
अलुप्तशक्त्येशब्दं नेत्रत्रयपदं तथा ॥ ५३ ॥
चतुर्थ्यन्तं समुद्धृत्य नेत्रं स्याज्जातियोजितम् ।
अथ पाशुपतास्त्रं तु यत् पञ्चार्णं तदुद्धरेत् ॥ ५४ ॥
अनन्तशक्त्ये चोक्त्वा स्यादस्त्रं तत् स्वजातियुक् ।
शिव एव विसर्गान्तः शिवास्त्रं परिकीर्तितम् ॥ ५५ ॥
षष्ठवर्गद्वितीयं तु चतुर्ध्वार्धमात्रयुक् ।
प्रथमात् पञ्चमादाद्यौ संयोज्यैव द्विवर्णकम् ॥ ५६ ॥
अस्त्रं पाशुपतं त्वेतत् समस्तदुरितापहम् ।
अस्यादौ सशिवास्त्रं तु शिखाबीजे नियोजयेत् ॥ ५७ ॥
सर्वविघ्नहरं दिव्यं मुक्तिदं स्याज्जपादिभिः ।
अष्टमाद्यं भूमियुक्तं तृतीयस्वरबिन्दुम् ॥ ५८ ॥

प्रथमं बीजमुद्दिष्टं षष्ठाद्यं स्याद् द्वितीयकम् ।
 तृतीयमष्टमाद्यं तु पञ्चमस्वरसंयुतम् ॥ ५९ ॥
 वर्मास्त्रे चेति पञ्चार्णमस्त्रं पाशुपतं स्मृतम् ।
 एवं पाशुपतास्त्रं स्यादघोरास्त्रमथोच्यते ॥ ६० ॥
 षष्ठाद्यं सामिमुद्धृत्य स्फुरशब्दं च वीप्सितम् ।
 द्वितीयस्य चतुर्थं च द्वादशान्तस्वरान्वितम् ॥ ६१ ॥
 अग्निं पुनश्च तावुक्त्वा पञ्चमाद्यमथानलम् ।
 तनुरूपपदं चोक्त्वा चटयुग्मं समुद्धरेत् ॥ ६२ ॥
 प्रचटेति द्विरुच्चार्य कद्वन्द्वं वमद्वयम् ।
 वीप्सितं घातयपदं वर्मास्त्रेऽग्निप्रियां तथा ॥ ६३ ॥
 तारादिकमघोरास्त्रं द्विचत्वारिंशदक्षरम् ।
 रसर्तुवेददशकैर्वेमुनागैश्च सम्मितैः ॥ ६४ ॥
 साक्षरैर्जातिसंयुक्तैरस्त्रान्ताङ्गानि तानि षट् ।
 तृतीयस्य तृतीयं तु पञ्चमस्वरदण्डयुक् ॥ ६५ ॥
 शुक्लश्चैव विसर्गान्तमक्षरद्वयमुच्चरेत् ।
 प्लुतान्तताराद्यमिदं मृत्युञ्जयमिति स्मृतम् ॥ ६६ ॥
 शुक्लपद्मयु(ता ? गा)न्तःस्थचन्द्रमण्डलसम्पुटे ।
 अमृतासारविष्यन्दि ध्यात्वा मृत्युरुजापहम् ॥ ६७ ॥
 बिन्दुनादान्वितः प्राणः शुक्लं सर्गी च पाण्डरम् ।
 ध्यायेद्दधृदयपद्मस्थं चिन्मन्त्रोऽयं शिवात्मकः ॥ ६८ ॥
 प्रणवश्चैव तच्छब्दो महेशायपदं ततः ।
 विद्मशब्दस्य हे चान्ते वाग्विशुद्धाय धीमाहि ॥ ६९ ॥
 तनःपदान्ते रुद्रः स्यात् प्रकारान्ते तु चोदयात् ।
 इत्युक्ता शिवगायत्री शैवी सावित्र्यथोच्यते ॥ ७० ॥
 त्रयोदशस्वराब्जं तु जलं वायुसमन्वितम् ।
 षष्ठान्तं चोद्धरेदस्य पदस्यादौ च कारकम् ॥ ७१ ॥

व्योमशब्दं चतुर्थ्यन्तं विद्मशब्दं च हेयुतम् ।

शुक्लं षष्ठस्वरयुतमन्यं षष्ठान्तसंयुतम् ॥ ७२ ॥

सूक्ष्मशब्दं चतुर्थ्यन्तं धीमहीत्यादिकं तथा ।

प्राग्वत् समुद्धृत्य भवेत् सावित्री शिवसंज्ञिता ॥ ७३ ॥

द्वितीयस्य तृतीयं तु बिन्दुनादसमन्वितम् ।

गणेशबीजं विज्ञेयं स्वदीर्घैर्वाङ्गकल्पना ॥ ७४ ॥

तारादिकं द्वितीयस्य तृतीयं कर्णबिन्दुयुक् ।

गुरुभ्योऽन्ते नमश्चोक्तो मन्त्रोऽयं गुरुपूजने ॥ ७५ ॥

तारान्ते स्याद् वचच्छब्दो(?) भुवोऽन्ते च नतिर्भवेत् ।

स्कन्दस्य सप्तवर्णोऽयं मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ७६ ॥

पुरस्तारकं व्योमदीर्घाम्बिन्दुप्लुतं शक्तिबीजं च शुक्लं ससर्गम् ।

समुद्धृत्य सूर्याय नत्यन्तमुक्त्वा भवेन्मूलमन्त्रस्तु सौरो नवार्णः ॥ ७७ ॥

ओं ब्रह्मतेजो ज्वल ज्वल हृदयाय नमः । ओं अम् विष्णुतेजः प्रज्वल
प्रज्वल अर्काय शिरसे स्वाहा । ओं अं रुद्रतेजो ज्वल भूर्भुवः स्वरो ज्वा-
लिनि शिखायै वषट् । ओं अं महेश्वरतेजः शूलिनि कवचाय हुम् । ओं अं
सत्यसदाशिवतेजः कपर्दिनि कपर्दिनि अस्त्राय फट् । ओं अं हं शिवतेजः
शक्ते नेत्रत्रयाय वौषट् ।

अज्ञानीमानि सूर्यस्य स्वांस्त्रशुद्धे करद्वये ।

ज्येष्ठाद्यङ्गुलिषु न्यस्य क्रमादस्त्रं तलद्वये ॥ ७८ ॥

शीर्षास्यहृदुपस्थेषु पदयोर्दिक्षु च क्रमात् ।

तान्यङ्गान्येव विन्यस्य हृदयादिषु च क्रमात् ॥ ७९ ॥

पूजाजपादिकं कुर्यात् सिद्धिमिष्टां स विन्दति ।

तारं सान्तं बिन्दुयुतं कान्तं बिन्दुसमन्वितम् ॥ ८० ॥

द्वितीयस्य द्वितीयं च षोत्कायेति समुद्धरेत् ।

प्रयोजनतिलकसंज्ञो मन्त्रोऽयं भास्करस्य निर्दिष्टः ॥ ८१ ॥

पूज्योऽनेनापि रविः शैवैरिष्टार्थसिद्धये नित्यम् ।

मन्त्रं व्योमव्यापिसंज्ञं तु वक्ष्ये व्यक्तस्वेकाशीतिसंख्यैः पदैर्यैः ।

वर्णानां चाप्यष्टषष्ठ्युत्तराणि त्रिण्यवास्मिन् संख्यया वा शतानि ॥ ८२ ॥

प्रथमं तु पदं तारं सप्तमान्त्यं त्वगन्वितम् ॥ ८३ ॥
 त्रयोदशस्वरोपेतमुद्धृत्यैवं तथा पुनः ।
 षष्ठ्यान्त्यं व्यापिने चेति द्वितीयं पञ्चवर्णकम् ॥ ८४ ॥
 व्योमशब्दश्च रूपाय सर्वव्यापिन इत्यपि ।
 पञ्चाक्षरे पदे प्रोक्ते शिवायेति त्रियक्षरम् ॥ ८५ ॥
 अनन्तानाथशब्दैस्तं चतुर्थ्या चतुरक्षरे ।
 पदेऽथानाश्रितायेति पञ्चार्णैरष्टमं पदम् ॥ ८६ ॥
 त्रिचतुर्वर्णकपदे चतुर्थ्या ध्रुवशाश्वतौ ।
 योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिन इत्यपि ॥ ८७ ॥
 वसुबाणाक्षरे ध्यानाहाराय शरवर्णकम् ।
 पञ्चाक्षरस्तु तारादिमुख्यं षड्वर्णकं पदम् ॥ ८८ ॥
 सर्वप्रभव इत्यर्णैः पञ्चभिः स्यात् पदं ततः ।
 शिवायेति त्रिवर्णं स्यादथेशानादिपञ्चकम् ॥ ८९ ॥
 उक्त्वा मूर्धाय वक्राय हृदयायेति चोपरि ।
 गुह्याय मूर्तये चेति पदसप्तमुनिसंख्यया ॥ ९० ॥
 समुद्रोदधिसंख्यार्णैः क्रमात् स्यात् पदपञ्चकम् ।
 तारं नमो वीप्सितं च पदं पञ्चाक्षरं भवेत् ॥ ९१ ॥
 षड्भिर्गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे वर्णद्वयं पदम् ।
 अनिधनाय पञ्चार्णैः सर्वविद्याधिपाय तु ॥ ९२ ॥
 सप्तार्णैः सर्वयोगाधिगतायेत्यष्टवर्णकम् ।
 ज्योतीरूपाय बाणाणैः परमेश्वरपराय च ॥ ९३ ॥
 अष्टाक्षरैः परमात्मन्पदं स्याद् वेदवर्णकम् ।
 अचेतनाचेतनेति पदं सप्ताक्षरैः स्मृतम् ॥ ९४ ॥
 व्योम्निद्वन्द्वं चतुर्वर्णं व्यापिन् युग्मं तथैव हि ।
 अरूपिन् वीप्सितं षड्भिः प्रथमद्वितयं तथा ॥ ९५ ॥
 तेजोयुग्मं चतुर्वर्णं ज्योतिर्द्वन्द्वं तथैव हि ।
 अरूप चाप्यनमे च अधुमेति त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ९६ ॥

अभस्म चाप्यनादे च नात्रयं धूत्रयं तथा ।
 त्रियक्षराणि चत्वारि पदानीमानि वै विभोः ॥ ९७ ॥
 ताराद्यं भूर्भुवःस्वश्च द्वित्रिद्व्यर्णानि वै क्रमात् ।
 पदान्यनिधनेत्यर्णैश्चतुर्भिर्निधनं त्रिभिः ॥ ९८ ॥
 निधनोद्धवपञ्चार्णं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
 द्वाभ्यां शर्वेति च पदं विज्ञेयमिह देशिकैः ॥ ९९ ॥
 महेश्वरेति श्रुत्यर्णं महादेवपदं तथा ।
 सद्भावेश्वरपञ्चार्णं महातेजश्चतुष्टयम् ॥ १०० ॥
 पञ्चार्णं योगाधिपते मुञ्चद्वन्द्वचतुष्टयम् ।
 प्रथमद्वितयं षड्भिः शर्वयुग्मचतुष्टयम् ॥ १०१ ॥
 भवद्वन्द्वं चतुर्भिः स्याद् भवोद्धवचतुष्टयम् ।
 अथाष्टवर्णं हि पदं सर्वभूतसुखप्रदम् ॥ १०२ ॥
 सप्ताक्षरं सर्वपूर्वं सान्निध्यकर इत्यपि ।
 ब्रह्मविष्णुरुद्रपदं (१२) पदमष्टाक्षरं भवेत् ॥ १०३ ॥
 अनर्चितानर्चितेति तथासंस्तुतवीप्सितम् ।
 अष्टवर्णे पदे ज्ञेये पूर्वस्थितचतुष्टयम् ॥ १०४ ॥
 साक्षिद्वन्द्वं चतुर्भिः स्याद् वेदार्णं तुर्ययुग्मकम् ।
 पतङ्गेति त्रिवर्णं स्यात् पिङ्गयुग्मं चतुष्टयम् ॥ १०५ ॥
 ज्ञानद्वयं शब्दयुगं सूक्ष्मयुग्मं पदत्रयम् ।
 पृथग् वेदाक्षराण्येव शिवशर्वद्वयं द्वयम् ॥ १०६ ॥
 सर्वदेति त्रिभिर्वर्णैः पञ्चार्णैरौन्नमो नमः ।
 शिवाय त्र्यक्षरपदं विज्ञेयं देशिकोत्तमैः ॥ १०७ ॥
 तारपूर्वं नतिद्वन्द्वं पदं पञ्चाक्षरं स्मृतम् ।
 एकाशीतिपदान्येवं विज्ञेयानि क्रमेण हि ॥ १०८ ॥
 तारौ सर्वात्मनेज्योतिःसहितं हृदयं स्मृतम् ।
 द्वितीयं पदमुच्चार्य सशिवब्रह्मशब्दयुक्तं ॥ १०९ ॥

स्वजातियुक्तं तु शिरः शिखामन्त्रोऽपि कथ्यते ।

तृतीयं पदमुच्चार्य ज्वालिनीति द्विरभ्यसेत् ॥ ११० ॥

जातियुक्ता शिखोक्ताथ चतुर्थं पदमुद्धरेत् ।

उक्त्वा पिङ्गलशब्दं तु वर्म स्याज्जातियोजितम् ॥ १११ ॥

पञ्चमं पदमुच्चार्य शिवाघोरास्त्रके तथा ।

जातियुक्तं तदस्त्रं स्यादङ्गानीमानि पञ्च हि ॥ ११२ ॥

व्योमव्यापिमनोरस्य चन्द्रज्ञानोक्तमार्गतः ।

षडङ्गान्यपि दृष्टानि लिख्यन्ते तान्यनुक्रमात् ॥ ११३ ॥

ओं व्योमव्यापि शिव ओं नमः सर्वात्मने पराय परमेश्वरपराय यो-
गाय योगसम्भवाय करकर कुरुकुरु सत्यसत्य भवोद्भव वामदेवाय सर्वकार्य-
प्रशमन सदाशिव प्रसन्न नमोऽस्तु ते स्वाहा हृदयाय नमः । ओं शिव ब्रह्म-
शिरसे स्वाहा । ओं शिवहृदयज्वालिनि स्वाहा ज्वालिन्यै शिखायै वषट् ।

शिवात्मकं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम् ।

आवर्तये महाघोरं कवचं पिङ्गलं शुभम् ॥ ११४ ॥

आयाहि पिङ्गल ! महाकवच ! शिवाज्ञया हृदयं बन्धबन्ध ज्वलज्वल
घूर्णघूर्ण शक्तिवज्रधर वज्रपाशमनुप्रविश्य सर्वदुष्टान् स्तम्भयस्तम्भय हुं फट् ।
पिङ्गलाय कवचाय हुम् । ओं जुं सं ज्योतीरूपाय नेत्रत्रयाय वौषट् । पूर्व-
वदघोरास्त्रमेवास्त्रम् ।

“सर्वकर्मकराः सर्वे सर्वे सर्वार्थसाधकाः ।

सर्वरूपधराः सर्वे सर्वे चामोघशक्तयः ॥

शिवकार्योद्भवाः सर्वे न मीमांस्याः कथञ्चन ।”

इति मतङ्गे ।

इत्यस्मादस्य मन्त्रस्य न पृथग्देवताः स्मृताः ।

शिवो हि देवता चास्य ऋषिः शक्तिर्गार्ग्यत्रिसंज्ञितम् (!) ॥ ११५ ॥

छन्दः स्मृतमथोऽन्यत् तु न मीमांस्यं कथञ्चन ।

षष्ठ्यां भूमिबीजस्थं पञ्चमस्वरविन्दुयुक्तम् ॥ ११६ ॥

तोयं सर्गि जलं वायुर्द्वादशान्तयुतं तथा ।

षष्ठान्त्यं व्यापिनेशब्दो हुतभुविप्रययान्वितः ॥ ११७ ॥

तारादिर्दशवर्णोऽयं व्योमव्यापी शिवात्मकः ।

तारं स्व(रौर्द्वि ? रद्वि)तीयश्च स्वरौ वेदर्तुसम्मितौ ॥ ११८ ॥

व्योमव्यापी चतुर्थ्यन्तस्तारान्तोऽयं दशाक्षरः ।

तारं प्रासादबीजं च शिवायेत्यक्षरत्रयम् ॥ ११९ ॥

नमस्कारश्च सप्तार्णो + + मन्त्रः शिवस्य च ।

प्रासादोक्ताङ्गबीजान्ते शिकाराद्यक्षराणि तु ॥ १२० ॥

संयोज्य जातियुक्तानि शिवाङ्गानि भवन्ति हि ।

शिवशब्दश्चतुर्थ्यन्तो नत्यादिस्तु शराक्षरः ॥ १२१ ॥

उद्धृतः शिवमन्त्रोऽयं धर्मकामार्थमोक्षदः ।

तारादि स्याद् द्विजातीनां + + + + + ॥ १२२ ॥

+ + + + + षडक्षरः ।

नानेन सदृशोऽन्योऽस्ति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ १२३ ॥

सतारः शक्तिबीजादिर्मन्त्रोऽयं हि षडक्षरः ।

शैवाष्टाक्षरसंज्ञः स्याद् भोगमोक्षफलप्रदः ॥ १२४ ॥

अस्यैवाष्टाक्षरस्यान्ते चिन्मात्रं योजयेद् यदा ।

मन्त्रो दशाक्षरः प्रोक्तः कल्पवृक्ष इवेष्टदः ॥ १२५ ॥

पञ्चानामपि मन्त्राणां पङ्क्तिर्गायत्रमेव च ।

बृहती च पुनः पङ्क्तिश्छन्दांस्युक्तान्यनुक्रमात् ॥ १२६ ॥

वामदेवो दधीचश्च शिलादश्च महामुनिः ।

सनत्कुमारश्चेत्यु(क्त्वा ? क्ता) मुनयोऽमी यथाक्रमम् ॥ १२७ ॥

शिव एव स्वयं साक्षाद् दैवतं पूर्वमन्त्रयोः ।

शिष्टानां तु त्रयाणां स्यात् सशक्तिर्देवता शिवः ॥ १२८ ॥

एतेषां तु पृथक्कल्पा लिखिताः पूर्वपद्धतौ ।

मन्त्रपादे तु मन्त्राणां यस्मिन् पटल उद्धृताः ॥ १२९ ॥

सर्वेऽप्यमितसामर्थ्याः सर्वे सर्वार्थसिद्धिदाः ॥ १३० ॥

इतीह मन्त्राः कथिता यथावद् (या? य)थाप्रधानाः शिवतन्त्रसिद्धाः ।
क्रियाः प्रसिध्यन्ति च यैरशेषाः शिवत्वपूर्वाभ्युदयाश्च मोक्षः ॥ १३१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे

क्रियापादे मन्त्रोद्धारपटलः षष्ठः ॥

अथ सप्तमः पटलः ।

वक्ष्ये मुद्राः शैवतन्त्रप्रसिद्धा यामिः पूजाकर्मसिद्धिः प्रदिष्टा ।
सूर्यस्यादौ षड् विशेषेण पश्चाच्छम्भोर्मुख्याः स्युर्दशान्याश्च वेद्याः ॥ १ ॥
पद्माकारावामिमुख्येन पाणी मध्येऽङ्गुष्ठौ शायितौ कर्णिकावत् ।
पद्माख्येयं सैव संलग्नमध्या सृष्टाङ्गुष्ठा बिम्बसंज्ञा तु मुद्रा ॥ २ ॥
प्राग्वत् पाण्योर्लग्नयोरङ्गुलीनामग्रेऽङ्गुष्ठोच्चालनान्निष्ठुरा स्यात् ।
बद्ध्वा मुष्टिं दक्षिणामास्फुरन्त्यौ मुक्त्वा तर्जामध्यमे गोवृषाख्या ॥ ३ ॥
अन्योन्यग्रथितसमाङ्गुलीकपाण्योस्तर्जामग्रेद्वयसमवेतमध्यमाग्रे ।
व्यत्यस्तेऽप्यथ तदनागिकाकनिष्ठायुक्ताग्रे भवति हि धेनुसंज्ञमुद्रा ॥ ४ ॥

बद्ध्वा दक्षिणहस्तेन मुष्टिमुत्सृष्टतर्जनीम् ।

तत्तर्जन्या वामतलताडनात् त्रासनी भवेत् ॥ ५ ॥

इति मुद्रापटकं सूर्यस्य ।

प्रसारिताधोमुखाभ्यां हस्ताभ्यां संस्पृशेत् तनुम् ।

पादावारभ्य मूर्धान्तं महामुद्रेयमीरिता ॥ ६ ॥

उत्तानपाण्योर्विहिताञ्जलौ तज्ज्येष्ठाग्रयुग्मेन पृथङ्निकुञ्च्य ।

स्पृष्ट्वा तथानामिकयोस्तु मूलं मुद्रेयमावाहनसंज्ञिता स्यात् ॥ ७ ॥

इयमावहन्येवाधोमुखी स्थापनी ।

संलग्नमुष्ट्योः करयोः स्थितोर्ध्वज्येष्ठायुगं यत्र समुन्नताग्रम् ।

सा सन्निधापन्यथ सैव गर्भाङ्गुष्ठा भवेच्चेदिह निष्ठुराख्या ॥ ८ ॥

बद्ध्वाञ्जलिं पङ्कजकोशकरूपं यदक्षिणज्येष्ठिकया तु वामाम् ।

ज्येष्ठां समाक्रम्य तु वन्दनीयं मुद्रा नमस्कारविधौ प्रयोज्या ॥ ९ ॥

बद्धमुष्टयोस्तु संलग्नसम्मुखाङ्गुष्ठहस्तयोः ।

कालकर्णी भवेच्छैवी मु + + त्रापराः स्मृताः ॥ १० ॥

अधोमुखं दक्षिणहस्तमुष्टौ ज्येष्ठा तु वामा निहिताथ मुष्टेः ।

वामस्य मध्यात् प्रसृतापसव्यज्येष्ठापरा वेष्टितलिङ्गमुद्रा ॥ ११ ॥

पूर्वोदितैव भेनुमुद्रा ।

तिरश्चीने कनिष्ठाग्रे त्वङ्गुष्ठे (?) ष्ठाभ्यां समास्थिते ।

देशिनी मध्यमे रुन्ध्यादनामे द्वे समुन्नते ॥ १२ ॥

संयुक्ताग्रे च ते कृत्वा मुद्रा पञ्चमुखी भवेत् ।

दशमुद्राधिकारः ।

आकुञ्च्याथ कनिष्ठाग्रमाक्रभ्याङ्गुष्ठमध्यतः ॥ १३ ॥

ऋज्वायतास्तु शेषाः स्युरङ्गुल्यः शक्तिसंज्ञिता ।

इयमेव हि शक्त्याख्या विरलोर्ध्वाङ्गुलित्रया ॥ १४ ॥

यदि स्यात् त्रिशिखाकारा शूलमुदेति कथ्यते ।

बद्ध्वाञ्जलिं तु हस्ताभ्यां निगृह्यानामिकाद्वयम् ॥ १५ ॥

शेषाङ्गुलीः प्रसार्येयं द्रव्यमुद्रा प्रकीर्तिता ।

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं कनिष्ठाद्यखिलाङ्गुलीः ॥ १६ ॥

क्रमादाकुञ्चयेच्छीघ्रं मुद्रा संहारिणी मता ।

मिथः पृष्ठार्पितौ हस्तावन्योन्यग्रथिताङ्गुली ॥ १७ ॥

कृत्वा बद्ध्वा परावर्त्य नत्वा सा स्यात् क्षमापनी ।

इति पञ्चमुद्राः ।

इत्थं मन्त्रा मुख्यशश्चापि (रु ? मु) द्राः प्रोक्ता येभ्यः कर्मासिद्धिः प्रदिष्टा ।

ज्ञानाद् येषां धारणाच्चापि जापादिष्टान् कामान् साधनाच्चाप्नुवन्ति ॥ १८ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे

उपरिभागे क्रियापादे मुद्रापटलः सप्तमः ॥

अथाष्टमः पटलः ।

प्रासादे मण्डपे वापि गृहे वा यत्र कर्म तत् ।

क्रियते तत्र संशुद्धे गोमयालेपिते स्थले ॥ १ ॥

मध्येऽत्र सूत्रं वरुणेन्द्रदीर्घं निवेश्य चास्फाल्य तु तस्य मध्ये ।

बिन्दुं विधायापरपूर्वयोर्वै तदङ्कयेत् सूत्रवशात् समानम् ॥ २ ॥

पुनस्ते सूत्रखण्डे तु समं भित्त्वाङ्कयेदपि ।

बिन्दोस्तु पूर्वापरमध्यमाङ्कैर्मितेन सूत्रेण तदाहितेन ।

बिन्दोः सयाम्योत्तरादिकसमाङ्कवशात् समालिख्य तुं मत्स्ययुग्मम् ॥ ३ ॥

तयोर्निधाय सूत्रं स्याद् दक्षिणेनोदगायतम् ॥ ४ ॥

इत्थं ब्रह्माह्वयं सूत्रमुदकसूत्रं च साधयेत् ।

क्षेत्रार्धमानेन तु बिन्दुसं(स्थ? स्थां)श्चतुर्दिशं सूत्रवशाद् यथेष्टम् ।

अङ्कान् विधायाथ तदङ्कयुग्मात् सूत्रद्वये स्युः खलु कोणमत्स्याः ॥ ५ ॥

तेषु मत्स्येषु परितो दिक्षु सूत्रैर्निपातितैः ॥ ६ ॥

चतुरश्रं भवेत् क्षेत्रं चतुष्कोष्ठं समं शुभम् ।

सर्वमण्डलकुण्डादिवास्तुनिर्माणकारणम् ॥ ७ ॥

चतुरश्रसाधनम् ।

कुण्डं प्रशस्तं चतुरश्रमादावश्वत्थपत्रं च तथार्धचन्द्रम् ।

तद्वत् त्रिकोणं त्वपि वर्तुलं स्यात् षट्कोणकं पञ्चमथाष्टकोणम् ॥ ८ ॥

रत्निमात्रं शतार्धं स्याच्छतहोमे त्वरत्निकम् ।

सहस्रे हस्तमानं स्यादयुते च द्विहस्तिकम् ॥ ९ ॥

लक्षे चतुष्करं कुण्डं दशलक्षे तु षट्करम् ।

कोटिहोमेऽष्टहस्तं स्याद् यथा भोजेन्द्रपद्धतौ ॥ १० ॥

सर्वाणि कुण्डानि यथोक्तमानादायामविस्तारसमानि तानि ।

खातं च विस्तारसमं विधेयं तिस्रः क्रमाच्चोपरि मेखलाः स्युः ॥ ११ ॥

समं स्यात् सर्वतः खातं खातोपरि चतुर्दिशम् ।

एकाङ्गुलं परित्यज्य कुर्यात् तिस्रोऽथ मेखलाः ॥ १२ ॥

रत्निप्रमाणे खलु मेखला स्यादाद्याङ्गुलाभ्यामपराङ्गुलेन ।

अर्धाङ्गुलान्या त्वथ चाप्यरत्नौ त्रिव्येकमात्राङ्गुलकैर्विधेया ॥ १३ ॥

अत्र भोजराजः —

“मुण्डहस्तप्रमाणे स्यादाद्या द्यङ्गुला । द्वितीया अङ्गुलेन । अर्धाङ्गुलेन च तृतीया । अरत्निप्रमाणस्य त्र्यङ्गुलद्वयङ्गु(लः)लैकाङ्गुलमाना” इति ।

हस्तकुण्डे मेखलाः स्युश्चतुस्त्रिद्वयङ्गुलाः क्रमात् ।

षट्चतुस्त्र्यङ्गुलैः कुर्याद् द्विहस्तेऽपि यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

चतुष्करे त्वष्टकषट्चतुर्भिः षड्दस्तके चापि दशाष्टषड्भिः ।

स्युरङ्गुलैरष्टकरेऽपि कुण्डे ताः षोडशद्वादशकाष्टसंख्यैः ॥ १५ ॥

सर्वाः सर्वेषु कुण्डेषु विस्तारोच्छ्रयतः समाः ।

परितः स्वसमायामा निम्नोन्नतविवर्जिताः ॥ १६ ॥

अत्र भोजराजः —

“क्रमेण सर्वकुण्डेषु तिस्रो मेखलाः कुण्डानुरूपेणैव विधातव्याः” इति ।

कुण्डस्य पश्चिमे योनिं कुर्याद् दक्षिणतोऽपि वा ।

मध्यतो मेखलानां तु सर्वासामुपरि स्थिताम् ॥ १७ ॥

सूर्याङ्गुलायाममिता तु योनिरामूलतोऽश्राद् वसुवेददत्तैः ।

तुल्याङ्गुलेस्तु कमशोऽङ्गुलोच्चा द्वाङ्गुनिर्गताप्रापि च रत्निकुण्डे ॥ १८ ॥

अरत्न्यादिषु कुण्डेषु द्यङ्गुलं द्यङ्गुलं पृथक् ।

क्रमादायामविस्तारवृद्ध्या योनिर्विधीयते ॥ १९ ॥

अत्र भोजराजेन्द्रपद्धतौ —

“एवं प्रथमकुण्डस्य । शेषाणां द्यङ्गुलवृद्ध्या योनिर्विधातव्या” इति । मञ्जर्या च —

हस्तमात्रस्य कुण्डस्य

“तालायता जलपतेर्दिशि संस्थिता स्यादश्वत्थपत्रसदृशी कमशोऽथ निम्ना ।

नाभिर्दशाङ्गुलषडङ्गुलतः क्रमेण विस्तारतश्च चतुरङ्गुलगोलकप्रा ॥”

इति ।

चतुरश्रं तु वा वृत्तं कुण्डं नित्ये च शान्तिके ।

सार्वकामिकमित्यन्ये चतुरश्रं तु वर्तुलम् ॥ २० ॥

श्रुत्येकांशं तु सीम्नोर्बहिरपि पुरतोऽथाङ्कयित्वाऽम्बुनाथे
तन्मानात् सूत्रमन्तर्निहितमुभयतः कोणयोर्वर्तयित्वा ।

मध्याद्यन्यस्य कर्णान्तकमपि परतः कोणयोः पूर्वचिहे

सूत्रे त्वास्फाल्य योनिप्रतिममपि भवेत् कुण्डमश्वत्थपत्रम् ॥ २१ ॥

चतुरश्रं युगांशांशं कृत्वान्यश्चोत्तरे यजेत् (?) ।

भागं त्वनेन प्राक्प्रत्यग् बहिरङ्कैः निधाय तु ॥ २२ ॥

तद्वद् दक्षिणतो मध्यस्थितसूत्रभ्रमाद् द्वयोः ।

अर्धचन्द्रसमाकारं कुण्डं भवति शोभनम् ॥ २३ ॥

वेदाश्रे चतुरशके भुजमितं प्रागंशमाप्याद् बहिः

क्षिप्त्वा मध्यमवारुणाङ्कविहिते सूत्रे द्विधा वर्तिते ।

स्यातां द्वौ शफरौ तयोश्च पुरतश्चाङ्केऽथ सूत्रत्रयं

क्षिप्त्वा नैर्ऋतदिग्मुखे भवति तत् कुण्डं त्रिकोणाह्वयम् ॥ २४ ॥

षष्ठांशं पूर्वनिहितं गृहीत्वा नैर्ऋतस्थितम् ।

वायव्यान्तेषु सूत्रे द्वे क्षिप्त्वा वा स्यात् त्रिकोणकम् ॥ २५ ॥

मध्यबिन्दुस्थितं सूत्रं प्राग्भुजाङ्कानिधाय तु ।

परिवर्त्य भवेत् कुण्डं वर्तुलं तत् सुशोभनम् ॥ २६ ॥

भु(जा)शब्दस्याभिप्रायात् प्राग्भुजाया बहिः प्राक्छब्ददर्शनादङ्गुलाः
ये(?) निधायेति यावत् ।

बाह्यस्थं षष्ठमंशं शतमखवरुणस्थापितं वेदकोणे

मध्ये संस्थाप्य सूत्रं सममिह तु तयोर्वर्तयित्वा तु बाह्ये ।

चत्वारस्तत्र मत्स्यास्तदनु धनददिग्दक्षिणस्थे च सूत्रे

तत्रस्थेष्वेव चिह्नेष्वथ समपतिते स्यात् षडङ्गं हि कुण्डम् ॥ २७ ॥

वृत्तकुण्डेऽब्जपत्राणि बाह्ये तन्मेखलेपरि ।

कुण्डार्धमायतान्यष्टौ कृत्वा स्यात् पद्मसंज्ञितम् ॥ २८ ॥

आदित्याङ्गांशमन्तर्बहिरपि परितः सम्भ्रमाद् दिक्षु ताभ्यां

द्वाभ्यां मत्स्यौ भवेतां दिशि दिशि विततैस्तेषु सूत्रैर्वधावत् ।

कुण्डं स्यादष्टकोणं सुरुचिरमथवाप्यर्धदिकसूत्रकोणैः

शिष्टार्धाप्यैन्द्रपञ्चाशकशफरयुगोत्पन्नमीनाष्टकैर्वा ॥ २९ ॥

तुर्यश्रं नवधा विभज्य तु बहिश्चान्तः क्षिपेदंशकं

दिकोणेषु विधाय चांशमथ तत्संस्थैः क्रमात् सूत्रकैः ।

स्यातां द्वे चतुरश्रके सममिते व्यत्यासतोऽष्टाश्रकं

द्वैशान्यां सुसमं यथा सुरुचिरं कुण्डं तथा वा भवेत् ॥ ३० ॥

कुण्डाधिकारः ।

चतुरश्रं तु संसाध्य द्यष्टधा विभजेत् पुनः ।

षट्पञ्चाशच्च कोष्ठानां द्विशतं चात्र वै भवेत् ॥ ३१ ॥

षण्णां षड्भिस्तु कोष्ठैर्लिखतु सरसिजं मध्यदेशेऽस्य बाह्ये

पक्क्या पीठं च पीठाद् बहिरपि परितः पक्कियुग्मेन वीथीम् ।

तद्बाह्ये पक्कियुग्मे दिशि विदिशि तथा द्वारकण्ठोपकण्ठान्

गल्लांश्चैवोपगल्लाननलनिर्ऋतिवाय्वीशकोणेषु कोणान् ॥ ३२ ॥

(कण्ठोपकण्ठान्! गल्लोपगल्लान्) कपोलोपकपोलान् शोभोपशोभानिति

केचिदाहुः ।

पञ्चक्षेत्रस्थादिकसूत्रे संस्थाप्यान्यद् विमृज्य तु ।

बहिर्द्वादशकं भागं त्यक्त्वान्यत् परिवर्तयेत् ॥ ३३ ॥

क्षेत्रं चतुर्धा विभजेत् तु वृत्तं सूत्रक्रमेणैव समं क्रमेण ।

तत्कर्णिकाकेसरपद्म(ग! स)न्धिपत्रावसानं च भवन्ति तानि ॥ ३४ ॥

पूर्वं द्वादशकांशं यत् त्यक्तं तद् आमयेद् बहिः ।

पञ्चमं तु भवेत् क्षेत्रं व्योमाख्यं तद्दलाग्रकम् ॥ ३५ ॥

प्रसार्य कोणसूत्रे द्वे कोणदिग्बध्यमेन तु ।

चत्वारि सूत्राण्यास्फाल्य सूत्रषोडशकं भवेत् ॥ ३६ ॥

दलान्तसिद्धयै दलसन्धिमध्ये निधाय सूत्रं तु दलान्तमानम् ।

दलान्तरालद्वयसंक्रमोत्थैः शशाङ्कखण्डैस्तु दलं प्रसिध्येत् ॥ ३७ ॥

पद्मषोडशसूत्राणां मध्यं सूत्रैर्विभज्य तु ।

द्वात्रिंशत्खण्डसूत्राणि स्युर्दलाग्रवृत्तौ समम् ॥ ३८ ॥

दलाग्रसूत्रोभयपार्श्वसूत्रयोरग्रे स्थितं सूत्रमथामूलतः ।

दलाग्रसूत्रान्तमुपानयेद्विखन्नेवं दलाग्रं तु भवेन्मनोरमम् ॥ ३९ ॥

शालीयपिष्टं सितचूर्णमुक्तं हारिद्रभीषत्सितयुक् सुपीतम् ।

कुसुम्भसिन्दूरकजातिरक्तं दग्धैर्यवाद्यैरपि नीलचूर्णम् ॥ ४० ॥

शम्यञ्जबिलवादिदलैर्याज्ञिकैः श्यामलं स्मृतम् ।

तत्तद्वर्णैस्तु धान्याद्यैः पूरयेन्मण्डलानि वै ॥ ४१ ॥

मनःशिलारोचना(भ्यां) पीतचूर्णं प्रशस्यते ।

रजसां पञ्चवर्णानां ब्रह्माद्याः पञ्च मूर्तयः ॥ ४२ ॥

दैवतानि भवन्त्येषां निवृत्त्याद्याः कलास्तथा ।

कृतं त्रेता द्वापरं च कालः कलियुगं तथा ॥ ४३ ॥

सितलोहितकश्यामपीतकृष्णात्मकानि च ।

शुक्लं च रक्तं च तथैव कृष्णं त्रितत्त्ववेदत्रयवाहिलोकैः ।

त्रिशक्तिसन्ध्यात्रिगुणैः क्रमेण व्याप्तं तु बिम्बैश्च विचिन्त्य योज्यम् ॥ ४४ ॥

भुक्त्यर्थमपसव्यं तु पुष्ट्यर्थं तु प्रदक्षिणम् ॥ ४५ ॥

रजःपातं नियुञ्जीत मण्डलेषु विचक्षणः ।

मुष्टिना पातयेत् पुष्ट्यै यदि मुक्तिरभीप्सिता ॥ ४६ ॥

मध्यमाङ्गुष्ठतर्जाभिः सर्वाभिश्चैव शान्तिके ।

शक्तस्तु वाञ्छेद् यदि सिद्धिमग्रां तद्वर्णरत्नैरिह मण्डलानि ।

कुर्यात् तथा मौक्तिकपुष्प्यरागमाणिक्यनीलैर्हरितैश्च रत्नैः ॥ ४७ ॥

“एवंविधेषु चूर्णेषु सिद्धिकामो मुक्ताविद्रुमादिकैस्तदेवं कुर्यादि”ति

भोजराजः ।

रेखास्तु सर्वाः सर्वत्र शुक्लाः स्युर्मध्यमामिताः ॥ ४८ ॥

द्विहस्तेऽङ्गुष्ठमात्रा वा हस्ते वानामिकासमाः ।

अत्र भोजराजः — “एताश्च रेखाः प्रथमाङ्गुलप्रमाणाः अन्या यवोना
यवान्तराश्च । सर्वा मुक्तिकामस्य मुक्तिकामस्य समाः कार्य्याः” इति ।

कर्णिका पीतवर्णा स्याद् रेखाः सर्वाः सिताः समाः ॥ ४९ ॥

द्विहस्तेऽङ्गुष्ठमात्राः स्युर्हस्ते मध्यमया मिताः ।

इत्यन्ये ।

मध्ये सुपीता खलु कर्णिका स्यात् तस्यां तु बीजानि नवासितानि ।

द्वे द्वे पृथक्केसरके दलानां मध्येषु लेख्ये कुटिलाग्रमीषत् ॥ ५० ॥

मूले तनून्यापीतानि मध्ये स्थूलारुणान्यपि ॥ ५१ ॥

अन्ते द्राक् तनुपीतानि तदन्तेऽरूपसितानि वै ।

“मूलमध्याग्रेषु शुक्लरक्तपीतं केसरजालमि”ति भोजराजः ।

शुक्लानि तान्यष्टदलानि कुर्यात् समानि तुङ्गाग्रमनोरमाणि ।

भुक्त्यै तथा प्राञ्जलिकानि मुक्त्यै स्मरादियागेषु शिताग्रवन्ति ॥ ५२ ॥

“दलाम्राण्यपि चत्वारि रक्तवर्णानि कारयेत्”

इत्यजिते ।

गौरीसरस्वत्यादीनां दलान्यश्चत्थपत्रवत् ॥ ५३ ॥

विघ्नेशानां ग्रहाणां च गोकर्णा(ग्रा)णि कारयेत् ।

पीठं तु शुक्लारुणपीतकृष्णपादं तथा नीलककीलशोभम् ।

गात्रैश्चतुर्भिस्तु विचित्रवर्णैः कुर्याद् यथेष्टं त्वथवापि वर्णैः ॥ ५४ ॥

अत्र तत्त्वसागरे—“पीठे कोष्ठद्वयं दिक्षु लोप्यम् । तथा कोणे त्रीणि त्रीणि विलोपयेदि”ति ।

वीथीं लतावितानाद्यैः पत्रकैश्चोपशोभयेत् ।

तद्बाह्वे दिक्षु शुक्लेन चतुर्द्वाराणि पूरयेत् ॥ ५५ ॥

दिक्सूत्रकाणामुभयत्र कोष्ठे द्वारार्थमभ्यन्तरपङ्क्तिंसंस्थे ।

स्याद् बाह्यपङ्क्तौ द्वितयं द्वयं च तत्कोष्ठषट्कं त्रिमृजेद् दिशासु ॥ ५६ ॥

कोष्ठत्रयं त्रयं चान्तद्वाराणां पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ५७ ॥

कण्ठोपकण्ठसिद्ध्यर्थमेकैकं त्रिमृजेद् बहिः ।

एवं पृथक्कोष्ठचतुष्कवन्तः कण्ठोपकण्ठाः प्रभवन्ति चाष्टौ ।

तत्पार्श्वतस्तद्विपरीतवक्त्रास्तद्वत् कपोलोपकपोलकाः स्युः ॥ ५८ ॥

ततः कोणेषु शिष्टानि षट्कोष्ठानि पृथक् पृथक् ॥ ५९ ॥

विमृजेत् कोणसिद्धयर्थं वृषभानेषु वा लिखेत् ।
 कण्ठोपकण्ठान् रक्तेन कपोलोपकपोलकान् ॥ ६० ॥
 पीतेनाच्छादयेदष्टौ यथा भूमिर्न दृश्यते ।
 बहिर्गुणान् वै परितः क्रमोक्तालिखेत् ततः सत्त्वरजस्तमांसि ।
 रजोभिरङ्गुष्ठमितांस्तु शुक्लारुणासितान् मध्ययवान्तरांस्तान् ॥ ६१ ॥
 भद्रकाधिकारः ।

चतुरश्रेऽष्टधा भिन्ने चतुष्पष्टिकृते पदे ॥ ६२ ॥
 मध्ये कोष्ठचतुष्केण पद्मपीठं च संलिखेत् ।
 तद्वाद्यपङ्क्त्या खलु वीथिका स्यात् तद्वाद्यपङ्क्तिद्वयादिवचतुष्के ।
 द्वाराणि कोष्ठैः खलु वेदसंख्यैः सम्मृज्य शुक्लानि समानि कुर्यात् ॥ ६३ ॥
 द्वाराणां पार्श्वयोर्बाह्यपङ्क्तवेकैककोष्ठकम् ॥ ६४ ॥
 द्वारेणायोज्य विमृजेत् स्यातां कण्ठोपकण्ठकौ ।
 संस्थाप्य कोणेष्वथ कोष्ठमेकं शिष्टैः पृथक्कोष्ठकपञ्चकैः स्युः ।
 एकीकृतैर्वेदकपोलकास्ते तावन्त एवोपकपोलकाश्च ॥ ६५ ॥
 “कपोलं तु भवेत् तेषु पदं पूर्वापरायतम् ।
 दक्षिणोत्तरां चापि भवेदुपकपोलकम् ॥”

इत्याजिते ।

प्रागुक्तमार्गेण तु कर्णिकाद्यं त्वापूर्य वीथीं च तथोक्तवर्णैः ।
 द्वारानि शुक्लेन कपोलकास्तु रक्तास्तथापीतरुचोऽथवा स्युः ॥ ६६ ॥

अत्राजिते —

“कपोलोपकपोलानि वह्निकोणादिषु क्रमात् ।
 रक्तं पीतं तथा श्यामं श्वेतं च परिकल्पयेत् ॥”

इति ।

वह्न्यादिकोणकोष्ठानि पीतश्यामासितारुणैः ॥ ६७ ॥

पूरयेद् वाथ सर्वाणि कृष्णेनेत्यपरे जगुः ।

बाह्ये तु शुक्लारुणकृष्णवर्णैः प्राग्वत् समालिख्य गुणत्रयं तत् ।
 स्यात् सर्वतोभद्रमिदं तु कोणे षट्कोष्ठकैकीकरणेन भद्रम् ॥ ६८ ॥

मण्डलेष्वपि सर्वेषु शुक्लान्यब्जदलानि तु ।

द्वाराणि चाथ वीथी स्यालताद्यैरविशेषिते ॥ ७१ ॥

सर्वतोभद्राधिकारः ।

द्वात्रिंशदंशे चतुरश्रकेऽस्मिन् सहस्रकं सङ्कृतिसंख्यकं च ।

कोष्ठानि तन्मध्यगतत्त्वसंख्यैः कोष्ठैः सरोजं तु लिखेत् पुरोवत् ॥ ७४ ॥

तद्वाद्यपङ्कचा पीठं स्यात् तद्वाद्ये सप्तपङ्क्तिभिः ।

लिङ्गाष्टकं तु विलिखेद् दिक्सूत्रोभयपार्श्वयोः ॥ ७५ ॥

ऋतुवेदाक्षिवेदर्तुकोष्ठैः स्यात् तिर्यगायतैः ।

पीठं सकण्ठं ब्रह्मादिजलपट्टान्तकं शुभम् ॥ ७६ ॥

पीठोपरिष्ठात् खलु मध्यपङ्क्त्योर्युग्मस्थतत्कोष्ठचतुष्टयेन ।

लिङ्गं भवेत् तद्रूपमध्यसूत्रं मध्यान्तसंवर्तितमस्तकं वा ॥ ७७ ॥

अन्तर्मुखानि लिङ्गानि बुभुक्षूणां समालिखेत् ।

विपरीतं मुमुक्षूणामन्तःपीठानि कारयेत् ॥ ७८ ॥

तत्कण्ठपीठोभयपार्श्वसंस्थे भद्रे चतुष्कोष्ठवशाद् भवेताम् ।

लिङ्गान्तरालेष्वपि पञ्चविंशैः कोष्ठैस्तु कोणेषु लता विधेयाः ॥ ७९ ॥

गोमूत्रिकावत् संसृष्टा रेखास्तत्कोष्ठगा यथा ।

तथान्यरेखालोपेन लताः स्युर्विदिगायताः ॥ ८० ॥

अश्रचन्तरेषु वल्लीनां पत्राण्यप्यथवा लिखेत् ।

वरुण्यादौ सक्तमूलानि कुटिलाग्रादिकान्यपि ॥ ८१ ॥

तद्वाद्ये पङ्क्तियुग्मेन वीथीं प्राग्वत् तु मार्जयेत् ।

वीथीं तथा कल्पलताविशेषैराभूष्य तद्वाद्यवृत्तित्रयेऽपि ।

कोष्ठानि वेदर्तुवसुप्रसङ्गचं द्वारार्थमन्तःप्रभृतीह लुम्पेत् ॥ ८२ ॥

शोभोपशोभेऽपि स्यातां द्विचतुष्पङ्क्विलोपतः ॥ ८३ ॥

त्रिः सप्तकोष्ठानि पृथक् कोणे कोणे तु मार्जयेत् ।

पद्मादिकं भद्रकवत् तु सर्वमाभूषयेत् पञ्चविधैस्तु चूर्णैः ।

लिङ्गाष्टकं पञ्चमुखोक्तवर्णैरिच्छानुरूपं परिपूरयेद् वा ॥ ८४ ॥

इतीदं पार्वतीकान्तमुक्तं प्रासादमण्डलम् ।

अष्टलिङ्गलतापद्मवीथीप्राकारमण्डितम् ॥ ८५ ॥

पार्वतीकान्तप्रासादाधिकारः ।

चतुरश्रं चतुर्हस्तं क्षेत्रं विंशतिभागिकम् ।

स्याच्चतुश्शतकोष्ठं तन्मध्येऽब्जं तत्त्वकोष्ठकैः ॥ ८६ ॥

पङ्क्त्यैकया पीठमथैकया स्याद् वीथी ततः पङ्क्तिचतुष्टयेन ।

तद्वारलिङ्गैः परितो लताः स्युस्तद्बाह्यपङ्क्त्यापि च बाह्यवीथी ॥ ८७ ॥

कुर्याद् भद्रकवत् पद्मपीठवीथीर्यथाविधि ।

प्रतिपङ्क्तिं द्विकोष्ठाष्टकोष्ठैर्द्वाराणि दिक्ष्वपि ॥ ८८ ॥

वीथ्यन्तरा द्वारनिबद्धकोष्ठत्रयेण भूपीठमथैककोष्ठम् ।

स्यात् कण्ठपीठं त्वथ तोयपट्टं कोष्ठैस्त्रिभिर्लिङ्गमथैककोष्ठम् ॥ ८९ ॥

अधश्चोर्ध्वं च तत्कोणान् पीठकोष्ठचतुष्टये ।

कोष्ठान्तः कोणगं सूत्रं कोष्ठसूत्रार्धमानतः ॥ ९० ॥

अमयित्वा त्यजेद् बाह्ये खण्डिताश्रिचतुष्टयम् ।

पीठमेवं भवेद् रम्यं द्वादशाग्रैरलङ्कृतम् ॥ ९१ ॥

प्राग्वत् समापूर्य तु वर्णचूर्णैः पद्मादिवीथ्यन्तमशेषबिम्बम् ।

ख्यातं लतालङ्गसमुद्भवाख्यं तन्मण्डलं शङ्करवल्लभं यत् ॥ ९२ ॥

लतालङ्गोद्भवाधिकारः ।

क्षेत्रे षोडशधा भिन्ने चतुरश्रे चतुर्दिशम् ।

पार्वतीकान्तवत् कोष्ठैः कुर्याल्लिङ्गचतुष्टयम् ॥ ९३ ॥

मध्येऽवशिष्टैरपि वेदकोष्ठैर्लिङ्गान्तरालेष्वपि तत्प्रसंख्यैः ।

चतुर्दलाब्जं स्वयमेव तैः स्याल्लिङ्गेषु संवर्तितमस्तकेषु ॥ ९४ ॥

भद्राष्टकं स्यात् कण्ठेषु लताः कोणेषु पूर्ववत् ।

लिखित्वा मण्डलं तत् स्यात् पञ्चब्रह्माभिधानकम् ॥ ९५ ॥

मध्येऽम्बुजे वर्तुलकर्णिका स्यात् पीतात्र रक्ता तनुकेसराली ।

ईशस्तु मध्ये पुरुषादयोऽपि सुवर्णदिग्लङ्गता भवन्ति ॥ ९६ ॥

अस्यैव तु लतास्थानेष्वालिङ्ग्य स्वस्तिकानि तु ।

एकं त्रीणि ततः पञ्च कोष्ठलोपः क्रमात् स्मृतः ॥ ९७ ॥

एतत् खलु स्वस्तिकमण्डलाब्जं क्षेत्रेऽथवा द्वादशभागिकेऽस्मिन् ।

मध्येऽम्बुजं षोडशकोष्ठकैः स्यात् स्युः स्वस्तिकान्यष्टदिशासु तद्वत् ॥ ९८ ॥

स्वस्तिकान्यपि पद्मं च प्राग्वदापूर्य चूर्णकैः ।

स्वस्त्यर्थं स्वस्तिकं शस्तं सर्वदेवाभिनन्दनम् ॥ ९९ ॥

स्वस्तिकाब्जद्वयाधिकारः ।

क्षेत्रे तथाष्टादशभागिकेऽस्मिन्मध्यगस्वस्तिकनाभिमादौ ।

सङ्कल्प्य लुम्पेत् तु चतुष्पथाभं समन्ततः कोष्ठकपञ्चकानि ॥ १०० ॥

कोष्ठमात्रायता रेखाः कुटिलाः स्वस्तिकाकृतौ ।

परस्परोपयोगिन्यः स्थाप्याः स्युः शेषलोपतः ॥ १०१ ॥

पञ्चाशदस्मिन् खलु सप्तकं च स्यात् स्वस्तिकानां सह चार्कभद्रैः ।

मध्येषु पञ्चाशदपि द्वयं च स्यात् सर्वतोभद्रचतुष्पथानाम् ॥ १०२ ॥

कोणेष्वेकैककोष्ठानि शिष्टान्याभूषयेत् सितैः ।

नीलपीतारुणश्यामैर्भद्राण्यपि चतुष्पथान् ॥ १०३ ॥

एतद्धि सर्वतोभद्रस्वस्तिकं नाम मण्डलम् ।

सर्वस्वस्तिकमित्येके प्राहुर्यच्छिवयोः प्रियम् ॥ १०४ ॥

क्षेत्रेऽथवा षोडशधा विभक्ते मन्वर्कदिग्वस्वृषिभेदिते वा ।

प्राग्वद् विलोपात् खलु मण्डलानि स्युः सर्वतः स्वस्तिकभद्रवन्ति ॥ १०५ ॥

स्वस्तिकसर्वतोभद्राणि ।

चतुरश्रे द्विहस्ते तु चक्राब्जं पीठवर्जितम् ।

स्यादेकनाभं तल्लक्ष्म भवेन्मानाङ्गलक्रमात् ॥ १०६ ॥

निधाय सूत्रं त्वथ पद्मविन्दौ पद्मार्धमानेन नवाङ्गुलैश्च ।

त्रिभिश्च वस्त्राब्धिमितैर्भ्रमेण सरोरुहं नाभ्यरनेमयः स्युः ॥ १०७ ॥

पद्मं पुरोवदालिख्य नाभिं पीतेन पूरयेत् ।

दलतुल्यारके चक्रे दलरेखाः प्रसार्य तु ॥ १०८ ॥

लिखेत् ततस्तेष्वरकान् यथावद् दलाद् द्विसंख्येष्वरकेषु तद्वत् ।

दलाग्रसूत्रैर्दलसन्धिसूत्रैः प्रसारितैस्तावदिहारकाः स्युः ॥ १०९ ॥

विभज्यारभुवं त्रेधा द्वाभ्यामन्तरथाङ्कयेत् ।

मत्स्यवत् तेष्वथास्फाल्य सूत्राण्येषु लिखेदरान् ॥ ११० ॥

इन्दीवराश्वत्थदलोपमा वा ते मातुलुङ्गाकृतयोऽथवा स्युः ।

अब्जच्छदाभाश्च यवोदरा वा मध्ये कृशा वाथ पिपीलिकाभाः ॥ १११ ॥

अरकास्त्वरुणाः श्यामास्ते स्युरेकान्तराः क्रमात् ।

अन्ते गोरोचनाभाः स्युः पीताः स्युररसन्धयः ॥ ११२ ॥

नेमिं त्रिधा संप्रविभज्य कुर्याच्छ्लुक्केन मध्ये त्वसितेन बाह्ये ।

पीतेन चान्तः परिपूर्य कोणान् कृष्णेन सखस्तिकचिह्नरम्यान् ॥ ११३ ॥

अरसन्ध्यन्तरालस्थो बहिर्नेमिः परिभ्रमेत् ।

अरसन्धेस्तु मध्यस्थो वर्तयेदरमूलकम् ॥ ११४ ॥

मध्येऽरकाणां स्थित्वा तु वर्तयेदरमध्यकम् ।

मातुलुङ्गफलाकारास्त्वेवं सिध्यन्त्यराः क्रमात् ॥ ११५ ॥

अराग्रसंस्थं त्वरसन्धिमूलात् सूत्रं तथारोमयपार्श्वसंस्थम् ।

पृथक् समास्फाल्य तथारकाः स्युर्विस्तारितेन्दीवरपत्रकल्पाः ॥ ११६ ॥

अरमध्ये स्थितोऽराग्रं किञ्चित् त्यक्त्वाब्जपत्रवत् ।

अरसन्धेर्भ्रमाच्चाग्रभ्रमादब्जदलारकाः ॥ ११७ ॥

कृशाग्रमूलाः पृथवस्तु मध्ये कार्यास्तृतीयांशतयारसन्धेः ।

अन्तः प्रविष्टास्तु यवोदराख्याः सिध्यन्ति ते स्युः क्रमशः शिताग्राः ॥

त्रिधा विभज्यारक्षेत्रं द्वितीयप्रथमांशयोः ।

मध्ये स्थित्वा भ्रमं कृत्वा तृतीयांशे दलाग्रवत् ॥ ११८ ॥

अर्धचन्द्राभरेखाभ्यां पत्राग्रं च समालिखेत् ।

इत्थमश्वत्थपत्राभास्तत्राराः सम्भवन्ति हि ॥ ११९ ॥

ि त्वारंसन्धेरथ मध्यमेशे तिर्यग्भ्रमाच्चोभयतोऽशकार्धात् ।

रेखाद्वयान्तः कृशमध्यमकारकाः स्युः (?) पिपीलिकाक्रोडसमाह्वयाराः ॥ १२१ ॥

अरसन्ध्यन्तरा पुष्पैर्विचित्रैरभिभूष्य तु ।

बिम्बबाह्वेऽप्यथालिप्ते पुष्पालीभिर्विभूषयेत् ॥ १२२ ॥

उक्तं च चक्राम्बुजमेकनाभं प्रियं शिवार्यारविकेशवानाम् ।

अन्यानि च स्युर्नवनाभकान्तान्यूढानि चक्राम्बुजमण्डलानि ॥ १२३ ॥

चक्राब्जाधिकारः ।

कर्णिकार्धप्रमाणेन प्राक्स्थसूत्रभ्रमक्रमात् ।

तस्यैव पार्श्वयोगेन मत्स्यद्वादशकं भवेत् ॥ १२४ ॥

सूत्रेषु तेष्वापतितैः ससन्धिसूत्रैश्च तद्वादशपत्रमञ्जम् ।

अष्टच्छदाब्जस्य समं प्रभेदात् स्यादम्बुजं षोडशपत्रशोभम् ॥ १२५ ॥

केसरव्योमरेखान्तसूत्रात् तत्केसराग्रगात् ।

मत्स्यवल्लाञ्छयित्वा स्यात् पञ्चपत्रं तु पङ्कजम् ॥ १२६ ॥

कर्णिकादलसन्धिभ्यां प्राग्वत् षट्पत्रसिद्धये ।

व्योमरेखाकर्णिकाभ्यां दलाग्रस्थं तु सप्तकैः ॥ १२७ ॥

दलसन्धिकर्णिकाभ्यां दलसन्धौ न्यस्तमत्स्याचिह्नेन ।

नवदलकं स्यात् सूत्रैः पञ्चभिरास्फाल्य पङ्क्तिपत्रं स्यात् ॥ १२८ ॥

केसराकाशयोर्मध्यव्योम्नि विन्यस्य लाञ्छयेत् ।

एकादशच्छदं त्वेवं पद्मं स्यात् सूत्रपाततः ॥ १२९ ॥

पत्राग्रपत्रसन्धिभ्यां पत्राग्रे न्यस्य लाञ्छिते ।

आस्फाल्य तेषु सूत्राणि तत् स्यादभिकृतिच्छदम् ॥ १३० ॥

अतः परं चेद् दलवृद्धिमिच्छेद् दिशानयैवात्र यथाक्रमेण ।

तद्गृह्यतो मत्स्यवशेन सूत्रैर्लिखेत् सरोजानि यथाभिलाषम् ॥ १३१ ॥

दलभेदलक्षणम् ।

अर्धचन्द्रादिकुण्डानां लक्ष्मणा सूत्रपाततः ।

अर्धचन्द्रादिबिम्बानि कुर्यात् साम्यानुसारतः ॥ ११२ ॥

इति कुण्डमण्डलविधिः प्रधानतः कथितः शिवाध्वरविशेषसिद्धिदः ।

बहुशो निरूप्य विविधाञ् शिवागमानिह देशिकेन्द्रपरितोषकारकः ॥ ११३ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे क्रियापादे

उपरिभागे कुण्डमण्डलपटलोऽष्टमः ॥

अथ नवमः पटलः ।

वक्ष्ये स्रक्सुवयोश्च लक्षणमथो सुग्वस्तमात्रायत्रा

पालाशी खदिरोद्भवापि च तथा स्याच्छामिली शोभना ।

वेदाश्रं तु मुखं स्वराङ्गलिमितं श्रेष्ठं रसैर्वा शरै-

र्मध्यं चाप्यधमं च निम्नमिह तन्मध्ये त्रिभागास्तुतम् ॥ १ ॥

विस्तारेण समं हि स्वातमपि तद् वृत्तं बहिर्मेखला-

स्तिस्रः स्युः कमलं तथैव परितस्तासां तु मध्ये भवेत् ।

कण्ठो गोलकविस्तृतोऽङ्गुलिमतो दैर्घ्येण तच्चोर्ध्वतः

स्यादग्रं च शराङ्गुलायतमथो विस्तारतस्तत्समम् ॥ २ ॥

कण्ठे स्यादथ मध्यदेशसुषिरं तद्वै त्रिकोणं घृतं

निर्गच्छेद्भि यथायतं तदवटं यद्वत् कनिष्ठा विशेत् ।

तत्पृष्ठं कमलाङ्कितं खलु मुखं सर्वं गजोष्ठोपमं

शिष्टं वर्तुलदण्डमस्य तु भवेदग्रं सरोजाङ्कितम् ॥ ३ ॥

दण्डाग्रं परिणाहतः सरसिजस्याधो यथर्त्विङ्गुल

स्थूलोऽसौ क्रमशः प्रकोष्ठमिव तन्मूलं च वस्वङ्गुलम् ।

तत्र स्याद्वषभोऽथवा सरसिजं श्लक्ष्णाकृतिः सर्वतो

निर्दोषाञ्जुभदेशजान् क्षितिरुहाञ्छिन्वा सुचं कारयेत् ॥ ४ ॥

सुगजातं तु भवेत् सुवं सुविहितं तालद्वयायामकं

कुर्याद् वर्तुलमङ्गुलेन वदनं तस्यावटेऽर्धाङ्गुले ।

भित्तिर्मध्यगता स्मृता यवमिता तद्वर्तयोः श्लक्ष्णयोः

कर्षाज्यस्थितिगोष्पदाकृति च तत्पृष्ठे यवाभ्यां स्फिजौ ॥ ५ ॥

स्फिङ्मध्येन यवप्रमाणविहिता रेखा च वक्रादधः

कण्ठः पङ्कजलक्षणस्तु तदधो दण्डः सुवृत्तः समः ।

दण्डाग्रं परिणाहृतोऽङ्गुलमितं मूलं ततोऽध्यर्धतः

स्याद् गोपुच्छनिभं गलात् प्रभृति तत् स्थूलं हि मूलं यथा ॥

बाहुमात्र्योऽरत्निमात्र्यो वा सुच इत्येके ।

सुक्लुवाधिकारः ।

छित्त्वा पिप्पलशाखिकामथ शमीगर्भास्तथाश्वत्थतो

निर्दोषां(श्च) षडङ्गुलायतसमान्छित्त्वारणिं कारयेत् ।

स्यान्नाहोऽस्य षडङ्गुलेन तु शिरो मूलेऽङ्गिरग्रे स्मृतो

योनिर्मध्यगताङ्गुलैः श्रुतिमितैर्मन्थानयोग्या भवेत् ॥ ७ ॥

अश्वत्थेन तथोत्तरारणिरपि स्यात् षड्भिरेवाङ्गुलैः

कुर्याद् ग्रामकमस्य खादिरमृजुं नेत्रं च रज्जुं दृढाम् ।

तन्नाभिं जनयेत् तथेन्धनमपि त्वग्वर्जितं सारवद्

भिन्नं शस्ततरूद्भवं ध(म)नमप्युक्तं धवित्रादिना ॥ ८ ॥

अरणिविधिः ।

वक्राः शीर्णदलाः कृशाः कृमिहता भिन्नास्त्वशस्ताहता

ह्रस्वाः स्थूलगतत्वचोऽप्युपहता दीर्घाग्निदग्धादयः ।

वर्ज्याः स्युः समिधः शुचिस्थलभुवः शेषाः समं छेदिता

मध्यानामिकयोस्तु नाहसदृशाः शस्ताः कनिष्ठाधमाः ॥ ९ ॥

इष्टोऽष्टादशभिः समिद्धिरुदितः प्रादेशमात्रोऽथवा

रत्नयायाममितः कचित् परिधयो हस्तायताः स्युस्त्रयः ।

दीर्घो दक्षिणतस्तु पश्चिमशयः स्थूलस्तनुर्ह्रस्वकः

सौम्ये कौशिकजाश्च वालककुशाः श्रेष्ठा हि दर्भाः क्रमात् ॥ १० ॥

व्यग्रा हस्तनखाहताः क्रिमिहताः कर्मान्तरायोजिता

याम्या व्याघ्रविलङ्घनाद्युपहता धूम्रोर्ध्वशुष्कादयः ।

वर्ज्याः श्यामलकोमलाः प्रतिनवा लूनाद्रिशुष्कास्तथा

दर्भाः स्युर्यदिहाग्निकार्यपटले वेण्यादिकं चोच्यते ॥ ११ ॥

तत्र “त्रिशद्वर्भकृता वेणिः । अष्टघृत्यष्टिधृत्यतिधृतिरसंख्या वा दर्भाः, परिस्तरणे पूर्वादितः स्युः । तत्त्वसंख्यादर्भैर्बद्धं कूर्चं ज्ञानसङ्गः, द्वात्रिंशद्वर्भैरिति केचित् । दर्भद्वयेन सामान्यम् । दर्भपञ्चकेन विशेषकूर्चम्” इति संहितायाम् ।

इध्माबर्हिषां विधिः ।

स्थाल्याज्यस्य भवेच्छरावसदृशी विस्तारतोऽष्टाङ्गुला

विस्तारार्धसमुच्छ्रयापि च भवेन्नलं च वेदाङ्गुलम् ।

विस्तारेण षडङ्गुलोच्छ्रितसमं पात्रं प्रणीताम्भसां

स्यादष्टाङ्गुलविस्तृतोच्छ्रयसमा नालान्विता प्रोक्षणी ॥ १२ ॥

अत्र पौष्करे — “सर्वत्र स्वर्णरजतताम्रमृन्मयानि पात्राण्युत्तममध्यमाधमफलानि भवन्ती”ति ।

अष्टाभिः कुडुबैः प्रपूरितचरुः स्थाली स्मृतात्राधमा

मध्यार्कस्वरसंख्यकैः परिमिता स्यादुत्तमा ताम्रजा ।

श्रेष्ठान्या त्वधमा त्रिसप्तकमिता दर्व्यङ्गुलानां भवेद्

दैर्घ्यात् सप्तशराङ्गुलैरिह शिरोवृत्तं तु पुच्छं द्वयात् ॥ १३ ॥

शाल्यः स्युः सितषष्टिकाश्च कलमा नीवारजास्तण्डुलाः

संशुद्धास्तुषशर्करादिरहिताः शुक्लाः प्रशस्ताश्चरोः ।

श्रेष्ठं यत् स्वपशोर्धृतं नवमथ क्रीतं नवं मध्यमं

क्रीताज्यं यदनूतनं तदधमं गव्यं भवेद् गालितम् ॥ १४ ॥

क्षौद्रं गन्धरसाद्यदूषितमपि क्रीतं पुनर्गालितं

ग्राह्यं क्रीतसितोपलाद्यभिनवं खण्डं गुलं चैक्षवम् ।

पूर्वं पूर्वमिह प्रशस्तमखिलं शुद्धं च शुक्लार्जितं

होमादेश्च तिलादिधान्यमखिलं प्रक्षाल्य संशोधितम् ॥ १५ ॥

यच्चान्यत् फलमूलकादि सुरसं ग्राह्यं विशुद्धं नवं

तत्राङ्गुष्ठमिताहुतिस्तु कथिता ह्यन्य(स्य ? त्र) शाल्यादिषु ।

स्यात् पञ्चाङ्गुलिभिर्धृतं द्रवरसेषूक्तं सुवा पूरितं

लाजानां खलु मुष्टिरेव कुसुमेष्वैकैकमञ्जादिषु ॥ १६ ॥

वल्लीनां चतुरङ्गलं कणतिले सक्तुष्वपि स्यान्मृगी
 साङ्गुष्ठा खलु मध्यमाङ्गुलियुता नाम्ना मृगीसंज्ञिता ।
 गन्धानां चणकीमितं तु बदरीबीजोपमं गुग्गुलो-
 भक्ष्याणां च महाफलादिषु भवेदक्षप्रमाणाहुतिः ॥ १७ ॥
 खजूरेणुदगोस्तनीबदरिकाजम्बूफलानां तथा
 पत्राणां पृथगेकमेकमुदिता पर्वकमिक्षोरपि ।
 नानाभक्ष्यविमिश्रहोमविषये पञ्चाङ्गुलीभिर्धृतं
 दूर्वाप्रत्रितयं तथैव समिधामेकैकमेवाहुतिः ॥ १८ ॥

आहुतिप्रमाणम् ।

स्याद् वर्षन्यपि पूर्णभारसलिला कुम्भश्च खार्यम्बुभृद्
 द्रोणाम्भःपरिपूरितस्तु कलशः पूर्णः (? र्णा) शिवात् कर्करी ।
 पूर्णा स्याद् घटिकाढकेन कुडुबद्वन्द्वं शरावं स्मृतं
 (सं)पूर्णः कुडुबेन वा प्रसरतः शङ्खश्च दीपस्तथा ॥ १९ ॥

पात्रमानम् ।

वक्ष्ये शुद्धिमपीह पात्रविषयां द्रव्यादिकानां तथा
 यावद् गन्धविलेपनाद्यपगमस्तावज्जलैः क्षालयेत् ।
 चूर्णैरप्यवधर्षयेत् पुनरपि प्रक्षाल्य चोष्णैर्जलैः
 पात्राणां भवतीह शुद्धिरधुना शुद्धिर्विशिष्टोच्यते ॥ २० ॥
 सौवर्णं सलिलेन शुध्यति यथा लेपापनोदो भवेत्
 पात्रं शुक्लमयं त्वथाम्लसलिलैस्तारोद्भवं गोमयात् ।
 कांस्यं भस्मजलैस्तथा मणिमयं सूर्यांशुभिर्वाभस्मा
 मृत्पात्रं दहनेन चेदभिनवं तत्तक्षणाद् दारवम् ॥ २१ ॥
 दाहादायसशुद्धिरेवमुदिता लोहानि तत्कर्तृभिः
 स्पर्शाद् वा तुरगाननाभिगमनाच्छुध्यन्त्यनन्याहता ।
 शुद्धिश्चर्मसु रज्जुवस्त्रविषये चेत् क्षारवारिष्ठवात्
 स्याच्चालाबुकवैणवेऽम्बुपवनं गोवालकाधर्षणात् ॥ २२ ॥

शुद्धिः सोदकभाजनेष्वपि भवेत् पर्यामिकृत्वा तथा
 धान्यानां फलदर्भमूलसमिधां सम्प्रोक्षणाधावनैः ।
 कौशेयादिदुकूलपट्टवसनैर्यान्युत्तरङ्गाणि ता-
 न्यम्भस्सेकविरागकाणि धवलैः शुध्यन्ति सिद्धार्थकैः ॥ २३ ॥

त्याज्यं दारववैणवादिकमथो भाण्डं तथा मार्त्तिकं
 श्लेष्मोच्छिष्टमलादिदुष्टमथवा निर्माल्यसन्दूषितम् ।
 स्नेहानामपि शुद्धिरप्युपहृतिर्नो चेदभिद्योतना-
 च्छुध्येताथ जलाशयादिषु निशास्वप्नेः शिखादर्शनात् ॥ २४ ॥

गोभिर्वाध्युषिता निखानिततला कृष्टाथवा सूडृता
 भूः शुध्येद् भवनादिकं च सलिलैः सद्गोमयालेपितम् ।
 पुण्याद्वा द्विजभोजनेन च तथा चोल्लेखनाद् वा क्षितिः
 शुध्येत् पातकिनाभिभाष्य वचसां शुद्धिर्द्विजाभाषणात् ॥ २५ ॥

प्राणायामैः शुध्यति देहः समनस्कः स्पृष्ट्वास्पृश्यान्पु निमग्नः सहचेलः ।
 जग्ध्वा यत् तद् वा क्षुतनिष्ठाविनजृम्भास्वाचम्यान्तेजातशुनामप्यवलोके ॥
 निस्सार्याम्भः कूपजलादेर्भहदम्भो वेगात् स्पृष्टं वांशुभिरंशोरिह शुध्येत् ।
 अग्निः शुध्येन्मन्त्रवदम्भःपरिषेकात् प्रायश्चित्ताच्चाग्निमुखाद्वाहितवह्निः ॥

गन्धादीनां मन्त्रजलैः प्रोक्षणतः स्याच्छुद्धिः क्षीरान्नादिषु चाज्यं त्वमिधार्थं ।
 दर्भेणाभिद्योतनतोऽल्पा प्रहतिश्चेच्छिष्टानामप्येवमिवोह्या परिशुद्धिः ॥ २६ ॥

सामान्येन श्रेष्ठचगुणानामपि हेतुः कर्मद्रव्यस्वात्मसु शुद्धिर्नसो या ।
 शुद्धिः सा स्यात् यस्य तु रागाद्यविदुष्टा चेष्टत्वारोऽप्यस्य करस्याः पुरुषार्थाः ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे

क्रियापादे सुकसुवादिच्छक्षण-

पटलो नवमः ।

अथ दशमः पटलः ।

प्रस्तु(तैः ? ता) प्रथ(म)मा(वि ? गम)दीक्षा षट्पदार्थपटले सविचारम् ।
सद्गुरुं तदधिकारविशेषैः सप्रभेदमपि तां कथयिष्ये ॥ १ ॥

दीयते यदनया शिवभावो दीक्षया हि पशवेऽत्र ददातेः ।
क्षीयतेऽस्य सह पाशपशुत्वं क्षिक्षयार्थपरिनिष्ठितधातोः ॥ २ ॥

वित्तनाथपथयायिनि सूर्ये वृद्धिमत्युडुपतौ शुभवारे ।
स्वर्क्षरुमतिथियोगिनि कुर्यात् स्वानुकूलदिवसे खलु दीक्षाम् ॥ ३ ॥

शस्तसिन्धुतटदेवगृहादौ गोष्ठकेऽप्यथ मठे स्वगृहे वा ।
शोधिते भुदि सलक्षणमिष्टं मण्डपं च सुकृतं चतुरश्रम् ॥ ४ ॥

तस्य पूर्वदिशि पश्चिमतो वा शोभनेऽत्र भवने सुविविक्ते ।
रक्षणाय यजमानसमृद्धयै मङ्गलाङ्कुरविरोपणमिष्टम् ॥ ५ ॥

उत्सवेषु विविधेष्वपि दीक्षास्थापनादिषु पवित्रविधौ च ।
मङ्गलाङ्कुरविरोपणपूर्वं मङ्गलं भवति कर्म कृतं तत् ॥ ६ ॥

शस्तयागदिवसात् तु पुरस्तात् सप्तमेऽहनि शुभे नवमे वा ।
पञ्चमेऽपि सुदिने सुमुहूर्ते मङ्गलाङ्कुरविधिं विदधीत ॥ ७ ॥

पात्रमत्र विहितं त्रिविधं तत् पालिका च घटिका च शरावम् ।
विष्णुपद्मभवशङ्करदैवं तत्रयं पृथगनुक्रमशः स्यात् ॥ ८ ॥

अङ्गुलानि खलु विंशतिरुच्चैः पालिका वदनविस्तरतोऽपि ।
उत्तमाष्टजगतीपरिसंख्ये मध्यमाधमविधौ कथिते द्वे ॥ ९ ॥

पादविस्तृतिरतोऽर्धमिता स्यात् तन्निभागमितकण्ठविलं च ।
दण्डवद्भवति शिष्टमशेषं कण्ठतुल्यपरिणाहमनोज्ञम् ॥ १० ॥

उच्चविस्तरसमा घटिकारूपा तालमात्रमिह पञ्चमुखी स्यात् ।
दिक्षु तन्मुखचतुष्टयमेकं मध्यतस्तु समवर्तितभागम् ॥ ११ ॥

तालविस्तृतमुखं तु शरावं तत्समोच्छ्रितमतोऽर्धमिताङ्घ्रि ।
दण्डमस्य चतुरङ्गुलनाभं कण्ठमस्य बिलवर्ज्यमुदग्रम् ॥ १२ ॥

सम्भवे कनकरूप्यकताम्रैर्मार्त्तिकान्यभिनवान्यथवा स्युः ।
क्षालितानि सलिङ्गेन शिवास्नात् सूक्ष्मेष्टितङ्गुलानि निदध्यात् ॥ १३ ॥

शुद्धमृत्सिकतगोमयचूर्णैः पूरितानि कुशकूर्चयुतानि ।

मङ्गलाङ्कुरगृहे सविताने पात्रकाणि विदधातु मनोज्ञे ॥ १४ ॥

गोमयाद्विरूपलिप्य तु भूमिं स्वाङ्गमूलमनुयुक्तजलास्त्रात् ।

प्रोक्ष्य पिष्टपरिरूपितसूत्रैरुक्तलक्ष्मविहिते चतुरश्रे ॥ १५ ॥

विघ्नराजमभिपूज्य पुरस्तात् पुण्यकाहमपि वेदविशिष्टैः ।

वाचयेदधिकमेकमशीतेः स्युः पदानि कथिते चतुरश्रे ॥ १६ ॥

मध्यतो नवपदैरथ शुक्लं कर्णिकाष्टदलकेसरशोभि ।

आलिखेत् सरसिजं तु रजोभिः शालिभिः सुविहितोच्छ्रितमध्यम् ॥ १७ ॥

तत्र सूत्रविनिवेष्टितकुम्भं धूपितं तु विनिधाय कुशेषु ।

द्वादशान्तगलितामृततोयैः पूरयेत् सकुशकूर्चहिरण्यम् ॥ १८ ॥

पिप्पलाघ्ननवपल्लवगन्धैर्माल्यदामकुसुमाक्षतवक्त्रम् ।

शालितण्डुलफलाढ्यविधानं वस्त्रयुग्मकुसुमैरभिरामम् ॥ १९ ॥

मातृकाम्बुजगतं तु कलाभिः षोडशस्वरयुताभिरुपेतम् ।

तं विभाव्य शिशिरांशुमुदंशुं स्वौषधीशमुडुचक्रसमेतम् ॥ २० ॥

पूजयेत् तदुपचारविशेषैः पायसं च सघृतं विनिवेद्य ।

शोभितेषु रजसाथ पदेषु स्थापयेत् तु पृथगङ्कुरपात्रम् ॥ २१ ॥

आदित्ये समरीचे च विवस्वति यमे तथा ।

जलाधिपे च मित्रे च सोमे च पृथिवीधरे ॥ २२ ॥

एषां पदेषु घटिकाः स्थापयेदष्ट वै क्रमात् ।

अग्नौ पूषणि पित्राख्ये दौवारे रोगनागयोः ॥ २३ ॥

अदितावपि चेशाने शरावाण्यभिविन्यसेत् ।

एषां मध्यपदेष्वष्टौ दिग्विदिक्क्रमयोगतः ॥ २४ ॥

स्थानानि पालिकानां तु कथितान्येषु विन्यसेत् ।

पदान्यादौ विलिख्यैषु शुक्लचूर्णेन पूरयेत् ॥ २५ ॥

पृथक्छाल्याढके क्षिप्त्वा दर्भविष्टरक्रे पृथक् ।

अस्थाप्य घटिकादीनि तेषु बीजानि बापयेत् ॥ २६ ॥

माषमुद्रकुलस्थानि निष्पावतिलशालयः ।
 सर्षपा मार्गगोधूमश्यामाकवीहयो यवाः ॥ २७ ॥
 प्रियङ्गवस्तथाढक्यो वेणवश्चेत्यनुक्रमात् ।
 त्रिपञ्चवर्गबीजानि कथितान्युत्तमाङ्कुरे ॥ २८ ॥
 वर्गद्वयं मध्यमे स्यादधमे बीजपञ्चकम् ।
 बीजानि क्षालयित्वाद्भिः क्षीरेण तदनन्तरम् ॥ २९ ॥
 वस्त्रखण्डे दृढं बद्ध्वा दिनमात्रं जले स्थितम् ।
 उद्धृत्य यामद्वितये समतीते तु वापयेत् ॥ ३० ॥
 बीजानां देवतं सोमः स रात्रौ कान्तिमान् यतः ।
 तस्माद् बुभुक्षुर्बीजानि निशायामेव वापयेत् ॥ ३१ ॥
 अभिमन्त्र्य हृदा पूर्वं मन्त्रेणानेन वापयेत् ।
 ओं व्यम्बकाय शर्वाय शङ्कराय शिवाय च ॥ ३२ ॥
 सर्वलोकप्रधानाय शाश्वताय नमो नमः ।
 अनेनैव तु मन्त्रेण सिञ्चेद्भारिद्रवारिणा ॥ ३३ ॥
 पञ्चोपचारेणाभ्यर्च्य चाच्छाद्य वसनैः सितैः ।
 सप्तरात्रं बलिं दद्याद् वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥ ३४ ॥
 ब्रह्मभूतेन्द्रगन्धर्वयक्षरक्षःपिशाचकाः ।
 गणा बलिभुजः सप्त क्रमात् तन्नामलक्षिताः ॥ ३५ ॥
 सान्नपुष्पकुशं ब्रह्मरात्रे तु प्रथमे बलिः ।
 अन्नं दधि निशाचूर्णं लाजसक्तुतिलान्वितम् ॥ ३६ ॥
 भूतक्रूरमिति ख्यातं भूतरात्रे प्रदापयेत् ।
 इन्द्रवल्लीरसोन्मिश्रमन्नं सक्तुपयोदधि ॥ ३७ ॥
 इन्द्ररात्रे तृतीये तु बलिं दद्यात् तु देशिकः ।
 वैणवान्नं पयोयुक्तं गान्धर्वे स्याच्चतुर्थके ॥ ३८ ॥
 पञ्चमे यक्षरात्राख्ये पुष्पाज्याम्बुभिर्बलिः ।
 रक्तान्नं सतुषं मृत्सायुक्तं षष्ठे तु राक्षसे ॥ ३९ ॥

सप्तमे त्वथ पैशाचे माषानं कृसरं मधु ।
 हारिद्रचूर्णं तैलाढ्यं सामिषं तु प्रदापयेत् ॥ ४० ॥
 अन्यथा केचिदाचार्याः प्राहुर्वै गणसप्तकम् ।
 तच्चात्र कथ्यते भूताः पितरोऽपि च गुह्यकाः ॥ ४१ ॥
 नागा ब्रह्मा शिवो विष्णुर्देवताः सप्तरात्रिषु ।
 प्रणवादिनमोन्तैः स्वैर्नामभिर्दापयेद् बलिम् ॥ ४२ ॥
 प्रथमे भूतरात्रे तु भूतकूरेण दापयेत् ।
 तिलैस्तण्डुलमिश्रैस्तु पितृरात्रे द्वितीयके ॥ ४३ ॥
 तृतीये नालिकेराम्भःशाल्यत्रैर्यक्षरात्रके ।
 सक्षीरपिष्टसक्त्वद्विर्नागरात्रे चतुर्थके ॥ ४४ ॥
 सपद्माक्षान्नमाज्यं च ब्रह्मरात्रे तु पञ्चमे ।
 सापूपान्नेन साज्येन षष्ठे शैवे तु दापयेद् ॥ ४५ ॥
 गुलौदनेन साज्येन सप्तमे वैष्णवे बलिः ।
 यदा नव स्युर्दिवसाः पायसं कृसरं क्रमात् ॥ ४६ ॥
 उद्दिष्टदैवतगणमुद्दिष्टबलिना चयेत् ।
 न कश्चिदङ्कुराण्यन्यो निरीक्षेत कदाचन ॥ ४७ ॥
 आचार्य एव प्रविशेत् तच्छिष्यो वा तदाज्ञया ।
 आरूढैरङ्कुरैः कर्तुर्निर्दिशेत् तु शुभाशुभम् ॥ ४८ ॥

इयामैः कृष्णैरङ्कुरैरर्थहानिं तिर्यग्रूढैर्व्याधिमालोहितैश्च ।
 कुब्जैर्दुःखं (तत्प्र ? त्वप्र) रूढैर्मृतिं च ब्रूयाद् भूमैः स्थानदेशेष्टहानिम् ॥
 शुक्लैः पीतैः सम्प्ररूढैः सुपूर्णैः शीघ्रोत्पन्नैश्चारुभिर्व्यायतैश्च ।
 लक्ष्मीं पुष्टिं चेष्टसिद्धिं समग्रां कर्ता विन्देदङ्कुरैर्मङ्गलं च ॥ ५० ॥

आचार्यस्तत्राङ्कुरेष्वप्रशस्तेष्वालक्ष्यास्मिन् शान्तिकं कर्म कुर्यात् ।
 मूलेनाङ्गैर्ब्रह्माभिश्चाथ हुत्वा व्याहृत्यन्तं शोभनं स्यात् तिलैश्च ॥ ५१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे

अङ्कुरार्पणपटलो दशमः ।

अथैकादशः पटलः ।

दीक्षाभिषेकेष्वथ देशिकेन्द्रः प्राक्प्रस्तुतं शोभनकालमिष्टम् ।

ईक्षेत शिष्यस्य गुरोश्च यस्मिन् देशे च कालेऽभ्युदयो यथा स्यात् ॥ १ ॥

मुख्यो वसन्तः शिशिरस्तु मध्यो ग्रीष्मः कनिष्ठोऽभिमतोऽत्र शुक्लः ।

पक्षः सितज्ञेन्दुसुरे (व्य) वाराः शस्तास्तु वर्ज्या हि कुहूश्च रिक्ता ॥ २ ॥

तिप्यप्रजेशादितिसोमविष्णुब्रह्मेन्द्रपूषानिलनैर्ऋतानि ।

मैत्रोत्तराश्चेत्युदितान्युद्धनां दीक्षाभिषेकेष्वनवग्रहाणि ॥ ३ ॥

ज्योतिर्विदां चाभिमतं यदन्यल्लमादिकं शस्तमनिष्टहीनम् ।

निश्चित्य कालं गुरुरत्र शिष्यान् सन्दीक्षयेत् तानाधिकारियुक्त्या ॥ ४ ॥

विशिष्टदेशे च कुले प्रसूतः स्यादग्रजन्मा श्रुतवान् सुशीलः ।

शुचिः सुधीः शोभनलक्षणाङ्गः सौम्यस्तथाचार्यपदाधिकारी ॥ ५ ॥

सत्यव्रतः शमदमार्जवधर्मनिष्ठः

साष्टाङ्गयोगनिरतः शिवशास्त्रविद् यः ।

भक्त्या शिवेऽष्टविधया समलङ्कृतश्च

त्यागी सदैव करुणानिलयो गुरुः स्यात् ॥ ६ ॥

धीरः कृतज्ञः कुलशीलयुक्तो भक्तः शिवे चापि गुरौ विनीतः ।

शुश्रूषुरत्यर्थमभीष्टदाता शिष्योऽप्यलोभादिगुणान्वितः स्यात् ॥ ७ ॥

श्रुतशीलसमाचारश्रेष्ठचसामर्थ्यभक्तिभिः ।

गरीयाननुगृह्णाति योऽन्यान् स गुरुरिष्यते ॥ ८ ॥

तन्त्रचोदितदेशेषु जातो यस्तपसा चरन् ।

ज्ञानेन देशिकः स स्याच्छ्रेयोऽन्येषां च दर्शयन् ॥ ९ ॥

देशेन चरतीति देशिकः ।

देशेन जात्या वृत्तेन यः शिष्टो गुरुसंश्रयः ।

विशेषयिष्यन् स्वात्मानं स गुणैः शिष्य उच्यते ॥ १० ॥

शासुरनुशिष्टावित्यस्माद्धातोः क्यपि तु रूपम् ।

“भागस्त्यहिमवद्भृदन्तरालव्यवस्थिताः ।

ककाराष्टकनिर्मुक्ता देशा देशिकसम्भवाः ॥”

इत्यादि माहेन्द्रे ।

“कुमारीहिमवन्मध्ये स्वतः कृष्णमृगान्विते ।
(देशे)जातस्तु यो विद्वानाचार्यत्वं द्विजोऽर्हति ॥”

इति वीरे ।

“आर्यावर्तोद्भवोऽन्यो वा ककाराष्टकवर्जितः ।
कुलीनो निपुणो दक्षो विनीतः प्रियदर्शनः ॥
शैवसिद्धान्ततत्त्वज्ञः प्रतिष्ठातन्त्रपारगः ॥”

इति प्रतिष्ठासमुच्चये । अत्र योगशिवपद्धतौ—

“मध्यदेशे कुरुक्षेत्रलाटोज्जयिनिसम्भवाः ॥
अन्तर्वेदिप्रतिष्ठाना आवन्त्याश्च गुरुत्तमाः ।
गौडाः सुभोद्भवास्तैरा मागधाः केरलास्तथा ॥
कोसलाश्च दशार्णाश्च गुरवः सप्त मध्यमाः ।
कर्णाटकमहाराष्ट्रकच्छनीरोद्भवास्तथा ॥
कलिङ्गाश्चैव लाम्बाकाः काम्बोजाश्चाधमाः स्मृताः ।
काञ्चीकाश्मीरसौराष्ट्रपाण्ड्यान्यविषयोद्भवाः ॥
कावेरीकोङ्कणोद्भूता निन्दिता गुरवः स्मृताः ।
कुण्डादयश्च रोगार्ता निन्धाः स्युर्देशजा अपि ॥
अष्टव्रताच्च पतितादुत्पन्नो यो नराधमः ।
भस्माङ्कुराह्वयौ त्याज्यौ निन्दितौ सर्वकर्मसु ॥
अन्यलिङ्गी तु तत् त्यक्त्वा पुनः शैवे तु दीक्षितः ।
सोऽपि निन्धः प्रतिष्ठादौ देशिकत्वं च नार्हति ॥
शैवदीक्षामनासाद्य शास्त्रमात्रप्रपाठकः ।
स्वयम्भूर्नाम निन्धोऽसौ शैवकर्मसु गार्हितः ॥
सन्न्यासिनोऽङ्गहीनाश्च विरूपा मठभोजनाः ।
+++ श्वैव कुब्जाद्या नास्तिकाश्चैव निन्दिताः ॥
कर्णाटककलिङ्गाख्यकच्छकाश्मीरवासिनः ।
कोङ्कणाः कर्हाटाश्च काम्बोजाः कामरूपिणः ॥

ककाराष्टकसंज्ञास्ते देशा देशिकवर्जिताः ।

एते कीकटा इत्येके" इति विजये ।

“क्रूरोऽरूपविद्यो व्यसनी कृतघ्नो डम्भः पुनर्भूगुरुभक्तिहीनः ।

मात्सर्ययुक्तो विषयी क्रियासु वर्ज्यः प्रतिष्ठादिषु तार्किकश्च ॥”

इति मञ्जर्याम् । “सन्न्यासी नास्तिकोऽम्बष्ठः” इत्यादिश्लोकैर्देव्या मते गुरुत्वा-
नर्हाः कथिताः ।

“अथाचार्यः समः श्रीमानग्रजन्मा सुपेशलः”

इत्यादि स्वायम्भुवे । अग्रजन्मा तु ब्राह्मण एव, ब्रह्मणः प्रथमजातत्वात् ।

“देशज(न्म)श्रुताकारवृत्तशीलगुणान्वितः ।

सत्त्वप्रभावसम्पन्नो गुरुर्यो गुरुणा कृतः ॥”

इत्यादि ब्रह्मशम्भुः ।

“इत्थं यथाधिकारेण दीक्षाचार्येण साध्यते ।

स च सद्देशसम्भूतः सुमूर्तिः श्रुतशीलवान् ॥”

इत्यादि सोमशम्भुः ।

“दृष्टकर्मा शुचिर्दक्षः शिष्यानुग्रहतत्परः ।

शिवसद्भावविद् विद्वानात्मविद् देशिकोत्तमः ॥”

इति मतज्ञे । “इत्थं भूतादिदीक्षा लब्धाचार्येण क्रियते । स त्वार्यावर्तादिदे-
शसम्भूतः श्रुतशीलगुणाचारसम्पन्नः शुद्धाशयः स्यादि”ति भोजराजः । “श्रेष्ठो
देशकुलशयैर्विनयवान् वाग्मी कुलीनः” इत्यादि प्रयोगमञ्जर्याम् ।

“आचार्यः शिवशास्त्रज्ञः शस्तदेशसमुद्भवः ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा शिवभक्तिपरायणः ॥

यजमानानुकूलर्क्षजन्मा देशिक उच्यते” ।

इति देव्या मते ।

“सर्वलक्षणयुक्तेन गुरुणा दीक्षितो नृपः ।

सर्वान् कामानवाप्नोति परत्र च शिवां मतिम् ॥

जटी मुण्डी शिखी वापि शस्तदेशसमुद्भवः !
 शिवशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः श्रुतवृत्तान्वितो द्विजः ॥
 शिवमेवाश्रितो नित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
 आचार्यः स इहोद्दिष्टः शिवदीक्षादिकर्मसु ॥”

इत्यजिते ।

“अनूचानः प्रसन्नात्मा शिवदीक्षाभिषेचितः ।
 शिवागमज्ञो मतिमान् शिवपूजापरायणः ॥
 रुद्राक्षमालां बिभ्राणस्त्रिपुण्ड्राङ्कितविग्रहः ।
 विशुद्धदेशकुलजः शीलचारसमन्वितः ॥
 वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो ज्ञानवान् गुरुरुच्यते ॥”

इति सान्तानिके ।

“कृष्णवर्णो मृगो यस्मिंश्चरतीह स्वभावतः ।
 तं देशं यज्ञियं विद्याद् यश्च विप्रैराधीष्ठितः ॥
 तद्देशकालसम्भूतस्त्वाचार्यः शास्त्रसम्मतः ॥”

इति सर्वज्ञानोत्तरे ।

“शुभदेशोद्भवः श्रीमान् पदवाक्यप्रमाणवित् ॥
 शिवशास्त्रार्थसन्तुष्टः सर्वत्र करुणानिधिः ।
 चीर्णाचार्यव्रतो मन्त्री प्रसन्नहृदयाननः ॥
 लिङ्गादिलक्षणज्ञाननिपुणः कर्मसन्ततौ ।
 अहीनसन्ततिर्यस्तु ब्रह्मचारी गृही तथा ॥
 सान्तानिको गृही श्रेष्ठः समयाचारपालकः ।
 भौतिको ब्रह्मचारी यः पुरा पश्चाद् गृही भवेत् ॥
 स भौतिको गृहस्थः स्यात् तज्ज्ञैराचार्य उच्यते ।
 सोऽपि श्रेष्ठः तत्सुतश्च भवेत् सान्तानिको गुरुः ॥
 देवताव्यासितत्त्वज्ञः षड्विधाध्वविशारदः ।
 शुभाशुभनिमित्तज्ञोऽप्यथवा विस्तरेण किम् ॥

सम्यग्जातिः परिज्ञानं वृत्तं चाद्यास्त्रयो गुणाः ।

यस्यैते स गुरुः श्रेष्ठः सर्वकामफलप्रदः ॥”

इति प्रतिष्ठापद्धतौ ।

“पूर्णविद्याव्रतो मन्त्री ज्ञानवान् सुसमाहितः ।

भस्मनिष्ठो यतिः ख्यातो गुरुः स्याद् भौतिकोऽपि वा ॥”

इति मोहशूरोत्तरे ।

“द्रष्टव्यं गुरुणा नित्यं विप्रवृत्त्यनुसारिणा ।

य एवं वर्तते बन्धो ब्रह्मवित् स गुरुर्द्विज ! ॥”

इत्यादि परारूपे ।

“शुभजातिं सुवृत्तस्थं शुभदेशसमुद्भवम् ।

क्रियाकाण्डरतं शान्तं धार्मिकं गुरुवत्सलम् ॥

प्रतिपन्नजनानन्दं शौचोपेतं दृढव्रतम् ।

विद्ययाभयदातारं लौक्यचापलवर्जितम् ॥

एवंविधं गुरुं प्राप्य को न मुच्येत बन्धनात् ।”

इति वातुलोत्तरे । “धार्मिकः सत्यनादी”त्यादि सर्वज्ञानसमुद्रे ।

“सर्वलक्षणहीनोऽपि ज्ञाववान् गुरुरिष्यते ।

ज्ञानं च तत्त्वविज्ञानं षडध्वज्ञानसंश्रयम् ॥”

इत्यादि पौष्करे ।

“ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या विशुद्धाः साधकाः स्मृताः ।

स्ववर्णादानुपूर्व्येण स्युराचार्याः षडानन ! ॥”

इति बृहत्कालोत्तरे ।

किमर्थं बहुनोक्तेन ग्रन्थगौरवकारिणा ।

इत्थमागमवाक्यानां बाहुल्याद् विप्र एव हि ॥ ११ ॥

दीक्षितश्चोदितैर्युक्तो गुणैः सौम्यः प्रियंवदः ।

योग्यो नृपगुरुत्वे स्यादन्येषां च न संशयः ॥ १२ ॥

कुलशीलसमाचारैः संयुक्तो गुरुवत्सलः ।
 गुरोरधीततन्त्रश्च पूतः साधकदीक्षया ॥ १३ ॥
 संसाधयति यो मन्त्रान् दृढभक्तिः स साधकः ।
 मत्वासारं च संसारं मानुष्यं जन्म दुर्लभम् ॥ १४ ॥
 उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
 इहामुत्रार्थभोगानां प्राप्तये चापि मुक्तये ॥ १५ ॥
 उपायः सुकरोऽस्त्यन्यो नहि मुख्यः शिवाश्रयात् ।
 द्विजानामनुपेतानां स्वकर्माध्ययनादिषु ॥ १६ ॥
 यथाधिकारो नास्तीह स्याच्चोपनयनादनु ।
 तथा ह्यदीक्षितानां तु तन्त्रमन्त्रार्चनादिषु ॥ १७ ॥
 नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम् ।

तथाहि —

नारुद्रः संस्मरेद् रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत् ॥ १८ ॥
 नारुद्रः कीर्तयेद् रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात् ।
 शिवव्रतं गृहीत्वा तु प्रत्यहं पालयेत् सुधीः ॥ १९ ॥

तद्यथा —

“वरं हि शिरसश्छेदो वरं हि मरणं मम ।
 न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जी(यां ? य) भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥
 न शिवार्चनतुर्योऽस्ति धर्मोऽत्र भुवनत्रये ।
 इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः सदाशिवः ॥”

इति शिवधर्मे —

अतः समयिभिश्चैव साधकैर्गुरुभिस्तथा ।
 प्रत्यहं यत्नमास्थाय पूजनीयः सदाशिवः ॥ २० ॥

अत्र पतञ्जलिराह —

“यद्वच्छयाप्येकमपेतगन्धं त्वत्पादपद्मे कुमुमं निधाय ।
 बहूनि कामं बहुरूप ! भुङ्क्ते फलान्यहो स्वादुतराणि लोके ॥”

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे
 साधकाचार्यलक्षण एकादशः पटलः ।

अथ द्वादशः पटलः ।

अत्र ब्रूमः परिवारोचितानां मूर्तीश्चान्यत् सकलं दैवतानाम् ।

यद् विज्ञेयं यजनादौ विशेषाद् येनापि स्यात् फलसिद्धिः समग्रा ॥ १ ॥

इष्ट्वा सूर्यं प्रथमं विघ्नशान्त्यै विघ्नाधीशं तद् + + गुरुं च ।

शम्भोः पूजां विदधीताभिकार्यं कृत्वा सम्यक् परिवाराश्च पूज्याः ॥ २ ॥

सूर्यार्चयामथ तद्धारपालो दण्डी खड्गं विदधद् दक्षिणस्थः ।

खड्गी वामे कपिशः पिङ्गलाख्यो रक्ताकल्पावपि तौ चण्डवेधौ ॥ ३ ॥

विघ्नान् निघ्नन् द्विरदास्योऽरुणाङ्गो रक्ताकल्पः शशिमौलिस्त्रिनेत्रः ।

पूज्यो नित्यं द्विभुजो दक्षिणस्थः शु । कल्पः स्वगुरुद्वेषकोणे ॥ ४ ॥

प्रभूतासनं नाम हिरण्यं चतुरश्रपीठं कृतादिचतुर्युगैः सितरक्तपीत-
कृष्णवर्णसिंहाकृतिभिर्विमलादिनामभिश्चतुष्पादैर्विधृतं तन्मध्यवर्तुलारुणाबिम्बो-
परि विकसिताष्टदलं सूर्यपद्मासनं विचिन्त्य तस्याग्न्यादिकोणदलेषु हृदयाद्य-
ङ्गानि दिग्दलेष्वस्त्रं पुरतो नेत्रं च रक्तवर्णानि स्त्रीवेषाणि कृताञ्जलीनि पूजयेत्

रक्ताकल्पा ललिताङ्ग्यः सुवेषाः सिन्दूराभा नव याः शक्तयस्ताः ।

पत्राग्रस्था नवमी कर्णिकायां दीप्ताद्यास्तु द्विभुजा वन्दनीभिः ॥ ५ ॥

तत्पद्मकर्णिकामध्यावस्थितं भगवन्तं भास्करमुभयपार्श्वस्थितप्रभा(स-
न्ध्या?)संज्ञाभ्यां देवीभ्यां सहितं ध्यात्वावाहनादिभिरभ्यर्चयेत् ।

बन्धूकाभं सुकुमारं सुवेषं दिव्याकारं द्विभुजं पद्महस्तम् ।

रक्ताकल्पं कमलाताम्रनेत्रं वेदात्मानं विलसद्गुह्यमदेहम् ॥ ६ ॥

दिव्यैर्मणिकुण्डलाङ्गदकटकहारादिभिराभरणैर्विभूषितं प्रसन्नवदनं भानु-
मालिनं देवं ध्यायेत् ।

शुक्लाकल्पं विकसत्पद्महस्तं प्रालेयांशुं द्विभुजं हारगौरम् ।

कम्पाकारं कमलाक्षं प्रसन्नं चन्द्रं ध्यायेद् धवलाश्वाधिरूढम् ॥ ७ ॥

ऐशान्यां तेजश्चण्डं रक्तं रक्ताम्बरादिभिराभूषितं शूलहस्तं ध्यायेत् ।

अथवा —

श्वेतः श्वेताम्बराकल्पो द्विभुजस्तु गदाधरः ।

दशाश्वरथमारूढश्चन्द्रो ध्येयो वरप्रदः ॥ ८ ॥

रक्ताकल्पो वरदं शक्तिं शूलं (ले दोर्भिः) बिभ्रद् युगसंख्यैर्गदां च ।

मेषारूढो ललिताङ्गः सुवेषो बन्धूकामो भगवान् भूमिजः स्यात् ॥ ९ ॥

पीताकल्पो वरदं चापि खड्गं दोर्भिश्चर्मप्यथ बिभ्रद् गदां च ।

दिव्याकारो मकुटी भूषिताङ्गः सिंहारूढः शशिजः पीतवर्णः ॥ १० ॥

पीताकल्पो धिषणः पीतवर्णो दण्डाक्षस्रग्वरदान् कुण्डिकां च ।

दोर्भिर्विभ्रत् कनकस्यन्दनस्थः स्यादुष्णीषी मणिभिर्भूषिताङ्गः ॥ ११ ॥

श्वेताकल्पो भगवान् हारगौरो दण्डाक्षस्रग्वरदान् कुण्डिकां च ।

दोर्भिर्विभ्रद् रजतस्यन्दनस्थः स्यादुष्णीषी भृगुजो भूषिताङ्गः ॥ १२ ॥

नीलाकल्पो धृतशूलोऽञ्जनाभः प्रासं बिभ्रद् वरदं चेष्टुचापे ।

गृध्रारूढः स्वरथे भूषिताङ्गो ध्येयो मन्दो भगवानर्चनादौ ॥ १३ ॥

कृष्णाकल्पः स्फुटभिन्नाञ्जनाभः शूली खड्गी धृतचर्माम्बराढ्यः ।

ध्वान्ताकारः सितदंष्ट्रोत्कटास्यो राहुर्नीलैर्हरिवीरै रथे स्वात् ॥ १४ ॥

धूम्राकरुणा द्विभुजाः स्पष्टदंष्ट्रा धूम्राभासाः सगदास्ते वराढ्याः ।

रौद्राकाराः खलु गृध्रासनस्था ध्येया नैका रथिनः केतवः स्युः ॥ १५ ॥

सर्वे प्रहाः किरीटादिभिर्भूषणैर्विभूषिता युवानो लोकयात्राप्रवर्तका भो-
गैश्वर्यवरप्रदा ध्येयाः स्युः ।

सूर्यपूजामूर्तयः ।

प्रासादं यच्छिवशक्त्यात्मकं तच्छक्त्यन्तैः स्याद् वसुधाद्यैस्तु तत्त्वैः ।

शैवी मूर्तिः खलु देवालयारूपेत्यस्माद् ध्येया प्रथमं चाभिपूज्या ॥ १६ ॥

शान्तिद्वारं प्रथमं पूर्वतः स्याद् विद्या याम्ये त्वथ पश्चान्निवृत्तिः ।

कौबेरं यत् तदपि स्यात् प्रतिष्ठा शान्तिद्वारं खलु नित्येषु शस्तम् ॥ १७ ॥

मातङ्गास्यो धवलः पङ्कजस्थो द्वारे दन्ती सृणिपाशेषुहस्तः ।

ध्येयस्तुन्दी मकुटी दक्षिणे स्याद् रक्ताकल्पः शशिमौलिखिनेत्रः ॥ १८ ॥

तद्वद् वाणी स्फटिकेन्दुप्रकाशा मुद्राक्षस्रकलशग्रन्थपाणिः ।

शुभ्राकरुणा शशिमौलिखिनेत्रा वामे ध्येया सितपद्मोपविष्टा ॥ १९ ॥

नन्दीशमहाकालौ द्वारपालावरणे वक्ष्येते ।

गङ्गा तुङ्गस्वतरङ्गाच्छवर्णा दिव्याकारा युवतिर्दक्षिणे स्यात् ।

गौराकरुणा द्विभुजाम्भोजहस्ता वन्द(न्योऽन्या)न्यस्फुटवामैकपाणिः ॥ २० ॥

कालिन्दी स्यानिजकल्लोलनीला लोलापाङ्गा युवतिर्दिव्यरूपा ।

वामे त्वब्जं दधती वामपाणावन्येनार्धं धृतवन्दन्यमुद्रा ॥ २१ ॥

नाराचास्त्रं तनुविद्युत्प्रकाशं देहल्यां च स्थितमग्न्यर्ककल्पम् ।

वास्त्वीशः स्यादसुरोऽधोमुखोऽस्त्रोऽङ्गान्याकीर्यैशे कृतशीर्षः शयानः ॥ २२ ॥

तत्र वास्तुपुरुषोऽधोमुखः प्रसारितपाणिपादो भूमौ शयानो असुरः ।

वास्त्वधिपतिर्ब्रह्मा परतो ज्ञेयः ।

आधाराख्या धवला शक्तिरुक्ता ज्योत्स्नाप्रख्या गगनाभा सुरूपा ।

लोकान् सर्वान् परमेशेच्छया या धत्ते नित्यं प्रथमं तेन पूज्या ॥ २३ ॥

द्वार्त्रिंशद्भिः खलु तत्त्वैर्धाराद्यैर्विधान्तैस्तेर्महितं विष्णुतेजः ।

आनन्तं तत् कथितं ह्यासनं स्यात् पीठाकारः स तु नागो ह्यनन्तः ॥ २४ ॥

धर्मं रक्तं वृषरूपं तु सिंहं ज्ञानं श्यामं त्वथ भूतं तु पीतम् ।

वैराग्यं स्याद् गजरूपं सिताङ्गं चैश्वर्यं च क्रमशः पीठपादाः ॥ २५ ॥

सितकाश्मीरतालालिवर्णान् सिंहाकृतीनित्यन्ये ।

पीठस्थेष्वाः स्युरधर्मादयो ये चत्वारस्ते कनकाकाररम्याः ।

“ईषाश्चाधर्ममि”त्यादि मञ्जर्याम् ।

पद्मं शुक्लं वितताष्टच्छदं स्यात् किञ्जल्काल्या रुचिरं कर्णिकाढ्यम् ॥ २६ ॥

सौरे बिम्बे चतुरास्यः किरीटी हंसारूढः कलशं चाक्षमालाम् ।

ब्रह्मा बिभ्रद् वरदं चाभयारुखं हस्तैर्ध्येयः सितवक्त्रश्चतुर्भिः ॥ २७ ॥

सौम्ये बिम्बे गरुडे मेघनीलश्चक्रं शङ्खं गदयाब्जं दधानः ।

हारी माली कटकी सत्किरीटी विष्णुः पीतं वसनं कौस्तुभं च ॥ २८ ॥

अग्नेर्बिम्बे वृषभे चन्द्रमौलिः श्वेतो रुद्रो दशबाहुस्त्रिनेत्रः ।

टक्ष्णाग्नित्रिशिखार्हीश्च बिभ्रद् वज्राक्षस्रग्वरदाभीतिपाणिः ॥ २९ ॥

एतेऽत्र पत्रकेसरकर्णिकाव्यापित्वेन ध्येयाः । यथा वातुले —

“ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सूर्येन्द्वनलविम्ब(पाः ? गाः) ।

ईश्वरस्तत्र च व्यापी तस्मात् पूज्यः सदाशिवः॥”

इति । ब्रह्मविष्णुरुद्रान् मण्डलव्यापित्वेन पत्रकेसरकर्णिकासु तस्यापिनमिश्रं चार्चयेदिति । सदाशिवदेवस्यासनत्वेन चतुर्णामध्यधिकारः । अत्राह वरुणः—

“अष्टबाहुश्चतुर्वक्त्रः स्फटिकाभस्त्रिलोचनः ।

नागयज्ञोपवीती च विज्ञेयो ध्रुव ईश्वरः ॥”

इति ।

श्वेता रक्ता त्वसिता पीतवर्णा श्यामा कृष्णा (चा)ज्जना स्याज्जपाभा ।

ज्योत्स्नाभा वेत्युदिता चारुरूपा वामाद्या याः परितो भूषिताङ्गचः ॥ ३० ॥

बद्धपद्मासनः शुद्धचन्द्रप्रभः षोडशाब्दोपमश्चारुदिव्याकृतिः ।

ब्रह्मभिः पञ्चभिः पञ्चवक्त्रः क्रियाज्ञानशक्तिस्पृहार्केन्दुवह्नीक्षणः ॥ ३१ ॥

पङ्क्तिस्त्र्यैर्भुजैः साभयेष्टप्रदे शक्तिशूले दधन्नापि खट्वाङ्गकम् ।

दक्षिणे चान्यतः सर्पमक्षस्रजं डामरूकोत्पले बीजपूरं तथा ॥ ३२ ॥

सुप्रसन्नाननो दिव्यमाल्याम्बरो भूषणैर्भूषितो हेमरत्नोज्ज्वलैः ।

जाटजूटस्फुरच्चन्द्र + पूरकाश्चन्तनीयो भवेत् तत्र सादेश्वरः ॥ ३३ ॥

सादेशाभं विभुमीशानरूपं केचित् प्राहुर्ह्यपरे त्वेकवक्त्रम् ।

चन्द्राश्माभं वरदं शूलपाणिं चन्द्रोत्तंसं वरवेषं युवानम् ॥ ३४ ॥

काश्मीराभं सकपर्देन्दुमौलिं बीजापूरं दधतं चाक्षमालाम् ।

दिव्याकारं वरदाभीतिहस्तं ध्यायेत् पीतं पुरुषं भूषिताङ्गम् ॥ ३५ ॥

दष्टोष्ठास्यं कपिलश्मश्रुकेशं भीमाकारं धृतरक्ताम्बराढ्यम् ।

सर्पोष्णीषं सितदंष्ट्राकरालं सर्पैश्चोग्रैरालिभिर्भूषिताङ्गम् ॥ ३६ ॥

दोर्मिः शूलं परशुं चासिदण्डौ खट्वाङ्गाख्यं दधतं चर्मपाशौ ।

हेतीर्ध्यायेत् सकपालं कपालैः सालङ्कारं घननीलं त्वघोरम् ॥ ३७ ॥

बन्धूकाभं ललितं स्त्रीविलासं दिव्याकारं धृतधम्मिल्लकेन्दुम् ।

रक्ताभूषावसनालेपमाल्यं वामं ध्यायेद् धृतचर्मासिहस्तम् ॥ ३८ ॥

सद्योजातं शशिशोकीरगौरं शुक्लाकल्पाम्बरगन्धं त्रिनेत्रम् ।

सप्ताभारं वरदाभीतिहस्तं चन्द्रापीडं स्मरतां बालवेषम् ॥ ३९ ॥

“पृथिव्याद्यष्टमूर्तीनां वामाद्याः शक्तयः क्रमात् ।

जगत्प्रवृत्तिसंसिद्धिर्याभिः सिध्येच्छिवाज्ञया ॥”

इति कालोत्तरोदितत्वात् । अतोऽष्टमूर्तयोऽपि स्वरूपतः प्रदर्श्यन्ते —

पृथ्वीमूर्तिश्चतुरास्याष्टबाहुः कूर्मारूढा दधती दिव्यरूपा ।

पीता शालिप्रसवं चोत्पलं च साद्रिद्वीपाम्बुधिनद्यावृताङ्गी ॥ ४० ॥

मेषारूढो वरदाभीतिशक्तीर्बिभ्रद्धस्तैररुणः स्वस्तिकं च ।
ज्वालामालामकुटः पञ्चवक्त्रो हेमाकल्पः सुमुखः सप्तजिह्वः ॥ ४१ ॥
श्वेतोष्णीषो नवनीताक्तदेहः साङ्गं चर्मापि च कृष्णं दधानः ।
पत्न्या युक्तः सितयज्ञोपवीतिः सुक्पाणिः स्याद् यजमानोऽध्वरस्थः ॥
सप्तच्छन्दस्तुरगस्यन्दनस्थो बन्धूकाभः सुमुखश्चारुरूपः ।
रक्ताकल्पाम्बरमाल्यानुलेपः सूर्यो वर्मी मकुटी पद्महस्तः ॥ ४२ ॥
अम्भोमूर्तिः कथिता शुक्लवर्णा नकारूढा वरपाशौ दधाना ।
मुक्ताजालैर्विविधैर्भूषिताङ्गी शुभ्राकल्पा युगमौलिः सुमौलिः ॥ ४३ ॥
एणारूढः पवनो धूम्रवर्णः पीनाङ्गांसो मकुटी कुञ्चितभ्रूः ।
कृष्णाकल्पश्चतुरास्योऽङ्कुशी च दिव्याकारो युगबाहुर्ध्वजी स्यात् ॥
आकाशोऽपि स्फुटितेन्दुप्रकाशो दोर्भिः शूलं डामरूकं च शङ्खम् ।
खट्वाङ्गं चादधर्धेन्दुमौलिस्त्र्यक्षो ध्येयः सकपर्दो वृषस्थः ॥ ४६ ॥
प्रालेयांशुर्हिमगोक्षीरगौरः शुक्लाकल्पो ललिताङ्गः किरीटी ।
शङ्खाम्भोजे वरदाख्यं गदां चाबिभ्रद् दोर्भिस्तुरगस्थोऽभिपूज्यः ॥ ४७ ॥
शर्वाद्यष्टौ वृषवाहास्त्रिनेत्रा वेदास्यास्ते सकपर्देन्दुखण्डाः ।
शूलं वज्रं शर(चापौ) दधाना नागाकल्पाः खलु ते मूर्तिपाः स्युः ॥ ४८ ॥
तद्वद्वर्णैः कमलस्वर्णरक्ताः शुक्लापीतावरणा रक्तकृष्णाः ।
मूर्तींशास्ते स्युरनन्तादयो ये विद्याधीशा अपि वर्णैः समानाः ॥ ४९ ॥
योगोपेताः सुमुखाश्चारुरूपा धम्मिलाग्रप्रथितस्त + + + ।
सौम्याः सर्वे सुदुकूलाम्बराढ्या विद्याधीशाः कथिता नागहस्ताः ॥ ५० ॥
योषिद्रूपाण्यपि चाङ्गानि वर्णैः श्वेतस्वर्णारुणकृष्णानिभानि ।
ध्येयानि स्याद् वरदाभीतिकाढ्यं त्र्यक्षं तेषामपि शूलं च दङ्कम् ॥ ५१ ॥

अत्र मञ्जर्या —

“हृदयादीनि चाङ्गानि तद्रूपा द्विभुजाः स्त्रियः ।

वरदाभीतिहस्ताः स्युरस्त्रं किञ्चित् तु पिङ्गलम् ॥”

इति ।

नन्दीशाख्यो मकुटी स्वर्णवर्णः किञ्चिदंष्ट्री सुमुखो दक्षिणस्थः ।

द्वारे शूली गदयावस्थितः स्याद् दैत्यांकारो द्युतिमान् सत्रिनेत्रः ॥ ५२ ॥

मेघश्यामः शुभवेषः किरीटी रक्ताकल्पो धृतटङ्कस्त्रिनेत्रः ।

द्वाःस्थो वामे गदयावस्थितः सन् दंष्ट्री किञ्चित् स महाकालसंज्ञः ॥ ५३ ॥

निर्मासाङ्गो धृतशूलस्त्रिनेत्रः प्रेताकारः कृशदीर्घोदरास्यः ।

भृङ्गीशाख्यः परमेशप्रियोऽसौ याम्यद्वारे स भवेत् पश्चिमस्थः ॥ ५४ ॥

लाक्षावर्णो धृतटङ्काक्षमालो रक्ताकल्पो गजवक्त्रस्त्रिनेत्रः ।

ह्रस्वाङ्गः स्यादहियज्ञोपवीतो याम्यद्वारे खलु पूर्वस्थितोऽसौ ॥ ५५ ॥

कैलासाभो हिमचन्द्रांशुगौरस्तुङ्गः शृङ्गी बहलाङ्गः ककुद्भान् ।

धर्मः साक्षाद् वृषरूपी चतुष्पात् पश्चाद्द्वाःस्थः खलु कौबेरभागे ॥ ५६ ॥

षड्वक्त्रोऽस्माद् द्विगुणाक्षश्च दोर्भिर्युक्तो रक्तः शिखिवाहः किरीटी ।

रक्ताकल्पः शिखिशक्त्यक्षमालापूर्वा हेतीर्विदधद् बालवेषः ॥ ५७ ॥

कन्या देवी दधती नीलवर्णा चक्रासीघूंस्त्रिशिखं शङ्खखेटे ।

दोर्भिश्चापं वरदं सिंहवाहा रक्ताकल्पो धनद्वारपूर्वे ॥ ५८ ॥

संरक्ताङ्गः परशुं चापि कुण्डी बिभ्रद् दोर्भिस्त्रिशिखं चाक्षमालाम् ।

चण्डेशः स्यान्मकुटी सत्रिनेत्रो दिव्याकारोऽरुणमाल्याम्बरालम्ब्यः ॥ ५९ ॥

ह्र(न्द्रा?न्द्रः)पीतो मकुटी युग्मबाहुर्हरैर्निष्कैः कटकैश्चाङ्गदाद्यैः ।

दिव्याकल्पो धृतवज्राशनिः स्यात् प्राच्यां देवैः सह चैरावतस्थः ॥ ६० ॥

तप्तस्वर्णद्युतिरभिश्चतुर्भिर्दोर्भिर्बिभ्रद् वरदं चाभयं च ।

कुण्डी तद्वज्रपमालां च हैमीं हैमाकल्पः सुमुखो वृद्धवेषः ॥ ६१ ॥

ज्वालावेष्टितस्वमण्डलस्थो दक्षिणभागाश्रितया स्वाहया सहितो मेषारूढश्च ।

नीलाभ्राभो बलवान् दण्डपाणिर्दिव्याकारो युगबाहुः किरीटी ।

कृष्णाकल्पो महिषं चाधिरूढः प्रेताधीशः खलु धर्मो यमः स्यात् ॥ ६२ ॥

चित्रगुप्तादिभिः स्वगणैः परिवृतश्च ।

रक्षोधीशो निर्ऋतिः कृष्णवर्णो दंष्ट्री खड्गी शितिमाल्याम्बरालम्ब्यः ।

भीमाकारोऽपि च रम्याकृतिः स्यात् स्वाशासंस्थः पुरुषं चाधिरूढः ॥

रक्षोगणैरावृतश्च ।

प्रालयेन्दुस्फटिकस्वच्छवर्णः पीताकल्पो मकुटी भूषिताङ्गः ।

नकारूढो धृतपाशः सुरूपो देवो ध्येयो वरुणः स्यात् प्रसन्नः ॥ ६४ ॥

गङ्गायमुनादिभिर्दिव्यरूपिणीभिर्नागैश्च परिवृतः ।

धूम्रो वायुर्ललिताङ्गो युवा स्यान्नीलाकल्पो युगबाहुर्मृगस्थः ।

हारी बिभ्रद् ध्वजमप्यङ्कुशं च ध्येयो देवः सहितः स्यान्मरुद्भिः ॥ ६५ ॥

हेमाभासो मधुपिङ्गाक्षसौम्यो दिव्याकल्पो नरबाहो गदाधृक् ।

तुन्दी किञ्चिद् बहलो ह्रस्वबाहुर्दक्षधाधीशो निधिभिश्चावृतः स्यात् ॥ ६६ ॥

मुक्तावर्णो धृतशूलस्त्रिनेत्रः श्वेताकल्पः सकपदेन्दुखण्डः ।

सौम्याकारो वृषबाहः शिवांशो विद्याधीशो भवतीशानदेवः ॥ ६७ ॥

विद्यामूर्तिभिः परिवृतश्च ।

तप्तस्वर्णप्रतिमो हंसबाहो वक्रैर्युक्तः स चतुर्भिर्भुजैश्च ।

साक्षस्रक्लुक्लुवकुण्डीकुशांश्च बिभ्रद् ब्रह्मा सकपदः सुरूपः ॥ ६८ ॥

बामतः सावित्र्या दक्षिणतः सरस्वत्या च प्रजापतिभिर्देवैश्च समस्त-
लोकैः परिवृतः कुशध्वजश्च ।

नागाधीशैरखिलैः सेव्यमानः श्वेतारक्तप्रभया सौम्यरूपः ।

दिव्याकल्पः कमले चक्रहस्तो ध्येयोऽनन्तो वनुधाशेखरः स्यात् ॥ ६९ ॥

सहस्रफणामणिकिरणोद्भासितोत्तमाङ्गः स्यात् ।

शङ्खप्ररूपो वृषबाहस्त्रिनेत्रो नागाकल्पः सकपदेन्दुखण्डः ।

भीमाकारोऽप्यतिभद्रो वटाधः शूली टङ्की निवसन् वीरभद्रः ॥ ७० ॥

हंसारूढा त्वरुणाभा चतुर्भिर्वक्त्रैर्दोर्भिर्धृतकुण्ड्यसमाला ।

ब्राह्मी देवी निवसन्ती पलाशे दिव्याकल्पा वरदाभीतिहस्ता ॥ ७१ ॥

लक्ष्म्ये श्वेता सकपदेन्दुरेखा टङ्कं शूलं वरदं चाभयं च ।

उक्षारूढा दधती सन्निनेत्रा नागाकल्पा खलु माहेश्वरी स्यात् ॥ ७२ ॥

बन्धूकाभा ह्यरुणाकल्परम्या शक्त्यश्रस्रग्वरदाभीतिपाणिः ।

दिव्याकारा समयूरध्वजा या कौमारी स्यात् स्फुटमौदुम्बरस्था ॥ ७३ ॥

मेघश्यामा धृतपीताम्बराढ्या श्रीवृक्षस्था सकिरीटादिभूषा ।

शङ्खं चक्रं वरदं चाभयं च ताक्ष्यारूढा दधती वैष्णवी स्यात् ॥ ७४ ॥

मेषारूढा हलचक्राब्जहस्ता नीलाकल्पा स्फुटभिन्नाञ्जनाभा ।
 वाराही स्यात् सवराहास्यदंष्ट्रा घोरा रम्या निवसन्ती करञ्जे ॥ ७५ ॥
 ऐन्द्री श्यामा वरमाल्यानुलेपा वज्रं पाशं वरदाभीतिके च ।
 हेमाकल्पा दधती कल्पवृक्षच्छायासंस्था सचतुर्दन्तिवाहा ॥ ७६ ॥
 कृष्णा रौद्रो वटवृक्षेऽद्रिकल्पा शूलं खड्गं डामरूकं कपालम् ।
 रक्ताकल्पा दधती प्रेतवाहा चामुण्डा स्याद् भटमुण्डान्त्रमाला ॥ ७७ ॥
 विघ्नाधीशो गजवक्रोऽञ्जनाभष्टङ्काक्षस्रग्वरदाभीतिहस्तः ।
 रक्ताकल्पः श्री + + + + + भक्ष्यैः प्रीतो भगवानाखुवाहः ॥ ७८ ॥
 सर्वा लोके विविधा मातगेऽन्या नानावेषाः शुभवर्णायुधाढ्याः ।
 तास्तास्तुष्टाः शिवया(गस्स ? मे स)मेता ध्येयाः पूजामधिगम्य प्रसन्नाः ॥
 रुक्मप्रख्या सकिरीटा चतुर्भिर्दोर्भिर्वज्रं दधती चाक्षमालाम् ।
 अम्भोजं चाप्यभयं दिव्यरूपा शुभ्राकल्पाम्बुजसंस्था निवृत्तिः ॥ ८० ॥
 रक्ताकल्पा स्फटिकस्वच्छवर्णा पाशाक्षस्रकमलाभीतिहस्ता ।
 नानारत्नैर्मुकुटाद्यैरुपेता ध्येया रक्ताम्बुजसंस्था प्रतिष्ठा ॥ ८१ ॥
 गुञ्जारक्ता सकपर्दा त्रिवक्त्रा चन्द्रोत्तमा धृतशक्त्यक्षमाला ।
 अब्जासीना जलजाभीतिहस्ता दिव्याकल्पा खलु विद्या कला स्यात् ॥
 दोर्भिर्वज्रैरपि युक्ता चतुर्भिः कृष्णा कृष्णैर्वसनाद्यैरुपेता ।
 सर्पाकल्पा सकपर्दा ध्वजाक्षस्र साभीतिः कथिता शान्तिसंज्ञा ॥ ८३ ॥
 शङ्खक्षीरस्फटिकस्वच्छगौरा पद्मास्या स्यात् सकपर्देन्दुखण्डा ।
 पद्माक्षस्रग्वरदाभीतिपाणिः शुभ्राकल्पा जलजे शान्त्यतीता ॥ ८४ ॥
 पद्मासीनं चतुरास्यं सुपीतं ध्यानैकाग्रं द्विभुजाङ्गस्थमुद्रम् ।
 ऊर्ध्वाक्षस्रकलशं दिव्यरूपं दिव्याकल्पं कथिताध्यात्मतत्त्वम् ॥ ८५ ॥
 मेषानीलं श्रितपुर्यष्टकाब्जैर्दोर्भिः कुण्डी जलजार्यक्षमालाः ।
 विद्याधारं त्वभयं बोधमुद्रां विद्यातत्त्वं विदधद् दिव्यरूपम् ॥ ८६ ॥
 इन्दुश्चेतं सचतुर्बाहुवक्त्रं दिव्याकारं धृतटङ्काक्षमालम् ।
 पद्मासीनं सकपर्दं समुद्रं सक्तं ध्येयं शिवतत्त्वं समाधौ ॥ ८७ ॥

सौम्यासौम्यास्त्वपरे चाप्यसंख्या नानारूपा वरवेषायुधाढ्याः ।

स्मर्तव्यास्ते दशदिवस्था गणेशा ये वक्ष्यन्ते परतोऽस्मिन् समासात् ॥

पीतं रक्तं त्वथ कृष्णं च नीलं विद्युत्प्रख्यं बहुरूपं सुवर्णम् ।

अग्निज्वालाशशिसूर्यद्युतीनि वज्रादीनि क्रमशोऽस्त्राणि विद्यात् ॥ ८९ ॥

रक्षादक्षं निजलोकेशदिवस्थं विघ्नान्निघ्नं पुरुषाकाररम्यम् ।

रक्ताकल्पं द्विभुजं स्वाङ्गशीर्षं प्राञ्जल्यस्त्रं खलु तत्तद्विधेयम् ॥ ९० ॥

तत्र गदा शक्तिश्च स्त्रियौ ।

कल्पानलसमप्रख्यं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।

दंष्ट्राकरालवदनैर्वमदग्निशिखाकुलम् ॥ ९१ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकायुधभीषणैः ।

भुजैरनन्तैः शस्त्राणि मुञ्चन्तं परिपन्थिषु ॥ ९२ ॥

व्यालयज्ञोपवीताढ्यं नागभूषणभीषणम् ।

रक्तगन्धाम्बरधरं शिरोमालान्त्रभूषितम् ॥ ९३ ॥

सिंहव्यालाहिगृध्रश्चव्याघ्रक्रोडद्विपाननैः ।

भूतैः परिवृतं नैकैरट्टहासविभीषणैः ॥ ९४ ॥

रक्षकं शिवभक्तानां सर्वोपद्रवनाशनम् ।

(हेदनं परदिव्यानां?) परसैन्यनिवारणम् ॥ ९५ ॥

रूपं पाशुपतास्त्रस्य प्रोक्तमेतत् समासतः ।

भिन्नाञ्जनगिरिप्रख्यं रक्ताकल्पसुभीषणम् ॥ ९६ ॥

दंष्ट्राकरालवदनं प्रदीप्तोर्ध्वशिरोरुहम् ।

शूलस्य मूलं वेतालं खड्गं दक्षिणतोऽन्यतः ॥ ९७ ॥

भुजैर्दमरुकं चैव कपालं घण्टयाष्टभिः ।

शूलमध्यं च दधत् व्याघ्रचर्माम्बरं विभुम् ॥ ९८ ॥

सद्यःकृतस्रवद्रक्तसद्गटाननमालिकाम् ।

लतवृश्चिकमालां च (घण्टा ? कण्ठा) दाजानुलङ्घिनीम् ॥ ९९ ॥

नृपुरे कटिसूत्रं च क्रोडबन्धं तथाङ्गदैः ।

कटकानि तथा निष्कं कुण्डलोत्तंसकानि च ॥ १०० ॥

उपवीतं च विभ्राणमाक्रान्तमणिपादुकम् ।

अग्रविन्यस्तसव्याङ्घ्रिं युद्धोपक्रमभीषणम् ॥ १०१ ॥

निखिलोपद्रवहरं स्मृतं + + + भञ्जनम् ।

अघोरास्त्रमिति ध्यायेद् यथोक्तपरिवारकम् ॥ १०२ ॥

इत्थं मूलासनाङ्गानि गर्भद्वारेशलोकपैः ।

अन्नाण्यावरणाख्यानि तेषां या मूर्तयः स्मृताः ॥ १०३ ॥

ताः सर्वा मुख्यशो ह्यत्र कथिताः पूजनादिषु ।

यथायथावत् स्मर्त्तव्या नित्यादिष्विह कर्मसु ॥ १०४ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे
आवरणादिमूर्तिपटलो द्वादशः ।

अथ त्रयोदशः पटलः ।

अथ सूर्यार्चनं वक्ष्ये शिवार्चाविघ्नशान्तिदम् ।

स्नात्वा सन्ध्यामुपास्याथ सन्तर्प्यार्चनमन्दिरम् ॥ १ ॥

गत्वा धौताङ्घ्रिराचम्य तद्वाःस्थावारुययाचयेत् ।

ओं दण्डिने नमः । ओं पिङ्गलाय नमः ।

अन्तः प्रविश्योपविश्य कृत्वा तु प्राणसंयमम् ॥ २ ॥

अस्त्रशुद्धकरोऽङ्गानि हृदयादीनि विन्यसेत् ।

आत्मानं भास्करं ध्यायन् यथोक्तार्धं तु पूरयेत् ॥ ३ ॥

साष्टाङ्गं विन्यसेत् तत्र मूलाङ्गान्यर्चयेदपि ।

तत्प्रोक्षितात्मस्थानार्चाद्रव्यचक्रकुशैस्ततः ॥ ४ ॥

ओं गं गणपतये नमः । ओं गुं गुरुभ्यो नमः ।

इति दक्षिणतो विघ्नं गुरुं चोत्तरतो यजेत् ।

तत्प्रभृतासनं पीठं तारवर्गादिपूर्वकम् ॥ ५ ॥

स्वनान्नाभ्यर्च्य तत्पादांश्चुरोऽथ हरीन् यजेत् ।

विमलं सारमाराध्यं सुखं परमपूर्वकम् ॥ ६ ॥

ताराबिन्द्वन्तवर्गादियुक्ताख्याभिर्नमोन्तकम् ।
 तथैव परमात्मानं सूर्यपद्मासनं तथा ॥ ७ ॥
 दीप्तां सूक्ष्मां जयां भद्रां विभूतिं विमलामपि ।
 अमोघां विशुतां चाष्टादिग्दलेषु क्रमाद् यजेत् ॥ ८ ॥
 सप्तमस्य द्वितीयं तु स्वैरर्दीर्घैर्विभेदितम् ।
 सविन्दुमादौ शक्तीनां नमश्चान्ते नियोजयेत् ॥ ९ ॥
 नवमीं कर्णिकायां च तारादिं सर्वतोमुखीम् ।
 इष्ट्वाथ प्रस्फुरन्मुद्रां दर्शयेदथ भास्करम् ॥ १० ॥
 वृत्तस्वतेजोबिम्बस्थं श्वेतपद्मोपरि स्थितम् ।
 प्रोक्तमूर्तिधरं देवं सञ्चिन्त्य स्थिरधीर्हृदा ॥ ११ ॥
 पुष्पैरञ्जलिमापूर्य खषोत्कं मूलसंयुतम् ।
 उच्चार्य द्वादशान्ताब्जात् तदावाहनमुद्रया ॥ १२ ॥
 आवाह्य स्थापयेत् पद्मे स्थापन्या सुसमाहितः ।
 सन्निधान्या सन्निधाप्य रुद्ध्वा तं निधुराख्यया ॥ १३ ॥
 धेन्वा प्ररोच्याथाध्यादीन् दत्त्वा चैव खषोत्किना ।
 साङ्गमूलेन चाराध्य पद्मं बिम्बं च दर्शयेत् ॥ १४ ॥
 स्नानवस्त्रोपवीतानि दत्त्वाङ्गानि यजेत् क्रमात् ।
 हृदयादीनि वहीशरक्षोवायुदलेष्वथ ॥ १५ ॥
 मध्ये नेत्रं ततश्चास्त्रं दिग्दलेषु स्वजातिभिः ।
 धेनुमुद्रां हृदादीनां दर्शयेद् गोवृषां दृशः ॥ १६ ॥
 त्रासनीमपि चास्त्रस्य पुनर्गन्धादिभिर्यजेत् ।
 प्रागादिदिक्षु सोमं च बुधं चैव बृहस्पतिम् ॥ १७ ॥
 पूजयेद् भार्गवं चामिरक्षोवाय्वीशदिग्गतान् ।
 अङ्गारकं शनैश्चरं राहुं केतुमिति ग्रहान् ॥ १८ ॥
 तारादिस्वाह्याद्यर्घैर्बिन्द्वन्तैरथ नामभिः ।
 वन्दन्या तु प्ररोच्यैतान् गन्धाद्यैरथ भास्करम् ॥ १९ ॥

निवेद्यान्तं तु सम्पूज्य ग्रहांश्चैव यथाक्रमम् ।
 पद्माख्यां बिम्बमुद्रां च दर्शयित्वाभिनन्दयेत् ॥ २० ॥
 यथाशक्ति जपित्वाथ दत्त्वार्घ्यं तु विसर्जयेत् ।
 संहृत्य मुद्रया मन्त्रान् साङ्गं देवं ग्रहानपि ॥ २१ ॥
 हृदये द्वादशान्ते वा सूर्यबिम्बे नियोजयेत् ।
 तन्निर्माल्यादिकं सर्वं तेजश्चण्डाय दापयेत् ॥ २२ ॥
 तारवर्गादिपूर्वेण स्वनाम्नैवेशगोचरे ।
 सर्वत्र नामभिः पूजा स्याच्चतुर्थ्या नमोन्तकैः ॥ २३ ॥
 सूर्यपूजाधिकारः ।

अथ त्यक्त्वा पवित्रं तदाचम्य द्वारमर्चयेत् ।
 सामान्यार्घ्येण पुष्पैश्च प्रोक्ष्य द्वारं शिवास्त्रतः ॥ २४ ॥

ओं गं गणपतये नमः । ओं सं सरस्वत्यै नमः ।
 (इति)दक्षिणवामस्थावूर्ध्वौदुम्बरके यजेत् ।

ओं गङ्गायै नमः । ओं यमुनायै नमः ।

ऊर्ध्वभागे यजेदेवं दक्षिणोत्तरभागयोः ॥ २५ ॥

ओं नं नन्दीशाय नमः । ओं मं महाकालाय नमः ।

इति दक्षिणवामस्थौ द्वाग्शाखाश्रितावधः ।

ज्वलदस्त्रात्मकं पुष्पं विघ्नसङ्घनिवर्हणम् ॥ २६ ॥

नाराचवच्छिवास्त्रेण पूजागेहोदरे क्षिपेत् ।

पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्मौमाञ्छोटिकाभिर्नभोगतान् ॥ २७ ॥

तर्जनीभिर्दिविष्ठांश्च विघ्नानुत्सारयेत् क्रमात् ।

ततस्तु मनसेन्द्रादीन् स्वाशासु स्थापयेत् (स्व ? सु)रान् ॥ २८ ॥

अत्र मञ्जर्याम् —

“इन्द्रादील्लोकपालांश्च सायुधान् रक्षणोद्यतान् ।

दशदिक्षु प्रतिष्ठाप्य मण्डलान्तर्विशेत् स्वयम् ॥”

इति ।

अन्तर्दक्षिणपादेन देहलीमस्पृशन् विशेत् ।

द्वागाश्रित्योत्तरां शाखां ततः प्रतिनिवृत्य तु ॥ २९ ॥

ज्वलदस्नात्मकं पुष्पं देहल्यां स्थापयेत् स्मरन् ।

विघ्नौघवारणं पश्चात्

ओं वां वास्तुपुरुषाय नमः । ओं वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे नमः ।

ब्रह्मस्थानेऽर्पयेदिति ॥ ३० ॥

प्रदक्षिणं यागगृहं वीक्ष्योपकरणान्यपि ।

ओं अं अनन्तासनाय नमः ।

इति स्वासनमभ्यर्च्य तत्रासीनोत्तरामुखः ॥ ३१ ॥

शोषणादिविधानं च भूतशुद्धिं समाचरेत् ।

पूर्वोक्तमार्गाद् गन्धार्द्रं शिवहस्तं विधाय तु ॥ ३२ ॥

कलयेल्लिङ्गमुद्रां च करकच्छविकां पुनः ।

अष्टात्रिंशत्कलान्यासं कृत्वात्मनि यथोदितम् ॥ ३३ ॥

आवाह्य हृदयाम्भोजे मूलमन्त्रं शिवात्मकम् ।

हृदयाद्यङ्गमन्त्रैस्तु षड्भिरात्मनि विन्यसेत् ॥ ३४ ॥

परमीकरणं कृत्वा शिवोऽहमिति भावयेत् ।

महामुद्रां समायोज्य प्ररोच्यात्मानमात्मना । ॥ ३५ ॥

तालत्रयच्छोटिकाभिर्वीक्षणैस्तर्जनीस्वनैः ।

विघ्नान् हत्वा विरिच्याशाः शोधयित्वावकुण्ठ्य तु ॥ ३६ ॥

आश्रयं शोधयित्वैवं मन्त्रं सिंहासने स्मरन् ।

हृत्पुण्डरीककुहरे ज्योतिर्लिङ्गे सदाशिवम् ॥ ३७ ॥

अङ्गुष्ठमात्रं मनसा सिद्धैर्द्रव्यैर्यथाक्रमम् ।

पूजयेन्निश्चलधिया चक्रवर्त्युपचारतः ॥ ३८ ॥

परमामृतविष्यन्दैर्नाभिकुण्डेऽनले शिवम् ।

सन्तर्पयेच्च भ्रूमध्ये प्रस्फुरद्भिन्दुगह्वरे ॥ ३९ ॥

ध्यात्वा शिवं परं सूक्ष्ममन्तर्यागं समाप्य तु ।

स्वैक्यं सदाशिवं ध्यात्वा रक्षार्थं चाश्रयस्य तु ॥ ४० ॥

यथा ब्रह्मशम्भुः —

“तालत्रयमथाम्नेण प्राकारं च समुद्रतम् ।
तद्बहिः खानितं श्वभ्रं तनुत्राणेन कल्पयेत् ॥”

इति ।

यथोपचारपटले विशेषार्घ्यमिहोदितम् ।
आपूर्याभ्यर्च्य ततोयैः स्वशिरः प्रोक्षयेत् कुशैः ॥ ४१ ॥
सगन्धमस्मना कृत्वा त्रिपुण्ड्राणि यथाविधि ।
विशुद्धात्माश्रयस्त्वेवं द्रव्यशुद्धिं समाचरेत् ॥ ४२ ॥
यथोक्तपूजाद्रव्याणि शक्तिदृष्ट्यावलोक्य तु ।
कुशमूलेन वा कूर्चादर्घ्यतोयैस्तु वर्मणा ॥ ४३ ॥
अभ्युक्ष्यालभ्य तु जपेदजातेन हृदाथवा ।
गन्धं ततस्तु वामेन शिरसा वाम्बराण्यपि ॥ ४४ ॥
कृष्णेन वाथ शिखया भूषणानि स्रजोऽपि च ।
पुंसा वा वर्मणा वापि नैवेद्यं च फलादिकम् ॥ ४५ ॥
ईशेन वाथ गायत्र्या मुक्तपुष्पादिकं तु यत् ।
कङ्कटेन दधिक्षीरं घृतं तु शिखया पुनः ॥ ४६ ॥
शर्करां हृदयेनाथ शिखया क्षौद्रमम्बु च ।
मूलेन शिष्टं चैतेषु क्षिपेदर्घ्याम्बुशीकरान् ॥ ४७ ॥
ललाटे तिलकं कृत्वा चन्दनेनैव मूलतः ।
मूलेनारोपयेत् पुष्पं प्रोक्ष्य चाथ स्वमस्तके ॥ ४८ ॥
द्रव्यशुद्धिः कृतैवं स्यान्मन्त्रशुद्धिरथोच्यते ।

यथा ब्रह्मशम्भुः —

“त्रिमात्रादिकमेणोर्ध्वं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः ।
यावन्निष्ठापदप्राप्तिस्तन्मन + + + नः ॥
मन्त्रशुद्धिर्भवेदेवं शुद्धतत्त्वसमाश्रयात् ॥”

इति ।

लिङ्गशुद्धिं ततः कुर्यादुपचारोदितक्रमात् ॥ ४९ ॥

गङ्गुडैर्वर्धनीकुम्भेष्वपूर्य सलिलं शुचिः ।

गर्भोगारमथास्त्रेण समुद्रात्प्र प्रसन्नधीः ॥ ५० ॥

सामान्यार्ध्यं पुरो दत्त्वा गायत्र्या शिवसंज्ञया ।

+ + + पुष्पैर्धूपं च + + + दत्त्वार्ध्यं च पुनस्तथा ॥ ५१ ॥

अपनीय तु निर्माल्यमावर्त्य ब्रह्मपञ्चकम् ।

पुष्पं सपादि तल्लिङ्गमस्तके विनिधाय तु ॥ ५२ ॥

स्थिरालङ्गे(चतुः ! तु च)दण्डाय दद्यादर्थ्यपुरःसरम् ।

चले जलादौ प्रक्षिप्य हृदयास्त्राम्बुसेकतः ॥ ५३ ॥

पिण्डिकं क्षालयेत् पूर्वं लिङ्गं च तदनन्तरम् ।

यथाह ब्रह्मशम्भुः —

“यत्नेन क्षालयेद्विङ्गं दक्षिणेनैव पाणिना ।

विशुद्धं सजलाधारं लिङ्गमस्त्राम्भसा पुरा ॥

सामान्यार्ध्यजलैः पश्चादभिषिञ्चेत् तु मन्त्रवत् ।”

इति ।

अशून्यमस्तकं लिङ्गमभिषेकार्चनादिषु ॥ ५४ ॥

गन्धपुष्पादिभिः कुर्यात् तादृि सान्निध्यकारकम् ।

इत्थमात्माश्रयद्रव्यमन्त्रलिङ्गविशुद्धयः ॥ ५५ ॥

कर्तव्याः पञ्च शैवानां नान्यथार्चनमिष्यते ।

ओं गं गणपतये नमः ।

अनेन वायुकोणे तु पूजयेद् गणनायकम् ॥ ५६ ॥

नैऋते वारुणं पद्मे प्रोक्तरूपं गजाननम् ।

ओं गुं गुरुभ्यो नमः ।

गुरूनपि तथैशाने प्रोक्तरूपादिकान् स्मरन् ॥ ५७ ॥

सामान्यार्ध्येण गन्धाद्यैर्निवेद्यान्तं तु शक्तिः ।

गुरूनित्यनेन गुरुं, परमगुरुं, परमेष्ठिगुरुं, पूज्यगुरुं, महापूज्यगुरुं
चेति पञ्चगुरूनिति यावत् । ओं हाम् आधारशक्तये नमः ।

पीठाधः पूजनीयेति शक्तिः कूर्मशिलागता ॥ ५८ ॥

मृणालबीजाङ्कुराभा

ओं हाम् अनन्तासनाय नमः

इति ब्रह्मशिलागता ।

धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं चार्चयेत् क्रमात् ॥ ५९ ॥

आग्नेयादीशपर्यन्तं पीठपादान् यथोदितान् ।

अधर्म्ममपि चाज्ञानमवैराग्यं दिशास्त्रपि ॥ ६० ॥

अनैश्वर्यं च पीठेषु प्रागादिषु यजेत् क्रमात् ।

तारह्मणीजसंयुक्तचतुर्थ्यन्तैस्तु नामभिः ॥ ६१ ॥

पूज्यान्यावरणानि स्युः सामान्येनाविशेषिते ।

ओं हाम् ।

अधस्तान्मेखलायास्तदितीष्टा ज्ञानसन्निधौ ॥ ६२ ॥

ऊर्ध्वच्छदं तथोर्ध्वस्थमैश्वर्याशागतं यजेत् ।

ओं हां पद्माय नमः । ओं हां कर्णिकायै नमः ।

इतीष्टा केसरेष्वष्टौ क्रमाद् वामादिशक्तयः ॥ ६३ ॥

पूज्याः सर्वा दिक्षु यथा सूपविष्टाः पुरोदिताः ।

ओं हां वामायै नमः । ओं हां मनोन्मन्यै नमः ।

नवमीं कर्णिकायां तु यजेच्छक्तिं मनोन्मनीम् ॥ ६४ ॥

ओं हां सूर्यमण्डलाय नमः । ओं हां सूर्यमण्डलाधिपतये ब्रह्मणे नमः ।

इति पद्मदलेष्वग्राद् व्याप्तिं संचिन्त्य पूजयेत् ।

ओं हां सोममण्डलाय नमः । ओं हां सोममण्डलाधिपतये विष्णवे नमः ।

इत्यादि केसराग्राद् वा व्याप्तिं ध्यात्वा यजेद् द्वयम् ॥ ६५ ॥

ओं हां वह्निमण्डलाय नमः । ओं हां वह्निमण्डलाधिपतये रुद्राय नमः ।

इति तत्कर्णिकामध्ये बिम्बबिम्बाधिपौ यजेत् ।

ओं हां व्योममण्डलाय नमः । ओं हां शिवासनाय नमः ।

इति प्रोक्तासनः पूज्यः

अत्र पौष्करे —

“इति स्थिरं स्थिरे लिङ्गे त्वासनं कल्पयेद् यदा ।

चललिङ्गे विशेषः स्यादासनं तच्चलाचलम् ॥

रूपनानन्तरं न्यस्य पीठे वा मण्डलेऽथवा ।
तत्र स्थिरासनं देवं चललिङ्गस्थमर्चयेत् ॥”

इति ।

पुष्पैरापूर्य चाञ्जलिम् ॥ ६६ ॥

ओं हां हां शिवमूर्तये नमः ।

अनेन मूर्तिलिङ्गे तु विन्यसेत् प्रोक्तलक्षणम् ।

ओं हां हां ज्ञानक्रियात्मिकायै ईश्वरमूर्तये नमः ।

ब्रह्मपञ्च(क)वक्त्रेषु चाष्टात्रिंशत् कलास्तथा ॥ ६७ ॥

विन्यसेत् स्वस्वमुद्राभिर्मूर्तीं न्यासोदितक्रमात् ।

पुनः पुष्पाञ्जलिं बद्ध्वा तस्यां देवं सदाशिवम् ॥ ६८ ॥

विद्यादेहं विभज्याथ तारहन्मूलहृद्युतम् ।

विद्यादेहाय नत्यन्तमुक्त्वा मूर्तीं तु विन्यसेत् ॥ ६९ ॥

पुष्पाञ्जलिमथोद्यम्य तारहृद्बीजसंयुतम् ।

सद्यमूलेन सन्धाय प्लुतान्तं मन्त्रमुच्चरन् ॥ ७० ॥

हृदयाब्जात् परं ज्योतिर्ध्यायेन्नादसमं शिवम् ।

नीत्वोर्ध्वं द्वादशान्ताब्जं शिवे संयोज्य निष्कले ॥ ७१ ॥

यथाह ब्रह्मशम्भुः—

“तावदुच्चारयेद् यावत् प्राप्तं निष्कलगोचरम् ।

तद्भावभावनाविष्टः प्रस्फुरद्रश्मिमण्डले ॥

बिन्दावभ्युदितं ध्यायन्नावाहनविधिं प्रति ।

तस्मादादाय विस्रब्धः स्थिरधीः पुरतः स्थिते ॥

न्यसेल्लक्षीकृते देहे ”

इति ।

एवमावाहयेच्छम्भुमावाहन्या यथोदितम् ।

तारहृद्ग्रामदेवैस्तु स्थापन्या स्थापयेद् विभुम् ॥ ७२ ॥

तारहृद्रक्रमुच्चार्य मुद्रया सन्निधापयेत् ।
 प्रणवं हृदयाघोरावुक्त्वा तं निष्ठुराख्यया ॥ ७३ ॥
 निरोधयेत् पुनः पुष्पैरापूर्योद्यम्य चान्जलिम् ।
 उक्त्वा नमःस्वधास्वाहाबौषड्द्वहृत्कवचानि तु ॥ ७४ ॥
 पुष्पाञ्जलिं समायोज्य हस्ताभ्यामवकुण्ठयेत् ।
 अङ्गानि च यथास्थानं स्वैर्मन्त्रैर्विन्यसेच्छिवे ॥ ७५ ॥
 आवाहनादिकानां तु ये येऽर्थाः सम्प्रदर्शिताः ।
 पटले तूपचाराख्ये तांस्तानत्र स्मरन् क्रमात् ॥ ७६ ॥
 स्वैरर्चिर्मिर्यथा वद्विर्भानुभिर्भानुमान् यथा ।
 समर्थो दुष्प्रघर्षश्च तद्वदङ्गैर्निजैः शिवः ॥ ७७ ॥
 हृदयं तस्य सद्भावः शिरः सर्वेशिता गुणाः ।
 वशित्वमपराधीनं यच्छिखा सोपरि स्थिता ॥ ७८ ॥
 स्वभावगुप्तमन्येषां समर्थमविशेषतः ।
 तेजः कवचसाधर्म्यात् तन्नाम्ना व्यपदिश्यते ॥ ७९ ॥
 योऽसावप्रसहस्तस्य प्रतापोऽवारितः परैः ।
 सोऽस्त्रमस्यति येनाशु दूरमन्तरदायकान् ॥ ८० ॥
 इत्यपि ब्रह्मशम्भुक्ते स्मरणेनाङ्गकल्पनाम् ।
 विधाय कुर्यान्मूलेनास्यामृतीकरणं तथा ॥ ८१ ॥
 प्रोक्तं प्ररोचनं चापि तन्महामुद्रया भवेत् ।
 विशेषार्थं च पाद्यं चाप्याचामं हृदयेन तु ॥ ८२ ॥
 नमोन्तं च स्वधान्तं च स्वाहान्तं च निवेदयेत् ।
 पूर्वं पाद्याचमनीये दत्त्वा पश्चादर्थमिति केचित् ।
 हृदैव बौषडन्तेन दत्त्वाद्यं पञ्चमूर्धसु ॥ ८३ ॥
 दूर्वापुष्पाक्षतत्रातं तच्छिरस्यधिरोपयेत् ।
 सद्गन्धपुष्पधूपैश्च सम्पूज्य तु सदाशिवम् ॥ ८४ ॥
 स्नानवेदिगतं देवं स्नापयेदुक्तमार्गतः ।
 निर्मृज्य वाससा पाद्यं पञ्चां दत्त्वाथ मस्तके ॥ ८५ ॥

द्रागर्ध्यं चाप्यथाचामं ब्रह्माण्याभरणानि च ।
 पुनरासनमूर्त्यादिक्रमेणाराधयेद् विभुम् ॥ ८६ ॥
 यथोक्तगन्धकल्केन समालिप्य सपीठकम् ।
 हेमपट्टैश्च हारैश्च मालाभिः कुसुमैर्दलैः ॥ ८७ ॥
 पुष्पप्रतिसराभिश्च तमिण्डाभिश्च भूषयेत् ।
 प्रणवं च तथा मूलं शिवाय नम इत्यपि ॥ ८८ ॥
 प्रतिद्रव्यं समुच्चार्य तत्तदारोपयेच्छिवे ।
 ब्रह्माणि पञ्चवक्त्रेषु ब्रह्माभिः क्रमशोऽर्चयेत् ॥ ८९ ॥
 ईशानादीनि वै शम्भोरङ्गेष्वङ्गानि तैर्यजेत् ।
 ततः शिवस्य वक्त्रेभ्यो ब्रह्माण्याहृत्य तान्यथ ॥ ९० ॥
 शिवाङ्गेभ्यस्तथाङ्गानि दीपाद् दीपानिवाज्ज्वलन् ।
 प्रोक्तरूपादिकं ध्यायन् दलमध्येषु विन्यसेत् ॥ ९१ ॥
 तत्कर्णिकायामीशानमैशान्यां पुरतो न्यसेत् ।
 यथादिशं दलेष्वन्यानासीनां ऋषिवसम्मुखम् ॥ ९२ ॥
 अग्नीशरक्षोवाय्वाशादलेषु हृदयादिकम् ।
 कवचान्तं तु विन्यस्य दिक्ष्वस्त्रं तु क्रमान्न्यसेत् ॥ ९३ ॥
 नेत्रं च पुरतः शम्भोस्तत्तन्मन्त्रेण विन्यसेत् ।
 ध्यात्वा यथोक्तरूपाणि पाद्याध्वैः पूजयेत् क्रमात् ॥ ९४ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“नावकुण्ठनमेतेषाममृतीकरणं न च ।
 स्तनपनं दीपकलसिश्च न पृथक् चाङ्गकल्पना ॥”

इति ।

यथोक्तधूपं दद्यात् तु घण्टां वामेन नादयन् ।
 देवाय पूर्वं तदनु ब्रह्माङ्गानां यथाक्रमम् ॥ ९५ ॥
 राक्षसाश्चासुरा यक्षाः पिशाचा ब्रह्मराक्षसाः ।
 नश्यन्ति घण्टाशब्देन धूपः सान्निध्यकारकः ॥ ९६ ॥

दीपं च दीपपात्रस्थं दर्शयित्वेशगोचरे ।

अवतार्य यथोक्तं तद् आम्यमारान्निकं तथा ॥ ९७ ॥

शिवलिङ्गे शिवो यस्माच्छिवे विश्वं प्रतिष्ठितम् ।

दीपनीराज्जनं तस्य जगच्छान्तिकरं स्मृतम् ॥ ९८ ॥

धूपे दीपे च नैवेद्ये बलौ होमे तथैव च ।

स्वाहाशब्दः प्रयोक्तव्यः शेषेषु स्यान्नमस्कृतिः ॥ ९९ ॥

उक्तानुक्तं च यत् सर्वं हृद्भोजेन विधीयते ।

निवेद्यं तु ततो दद्यादुपचारोदितं यथा ॥ १०० ॥

मूलेनैव तु देवस्य ब्रह्माङ्गानां तदर्धतः ।

पृथक् पात्रेषु वाङ्गानां नो चेदेकत्र वा स्मृतम् ॥ १०१ ॥

पानीयं च निवेद्यास्मै दद्याद्धस्तावसेचनम् ।

हस्तोद्वर्तनकं चैव दद्यादाचमनीयकम् ॥ १०२ ॥

ताम्बूलं मुखवासं चाप्यञ्जनं दर्पणं तथा ।

छत्रं च चामरे तद्वन्नृत्तं गीतं च वादितम् ॥ १०३ ॥

श्रीमत्पञ्चमहाशब्दैः स्तुतिः स्तौत्रैश्च मङ्गलैः ।

प्रकृत्या सहितं देव्या हृष्टं ध्यात्वा सदाशिवम् ॥ १०४ ॥

एवमादिभिरन्यैश्च तदा तमभिनन्दयेत् ।

अत्र “तदा तदभिनन्दयेत् । प्रकृत्या सहितं हृष्टमि”ति ब्रह्मशम्भुः ।

सौवर्णमुपवीतं च दूर्वाग्राण्यक्षतानि च ॥ १०५ ॥

पवित्रं नैत्यकं स्वेतन्मूलेनारोपयेच्छिवे ।

मूलं तत्स्वत्रयोपेतं स्वाहान्तमुच्चार्य पवित्रं लिङ्गमूर्धन्यारोपयेत् ।

यद्यूनमधिकं वाथ पूजायां स्खलितं च्युतम् ॥ १०६ ॥

तत् पादयेत् त्रायते च यस्मात् तस्मात् पवित्रकम् ।

प्रकृतेः परमीभावसम्पत्त्यर्थमनन्तरम् ॥ १०७ ॥

परमान्निकमुच्चार्य प्रासादं पूर्ववन्न्यसेत् ।

प्ररोच्य च यथान्यायं मुद्रया प्रागुपात्तया ॥ १०८ ॥

पुष्पैर्धूपैः पुनश्चेष्टा भ्राम्यमारात्रिकं भवेत् ।
शिवस्य दक्षिणे भागे पद्मे मूलाङ्गग(र्हि ! भिं)ताम् ॥ १०९ ॥
अक्षमालां तु गन्धाद्यैर्धूपान्तमभिपूजयेत् ।

अत्र

“अक्षाणामक्षकल्पानां संयमो यः प्रसूयते ।
दृष्टादृष्टफलं चेष्टमक्षसूत्रं तदुच्यते ॥
शतेनाष्टाधिकं चा(ष्ट ? क्ष)मक्षाणां मेरुणा सह ।
तदर्धेनाथ पादेन संस्कृतं सर्वशम्बरैः ॥”

इति ब्रह्मशम्भुः ।

मोक्षार्थं पञ्चविंशत्या धनार्थं त्रिंशता जपेत् ॥ ११० ॥
पुष्ट्यर्थं सप्तविंशत्या चतुःपञ्चाशता श्रियै ।
सर्वकामफलावाप्त्यै शतेनाष्टाधिकेन तु ॥ १११ ॥
कन्याक(र्ति ? लिप)तसूत्रेण त्रिवृता त्रिगुणेन तु ।
प्रोक्तं तु सम्मुखैरक्षैर्ग्रथितं मेरुमूर्धनि ॥ ११२ ॥
अक्षसूत्रं गुरोर्लब्धं तदभावे स्वनिर्मितम् ।
कुशबन्धैर्जपेन्मुक्त्यै रत्नैर्हैमैश्च भूतये ॥ ११३ ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि शुभैः शुद्धैर्मितैः समैः ।
विट्कूट्रौ पुत्रजीवैस्तु रुद्राक्षैः सर्व एव हि ॥ ११४ ॥
रुद्राक्षास्तु स्वयं रुद्रादुत्पन्नास्ते शिवात्मकाः ।
तैर्जपन् धारयंश्चैनान् रुद्रत्वमधिगच्छति ॥ ११५ ॥

अत्र

“पशवोऽपि हि रुद्राक्षैः संयुक्ताः शिवतां गताः ।”

इति शिवधर्मे ।

यावत् षोडशवक्रान्तमेकवक्रादिभेदतः ।
+ + + प्रभवन्तीह श्रेष्ठमध्याधमाश्च ते ॥ ११६ ॥
अष्टैकादशवक्रौ च षोडशास्या(न्ततो ? स्तथो)त्तमाः ।
रुद्राक्षस्त्वेकवदनो दुर्लभो ह्युत्तमोत्तमः ॥ ११७ ॥
त्रिचतुःपञ्चवक्राश्च कनिष्ठाः सुलभाश्च ते ।
शेषास्तु मध्यमाः प्रोक्ताः सर्वे चोक्तफलप्रदाः ॥ ११८ ॥

(सं)पूज्याक्षस्रजं पूर्वममृतीकृत्य वै जपेत् ।

मन्त्रमुच्चारयन्नक्षमेकैकं कर्षयेच्छनैः ॥ ११९ ॥

मोक्षायाङ्गुष्ठतर्जन्या भोगार्थी मध्यया युतम् ।

त्यक्त्वा कनिष्ठमन्याभिरङ्गुलीभिस्तु पुष्टये ॥ १२० ॥

त्रिविधस्तु जपः स स्यादुच्चोपांशू च मानसः ।

उच्चोऽधमफलस्तद्वन्मानसो मध्यसिद्धिदः ॥ १२१ ॥

उपांशुः श्रेष्ठफलदस्तस्मात् तेन जपेद् बुधः ।

अत्र “मानसस्यातियत्नसाध्यत्वाद् (माण्य ? बाह्य)स्याधमसिद्धिरूपत्वा-
दुपांशुः साधारणरूपत्वात् प्रयोज्यः । त्रिविधोऽपि न द्रुतो न विलम्बितो ना-
स्पृष्टाक्षरो न चान्यमनसा कर्तव्यः । नित्यनैमित्तिकेषु प्राङ्मुखोदङ्मुखेन
वा एकचित्तेन कार्यः” इति भोजः । अत्र —

“असंख्या(तु ? तं) जपं होमं गृह्णन्त्यसुरराक्षसाः ।

अमौनिना चाशुचिना ततः पैशाचको जपः ॥”

इति बृहत्कालोत्तरे ।

कल्पोक्तं तु जपं कृत्वा पूजामात्मानमेव च ॥ १२२ ॥

मन्त्रपूजादिसिद्ध्यर्थं शिवाय विनिवेदयेत् ।

अत्र भोजराजः — “ततो हन्मन्त्रसम्पुटमस्त्ररक्षितं कवचावगुण्ठितं कुशपुष्प-
चन्दनोन्मिश्रगन्धोदकचुलुकत्रये जपं पूजामात्मानं च त्रिभिः श्लोकैर्ममास्तु
फलसाधनमिति देवपादयोर्निवेदयेद् बुभुक्षुः” इति ।

मुमुक्षुश्चेदिदं कर्म मास्तु मे देव ! बन्धकम् ॥ १२३ ॥

इति । ओम् ।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवति मे येन त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थि(तम् ? ता) ॥ १२४ ॥

यत्किञ्चित् कुर्महे देव ! सदा सुकृतदुष्कृतम् ।

तन्मे शिवपदस्थस्य हुं क्षं क्षपय शङ्कर ! ॥ १२५ ॥

शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ।

शिवो यजति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव तु ॥ १२६ ॥

निवेद्यैवं सदात्मानं जपं पूजां च (भुः भ)किततः ।
 ततो नमस्कृत्य शिवं लब्धानुज्ञः शिवेन तु ॥ १२७ ॥
 यथोक्तमभिकार्यं तु सम्यक् कृत्वा समाप्य च ।
 अग्निष्टं तु शिवं लिङ्गे समायोज्यानलं तथा ॥ १२८ ॥
 अथैकावरणं देवे वक्त्राङ्गेषु नियोजयेत् ।
 देवं च लिङ्गमूर्तौ तु पुनर्ध्वपुरस्सरम् ॥ १२९ ॥
 अष्टपुष्पिन्द्रयाभ्यर्च्य सापेक्षं तं विसर्जयेत् ।
 योगपीठं च मूर्तिश्च शिवस्तस्याङ्गपञ्चकम् ॥ १३० ॥
 इत्यष्टौ पृथगष्टाभिर्मन्त्रैः सत्कृत्य पूजयेत् ।
 सापेक्षो निरपेक्षश्च विसर्गो द्विविधः स्मृतः ॥ १३१ ॥
 लिङ्गे परिगृहीते तु (स्थिरे) वाथ चलेऽपि वा ।
 सापेक्षं तु विसर्गः स्याच्छिवसान्निध्यकारणात् ॥ १३२ ॥
 निरपेक्षं तु सामान्यलिङ्गेषूद्भासनं स्मृतम् ।
 सामान्यान्यपि लिङ्गानि क्षणिकानि हि स्मृत्यम् ॥ १३३ ॥
 सैकतं पिष्टजं चाथ नावनीतं च गोमयम् ।
 फलजं लिखितं चान्नमिति सामान्यमष्टधा ॥ १३४ ॥
 एतानि सद्यो निर्माय तदैवावाह्यं शङ्करम् ।
 पूजयित्वा यथान्यायं निरपेक्षं विसर्जयेत् ॥ १३५ ॥
 नैषां जलाधिवासो वा स्थापने शयनं न च ।
 न तिर्थिनं च नक्षत्रं लक्षणोद्धारणं महि ॥ १३६ ॥
 सद्यः सपीठं सम्पूज्य विसृज्याप्सु क्षिपेच्च तत् ।
 अयमेव विधिस्तुल्यः स्थण्डिलेऽग्नौ च (तद्)र्पणे ॥ १३७ ॥
 कुम्भे जले च पूजायामात्मन्यपि सदा भवेत् ।
 विशुद्धगोमयाम्भोभिर्विलिप्ते चतुरश्रके ॥ १३८ ॥
 परिकल्प्यासनं चेष्टा तत्रावाह्यं यथाविधि ।
 पूजयेत् स्नपनं त्वत्र मानसं तु न बाह्यतः ॥ १३९ ॥

स्थण्डिले स्याद् विधिरयं शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
 तद्वत् सकललिङ्गेषु मार्त्तिकेषु पटादिषु ॥ १४० ॥
 चित्रेष्वपि पुरस्तेषां निरम्बुकुसु(मान्यः ? मं य)जेत् ।
 हेमरौप्यमयानां च रत्नजानां च पूजनम् ॥ १४१ ॥
 सकलानां प्रकुर्वीत सर्वं निष्कललिङ्गवत् ।
 ताम्रारकूटकांस्यानामम्लायैः शोधनं स्मृतम् ॥ १४२ ॥
 नैमित्तिकेषु स्नपनं कुर्यान्नित्यं न कारयेत् ।
 निरपेक्षविसर्गेषु प्रागाराध्याष्टपुष्पया ॥ १४३ ॥
 विसृज्य प्रणवं न्यस्य तस्मिंश्चण्डेशमर्चयेत् ।
 तमप्युद्वास्य मन्त्रांश्च हृत्पद्मे योजयेत् क्रमात् ॥ १४४ ॥

अयं विधिः सामान्यस्थण्डिल एव । परिगृहीतानां स्थिरचललिङ्गानां
 विसर्गः सापेक्ष एव । यथा ब्रह्मशम्भुः —

“निरपेक्षविसर्गस्तु लिङ्गे साधारणे मतः ।
 परिगृहीतलिङ्गे तु सापेक्षः प्राक् प्रदर्शितः ॥
 चललिङ्गेऽपि सापेक्षो निरपेक्षः स्थण्डिले सदा ।”

इति । अत्र पौष्करेऽपि—

“परिगृहीतलिङ्गस्य स्थिरस्याथ चलस्य वा ।
 निरपेक्षविसर्गे तु महान् दोषोऽभिधीयते ॥

आपिच

प्रशस्तकालनक्षत्रमुहूर्तादौ विधानतः ।
 लिङ्गे प्रतिष्ठा क्रियते मन्त्रमूर्तिविधानतः ॥
 तदाप्रभृति तल्लिङ्गे वसत्यात्मैव यच्छिवः ।
 तस्य प्रतिदिनार्चायामावाहनविसर्जने ॥
 तत्पूजाप्रतिपत्त्यर्थं सम्मते द्यौपचारिके ।
 विश्वक्रियानुसन्धानं दृष्टं देहं शरीरिणः ॥
 यथा जाग्रदवस्थायां तथास्यावाहनादिकम् ।
 निवृत्ताखिलबाह्यार्थक्रिया चिन्मात्रशेषिता ॥

यथा सुषुप्त्यवस्थायां स्थितिर्दृष्टा शरीरिणः ।
 तथा पूजावसाने तु सापेक्षोद्भासनं स्मृतम् ॥
 लिङ्गे स्थिरे चले वापि प्रतिष्ठितशिवस्य तु ।
 यथा हि तस्य कुण्डेऽग्नेः कालेकाले प्रबोधनम् ॥
 होमादौ क्रियते (चा)न्ते तत्र तस्यैव गोपनम् ।
 तथा स्यात् स्थापिते लिङ्गे विधिरावाहनादिकः ॥
 सापेक्षे तु विसर्गेऽर्घ्यं दत्त्वा शम्भोः पराङ्मुखम् ।
 मुद्रां परां दर्शयित्वा चोत्थाप्याङ्गानि चास्त्रतः ॥
 संहारिण्या शिवं ध्यात्वा मूर्तामूर्तौ(?)नियोजयेत् ।
 अष्टपुष्पिकयाभ्यर्च्य ध्यायेत् तं निष्कलात्मकम् ॥
 ततश्चाध्यादिपात्रेभ्यो मन्त्रान् संहतिमुद्रया ।
 सम्पूज्य निष्क्रम्य बहिर्गर्भागारं तु वर्मणा ॥
 विहाय तद्वहिर्गत्वा क्षालिताङ्घ्रिकरद्वयः ।
 आचम्याथ शिवं ध्यात्वा च्युतस्खलितशुद्धये ॥
 जपित्वा संहितामन्त्रान् दानं दद्याच्छिवावर्पणम् ।”

इति ।

इतीदमेकावरणं तु पूजनं सदाशिवस्योदितमिष्टसिद्धिदम् ।
 निरूप्य नानाविधशैवसंहिताः शिवङ्करं शैवजनप्रियङ्करम् ॥ १७२ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे
 एकावरणार्चनापटलत्रयोदशः ।

अथ चतुर्दशः पटलः ।

पूजां तु पञ्चावरणं प्रवक्ष्ये सपञ्चमन्त्रात्मतनोरभीष्टाम् ।
 पञ्चाननस्येह सदाशिवस्याप्येकाननस्योदिततुल्यकल्पाम् ॥ १ ॥
 पूर्वोदितं सर्वमिहापि तुल्यं ससूर्यपूजादि शिवासनं च ।
 स्याद् ब्रह्मणा मूर्तिगतोऽत्र कश्चित् प्रयोगमञ्जर्युदितो विशेषः ॥ २ ॥
 ईशानसंज्ञस्त्वह पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखास्तत्पुरुषादयः स्युः ।
 विद्येश्वराश्चात्र चतुर्मुखास्ते शरत्रिशूलाशनिचापहस्ताः ॥ ३ ॥

एषां च शेषं सकलं पुरोवद् वर्णाद्यमेकावरणोदितानाम् ।
 ज्ञेयं च पञ्चावरणस्थितानां मूर्त्याह्वये यत्पटले तदुक्तम् ॥ ४ ॥
 सपञ्चवक्त्रं कमले निषण्णं द्विपञ्चबाहुं स्फटिकावदातम् ।
 कर्पद्वन्द्वेन्दुकलं त्रिनेत्रं सदाशिवं षोडशवर्षकल्पम् ॥ ५ ॥
 भुजङ्गघण्टाभयदाङ्कुशान् स्वैः पाशं भुजैर्दक्षिणतो दधानम् ।
 तथा त्रिशूलं परशुं च खड्गं वज्रं च वह्निं क्रमशोऽपरैश्च ॥ ६ ॥
 नागोपवीतं सुविभूषिताङ्गं तरक्षुचर्माप्रतिमं वसानम् ।
 आनीलकण्ठं भसिताङ्गरागं निःशेषसौन्दर्यविशेषरम्यम् ॥ ७ ॥
 सञ्चिन्त्य तत्पङ्कजकर्णिकायां प्राग्वद् यजेदप्यथवैकवक्त्रम् ।
 दोर्भिश्चतुर्भिर्युतमिन्दुमौलिं ज्ञानक्रियेच्छात्रिदशं प्रसन्नम् ॥ ८ ॥
 धृताक्षमालात्रिशिखं क्रमात् तं यजेत् सखट्पाङ्गकपालखण्डम् ।
 विभूषितं शारदनीरदाभं कर्पदिनं पङ्कजसन्निविष्टम् ॥ ९ ॥
 सहाङ्गवक्त्रावरणं तदेकं विद्येश्वरैरावरणं द्वितीयम् ।
 उमादिभिश्चावरणं तृतीयमिन्द्रादिभिर्मातृगणैश्चतुर्थम् ॥ १० ॥
 वज्रादिभिः प्रागुदितैर्दशास्त्रैः स्यात् पञ्चमं त्वावरणं यथावत् ।
 हत्तारपूर्वैर्निजनामधेयैर्यजेच्चतुर्थ्या(च)नमोन्तमेतान् ॥ ११ ॥

तद्यथा —

पद्मबाह्वे तु विद्येशानुमादीन् द्वारबाह्वतः ।
 तद्बाह्वधीश्यां लोकेशानस्त्राण्येषां बहिर्यजेत् ॥ १२ ॥
 पूज्यो ह्यनन्तस्त्वथ सूक्ष्मनामा शिवोत्तमश्चापि तथैकनेत्रः ।
 प्राग्दक्षिणाप्येन्दुदलान्तपीठव्यवस्थिताब्जेषु पृथङ्निविष्टाः ॥ १३ ॥
 ततः शिखण्डी श्रीकण्ठश्चैकनेत्रोऽनलादिषु ।
 + + + + + विद्येशास्त इमे क्रमात् ॥ १४ ॥
 उमाचण्डौ च नन्दीशमहाकालौ गणेश्वरः ।
 भृङ्गी च वृषभस्कन्दाबुदग्द्वारादिषु स्थिताः ॥ १५ ॥
 एत एवोत्तराशादिचतुर्द्वारेषु युग्मशः ।
 पूज्याः पवित्रादिषु च स्थिरलिङ्गे जयावली ॥ १६ ॥

इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चाथ निर्ऋतिर्वरुणस्तथा ।

वायुर्वैश्रवणस्तद्वदीशानश्चापि लोकपाः ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वलोकाधिपो ब्रह्मा स्यादीशानेन्द्रमध्यगः ।

अधोलोकाधिपोऽनन्तो रक्षोवरुणमध्यगः ॥ १८ ॥

सुराणां तेजसां तद्वत् प्रेतानां रक्षसामपि ।

जलानां प्राणयक्षाणां ज्ञानानां लोकभोगिनाम् ॥ १९ ॥

क्रमादेतेऽधिपतयः सवाहपरिवारकाः ।

रुद्रपार्षदशब्दान्ताः पूज्यास्तत्पार्षदास्तथा ॥ २० ॥

धनदस्य समीपे तु सोमाय नक्षत्राधिपतय इत्यादिना सोमं च यजेत् ।
ओं हाम् इन्द्राय सुराधिपतये सायुधवाहनपरिवाराय रुद्रपार्षदाय नमः । त-
त्पार्षदेभ्यो नमः ।

इत्यादिमन्त्रैः पूर्वादिदशाशासु यजेदिमान् ।

लोकपालावृतावेव पूज्याः स्युर्देवताः पुनः ॥ २१ ॥

ओं हां वृषभाय नमः ।

“इन्द्रः प्राच्यां वृषस्थाने ज्योऽस्ति वृषभो यदि ।

स्थिरलिङ्गे वृषः पूज्यो न चले वृषभः स्मृतः ॥”

इति ललिते ।

पश्चाद् यमाद् वीरभद्रः पूज्यः प्रत्यङ्मुखो भवेत् ।

प्राङ्मुखश्चैव विघ्नेशस्तयोर्मध्येन मातरः ॥ २२ ॥

ओं लं वीरभद्राय नमः । ओं नं गणपतये नमः । ओं व्यों ब्रह्माण्यै
नमः । ओं मां माहेश्वर्यै नमः । ओं कां कौमार्यै नमः । ओं हां वैष्णव्यै
नमः । ओं हें वाराह्यै नमः । ओं हों इन्द्राण्यै नमः । ओं हूं महाकाल्यै
चामुण्डायै नमः । एतासामग्रतः पुनः सर्वमातृर्चयेत् । ओं मातृभ्यो नमः ।
ओं सर्वमातृगणेभ्यो नमः इति ।

निर्ऋतेः किञ्चिदाग्नेय्यां शास्तारं स्वाख्यया यजेत् ।
वायोस्तु निकटे किञ्चिदैशान्यां स्कन्दमर्चयेत् ॥ २३ ॥

कुबेरात् पश्चिमे किञ्चिद् यजेद् दुर्गां स्वमन्त्रतः ।
ईशानान्नैर्ऋते किञ्चिच्चण्डेशं मन्त्रतो यजेत् ॥ २४ ॥

पञ्चमस्य चतुर्थ्यान्त्यौ पञ्चमाग्निस्वरान्वितौ ।
प्रणवाद्यौ समुद्धृत्य चण्डशब्दं च वर्म च ॥ २५ ॥

अस्त्रं च सप्तवर्णः स्यान्मनुश्चण्डेश्वरस्य तु ।
ओं चण्डाय नमः । ओं चण्डेशाय नमः इति चार्चयेत् ।

वृषभाद्यास्तु चण्डान्त्या याः प्रोक्ता देवतास्त्विमाः ॥ २६ ॥
स्थिरलिङ्गे तु पूज्याः स्युर्न चले स्थण्डिलेऽपि च ।

यथा ललिते —

“चले वा स्थण्डिले नित्यविधौ न वृषभं यजेत् ।
न सप्तमातरस्तत्र चण्डः स्कन्दोऽपि नेष्यते ॥
नैमित्तिके पवित्रादौ चैषां पूजा विशिष्यते ॥”

इति ।

लोकेशावरणाद् बाह्ये वज्रादीनि स्वनामभिः ॥ २७ ॥

स्वरूपतश्च संस्मृत्य दशदिक्षु क्रमाद् यजेत् ।
यथोपपत्त्या गन्धाद्यैर्यजेदावरणस्थितान् ॥ २८ ॥

यदसम्पन्नमेतेषां मनसा तत् प्रकल्पयेत् ।
उत्सवो बलिदानं च स्थिरलिङ्गे विधीयते ॥ २९ ॥

न चलस्थण्डिलार्चासु द्वयमेतत् समाचरेत् ।
विभवे सति गीतं च नृत्यं वाद्यादिकं च यत् ॥ ३० ॥

सामान्येन प्रशस्तं हि स्थिरेष्वपि चलेषु वा ।
तथाभिकार्यं सर्वत्र प्रकुर्वीत विधानतः ॥ ३१ ॥

तद्वच्चैत्रपवित्राद्यं कुर्यान्नैमित्तिकं विधिम् ।

इत्थं सपञ्चावरणं शिवार्चनं प्रोक्तं यथावच्छिवतन्त्रचोदितम् ।

येनैहिकामुष्मिकभोगमुक्तयः प्राप्यास्त्वयत्नेन भवन्ति देहिनाम् ॥ ३२३ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतां सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे

पञ्चावरणपूजाविधिश्चतुर्दशः पटलः ॥

अथ पञ्चदशः पटलः ।

अथामिशरणं प्रविश्य प्रदक्षिणं परिक्रामन् मूलं जपन् होमद्रव्याणि निरीक्ष्य कुण्डयोन्यभिमुख उपविश्य उदङ्मुखोऽथ (कः स्व)दृष्ट्वा मूलं जपन् कुण्डं निरीक्ष्यास्त्रेण सन्ताड्य वर्मणाभ्युक्ष्यास्त्रेण स्वात्वास्त्रेणोद्धृत्य तेनावतीर्य हृदयेनाभिपूर्य तेन समीकृत्य सेचननिकुट्टनसम्मार्जनलेपनान्यस्त्रेण कृत्वा शान्त्यतीतां शान्तिं विद्यां प्रतिष्ठां निवृत्तिं च मध्यप्राग्दक्षि(णोऽणपश्चिमो)-त्तराशासु कुण्डान्ताः कलाः संस्पृत्याभ्यर्च्य तारादिस्वाख्याभिर्नमोन्तकमथ त्रिसूत्र्या कवचेन कुण्डं परिधाप्य ओं कलामयाय कुण्डाय नमः इति कलामयं परिकल्प्येष्ट्वाथ तत्त्वत्रयेण प्रागायता वा उदगायता वा समिदग्रेण तिस्रो रेखाः पुनरेका तिर्यगायतास्त्रमन्त्रेण कार्याः ।

तासां ब्रह्मविष्णुरुद्रशिवा देवताः । तथास्त्रेण त्रिभिः कुशैर्वज्रीकृत्य चतुष्पथं च कुण्डमध्ये ओं वागीश्वरीवागीश्वरासनाय नमः इति दर्भासनं विन्यस्य तत्र श्यामामृतुस्नातां नवयौवनालङ्कृतादेव्यरूपां दिव्याकरुपां रागिणीं वागीश्वरीं ध्यात्वा तारहृद्बीजनामभिर्नमोन्तमावाह्याभ्यर्च्य तदनुरूपरूपादिकं वागीश्वरं च तथाभ्यर्च्यानन्तरं सर्वात्मना जपितेन जनितमरणेर्मणिजं वा श्रोत्रियगृहाद् वामिमानीय ताम्रादिपात्रस्थितनिर्धूमेन्धनज्वालं ज्वलदङ्गारमात्रं क्रव्यादांशं परित्यज्य मूलेन निरीक्ष्यास्त्रेण संप्रोक्ष्य वर्मणावगुण्ठ्यास्त्रेण सं-रक्ष्य तमेवं भौतिकमग्निमुत्पतज्ज्योतिराकारं ध्यात्वा स्वयं शिवात्मा स्वल-लाटनेत्राद् ओं रौमित्यग्निबीजेन हृदयसम्पुटेन वैन्दवमग्निमादाय पूरकेण भौतिकेऽग्नौ संयोज्याथ स्वनामभिः कुण्डाग्निं रेचकेन पिङ्गलानाड्या समाकृ-ष्य दक्षिणनासिकया निःसार्य पात्रस्थेऽग्नौ योजयेत् ।

इत्यग्नित्रयमेकीकृत्य अग्निचैतन्याय नमः इति स्वर्बीजेनामौ चैतन्यं विन्यस्य तदेव बीजं दीर्घैः स्वरैः संयुतं हृदयादीनि षडङ्गानि भवन्ति । तैरग्निमभिमन्त्र्य वौषडन्तेन मूलेन धेन्वामृतीकृत्य हृदाभिपूज्य वर्मणा संरक्ष्य कराभ्यां गृहीत्वा वागीश्वरीवागीश्वरयोरस्त्रा(ग्नि?)रम्बरयोरीशानकोणे दिव्यशयने सङ्गतयोः क्षोभं विचिन्त्याग्निं पात्रस्थमाकण्ठादुद्धृत्य कुण्डस्योपरि त्रिः परिक्रम्य जानुभ्यां भूमौ स्थितः स्वाभिमुखमग्निं शिवबीजं ध्यात्वा शक्तेर्नाड्या मूलेन प्रक्षिप्य विकीर्णमस्त्रेणैकीकृत्य वस्त्रं परिधाप्य शौचमाचमनादि मनसा सङ्कल्प्येन्धनैः कवचेनाच्छाद्य धवित्रेण प्रज्वालय गर्भरक्षार्थं दर्भकङ्कणमस्त्रजपितं वागीश्वर्या दक्षिणहस्ते बद्ध्वाथ गर्भाधानाय सद्योजातेनाभ्यर्च्य तिलैराहुतिपञ्चकं हृदयेन हुत्वा तथा वामेन शिरसा च पुंसवनमथाघोरेण शिखया च सीमन्तोन्नयनं कृत्वा ओं हां पुर्यष्टकदेहाय नमः इति देहं सङ्कल्प्य जलबिन्दुं कुशाग्रेण जीवभूतं शिखया प्रक्षिप्य तिलाहुतिपञ्चकेन सद्यादिपञ्चवक्त्राणि बद्धेः सङ्कल्प्याङ्गकल्पनां च तथा विधाय वक्त्रनिष्कृतिं च तद्वत् सम्पाद्यान्तरमेव वागीश्वरीं प्रसूतां जातकुमारमग्निं च ध्यात्वा तत्पुरुषेणाभ्यर्च्य वर्मणा हुत्वा जातकर्म भवति ।

अथाध्वजलैरस्त्रेण कुण्डं परिषिच्य परिस्तरणदर्भाश्च दर्भकङ्कणं च त्यक्त्वा सूतकनिवृत्तये वागीश्वरीं देवं कुमारं चास्त्रजलैः सम्प्रोक्ष्य स्नानवसनविभूषणादिकं मनसैव सङ्कल्प्य दर्भैः कुण्डकण्ठे परिस्तीर्य लालापनोदनार्थं पञ्चपलाशसमिधः साम्राः प्रादेशसम्मिता घृताक्ताः शस्त्रेण जुहोति ।

ततस्त्रिशद्वर्भैः कृतया प्रागुत्तराग्रया वेण्या कुण्डं संवेष्ट्य यथोक्तपरिधीन् विन्यस्य तेषु परिधिविष्टरेषु प्राच्यां ब्रह्माणं दक्षिणे शङ्करं पश्चिमे विष्णुमुत्तरेऽनन्तमीश्वरं चावाह्य हृद्बीजपूर्वं स्वनामभिरभ्यर्च्य लोकपालांश्च स्वाशास्वस्त्राणि चेष्टा शिवाङ्गां श्रावयेत् । भो भो ब्रह्मेन्द्रविष्णवाद्या देवाः साक्षाः शिवाङ्गया शिवाग्निमेनं रक्षध्वं स्वावकाशेष्ववास्थिता इति रक्षां विधाय (सुकुसुवावस्त्रे) प्रक्षाल्यादाय दर्भचतुष्टयसहितौ हृदा (न ? निरी) क्षयास्त्रेण प्रताप्य शिरसा प्रक्षाल्य पुनः प्रताप्य संक्षाल्य सुवं विन्यस्य सुचमादाय दर्भेऽग्नेः सुचोऽग्रं ओं हां शिवतत्त्वायेति सम्मृज्य मध्यं दर्भमध्येन विधातत्त्वायेत्यथ मूलं दर्भमूलेनात्मतत्त्वायेति सम्मृज्य पुनर्मूलमध्याग्रेषु

ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मतत्त्वाद्यधिपतीन् संस्मृत्योल्लिख्य प्रक्षाल्य दक्षिणतः प्रस्तरदर्भेष्वधोमुखं विन्यस्य तद्वत् सुवमपि संस्कृत्य सुचः समीपेऽधोमुखं दर्भेषु विन्यस्य सुचि शक्तिं सुवे शिवं च स्वनाम्नाभ्यर्च्य च त्रिसूत्र्यावेष्टितग्रीवौ कर्मयोग्यौ भवतः ।

पुनः कुण्डाद् दक्षिणतो ब्रह्माणं कूर्चेष्विष्ट्वा कौबेर्यां दर्भासनं दत्त्वा ग्रन्थं प्रणीतापात्रं सपवित्रमद्भिरापर्य्य सकुशाभ्यां पाणिभ्यामानासमुद्धृत्य ब्रह्मणानुज्ञातः प्रणीतासने ओं हां वरुणोऽसीति विन्यस्य ओं हां यज्ञारिसूदनाय विष्णवे नमः इति प्रणीतासु विष्णुमभ्यर्च्यथाज्यं यथोक्तमुक्तपात्रे गालितं हृदा निरीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्ष्योत्तरेऽङ्गारेऽधिश्रित्य कुण्डोर्ध्ववह्निकोणे प्रताप्य स्वयं ब्रह्ममूर्तिः ओं हां ब्रह्मणे स्वाहेति कुशाग्रेणाज्यविन्दुं हुत्वाथैशान्यां कुण्डोपरि कुशैः प्रताप्य स्वयं विष्णुमूर्तिः ओं हां विष्णुं ? णवे)स्वाहेति कुशाग्रेणाज्यविन्दुं हुत्वाज्यं योनौ कुशेषु विन्यस्य हृदयेनाभिमन्त्र्य दर्भद्वयं प्रज्वाल्य कवचेनाज्येऽभिद्योत्य त्रिष्कृत्वाथान्नौ दर्भोत्सुकं प्रास्य हस्तौ प्रक्षाल्य तौ शुक्लकृष्णौ पक्षौ संस्मृत्य साङ्गुष्ठानामिकाभ्यां पवित्राग्रे मूले च गृहीत्वात्माभिमुखं कवचेन त्रिरुत्प्लाव्य पवित्रं प्रक्षाल्य पुनरग्रेरभिमुखमुत्प्लाव्य प्रक्षाल्य पुनर्हृदयेनोभयत उत्प्लाव्य पवित्रमुन्मुच्य प्रक्षाल्याग्नौ प्रास्येदिति पवित्रीकरणम् ।

अथ कुशानुद्योत्याज्ये नीराज्याग्नौ क्षिपेत् । अथ दक्षिणोत्तरयोराज्यभागयोः पूर्वापरपक्षाविडापिङ्गलानाडियुक्तौ मध्ये च पर्वणी सुषुम्नां च सङ्कल्प्य ओं हां अग्नये स्वाहा ओं हां सोमाय स्वाहा इति दक्षिणोत्तरयोराज्यभागयोराज्यं सुवेणादायाग्नेर्दक्षिणवामनेत्रयोर्हुत्वानन्तरं ओं हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति ललाटनेत्रे जुहोति । अथाज्यं गृहीत्वा ओं हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति अग्नेर्मुखे जुहुयादित्यग्नेर्वक्त्रोद्धाटनं विधाय धेन्वामृतीकृत्यास्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठयेदित्याज्यसंस्कारः ।

अयं विधिः पूर्वपक्षे । विशेषश्चापरपक्षे अग्नये सूर्यायाग्निःसूर्याभ्यामिति नेत्रेषु जुहोति शेषं पूर्ववत् । अथ संस्कृत्याज्यविन्दुं घृतक्षीरमध्वादिषु प्रक्षिप्य हृदयेनाभिमन्त्रयेत् । तानि च संस्कृतानि भवन्ति । अथ शिवार्गिं सदाशिववत् पञ्चवक्त्रं जटामकुटं सप्तजिह्वं (प्री ! प्र)तिमुखं त्रिनेत्रमभयवरदशक्तिस्वस्तिकचतुर्बाहुं सुगन्धमाल्याम्बरधरं दिव्याभरणं प्रसन्नाननं ध्यायेत् । चतु-

ततो वागीश्वरीवागीश्वरौ स्वनाम्नाराध्य सकृत्सकृदाज्यं हुत्वा तौ द्वादशान्ते विसर्जयेत् । अथैवं पञ्चसंस्कारसंस्कृतादग्नेः किञ्चिदुद्धृत्य बल्यादौ रक्षयेच्चरुपुरोडाशधूपाद्यर्थम् । यथोक्तं संहितायां —

“पाक्याश्चरुपुरोडाशाः पञ्चसंस्कारसंस्कृते ।

अनावाहितदेवेऽनौ होमस्त्वावाहिते भवेत् ॥”

इति ।

अथ मूलेन वौषडन्तेन पृथगाज्याहुतित्रयेणैकादशसंस्कारान् कुर्यात् । तद्यथा — उपनिष्क्रामणान्नप्राशनचौलोपयनोपाकर्मव्रतसंग्रहणव्रतोत्सर्जनगोदानसमावर्तनविवाहाधानानि मूलेनैव कुर्यात् । अत्र मञ्जर्यामुक्तं — “शि-
वाम्रेः संस्कारेषु प्रकारभेदो दृश्यते गर्भाधानपुरस्सराश्च सकलाः कुर्यात् क्रियाः षोडश” इत्यादिभिः श्लोकैः यदुक्तं दशाक्षरव्योमव्यापिना गर्भाधानपुंसवनसी-
मन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणं पृथगष्टाष्टाहुतीभिश्चैकैकशः क्रमाद्धुत्वा निष्पाद्य शिवगायत्र्योपनिष्क्रामणमीशानेनान्नप्राशनं तत्पुरुषेण चौलं पुनरीशानेनोपन-
यनमथ सद्यादिब्रह्मभिरुपाकर्मव्रतसङ्ग्रहणव्रतोत्सर्गगोदानसमावर्तनादि क्रमेण कृत्वा दशाक्षरव्योमव्यापिना विवाहं प्रासादेनाग्न्याधानमित्युक्तयोर्मार्गयोर-
न्यतमेन संस्कृतेनैवाग्निना नित्यनैमित्तिकक्रियाकाण्डकाम्यानि शैवानां सि-
ध्यन्ति नान्यथा । अथ पूर्णा जुहोति । ततः सुचमाज्येन सुवेणापूर्य सुगु-
परि सुवमधोमुखं निधाय सुगमे पुष्पं च तद्दण्डौ संहतौ शङ्खमुद्रया पा-
णिभ्यां गृहीत्वोत्थाय श्लिष्टसमपादस्तिष्ठन् सुगग्रदत्तदृष्टिर्हृदययुक्तमूलं वौषड-
न्तमुच्चार्याज्यधारां शिवाग्नेर्लब्धानुज्ञः शिवासनादिक्रमेण साङ्गमूर्त्यावरणम-
ग्नेर्हृदयकमले शिवमावाह्य प्ररोचनान्तं कृत्वाव्यादिभिर्दीपान्तैर्यथोपपत्त्यभ्यर्च्य शिवयोर्नाडीसन्धानं विदध्यात् । यथा पौष्करे —

“बहिस्थशिवनासाग्रनिर्गतज्योतिषा सह ।

सन्धानं पिङ्गलानाड्या कृत्वा कर्मसमापनात् ॥

हूयमानं हविर्यत् तत् सुषाविष्य(न्देन्द्रि) चिन्तयेत् ।

द्वयोः सुषुम्नामार्गेण शिवस्याहादकारणम् ॥”

इति ।

अथाज्यतण्डुलव्रीहिसमिच्चरुभिर्यथोद्दिष्टैर्हविर्भिर्मूलेन जुहुयात् । तत्र शिवाद् दशांशं मूर्तीनामङ्गानां च नैमित्तिकेष्वपि तत्र तत्र विहितैर्हविर्भिर्यथोद्दिष्टं जुहोति । अत्र ब्रह्मशम्भुः—

“अमेर्वर्णाश्च गन्धाश्च शिखाः शब्दाश्च लक्षयेत् ।
सिद्ध्यसिद्धचोरभिव्यक्तौ भावितेनान्तरात्मना ॥
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः श्रुतिप्रच्छादितध्वनिः ।
नित्यमूर्ध्वगमोच्छिष्टान् संपिण्डितशिखः शुभः ॥
अप्रदीप्ते न होतव्यं सधूमे नाप्यनिन्धने ।
प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ होतव्यं कर्मसेद्धये ॥”

इति । तथाच ललिते —

“शुक्लपीतारुणशिखो विद्युद्वर्णोऽथ पिङ्गलः ।
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः कर्मसिद्धिकरोऽनलः ॥
कृष्णधूसरधूम्राभः कर्बुरो वाप्रदक्षिणः ।
रूक्षो वा विष्फुलिङ्गाढ्यः प्रोक्तोऽग्निरशुभावहः ॥
तच्छान्त्यै संहितामन्त्रैः शिवव्याहृतिभिस्तथा ।
तिलाज्याभ्यां तथा हुत्वा शुभमेव फलं भवेत् ॥”

इति । तत्तन्मुद्राभिस्तत्तज्जुहुयात् । नित्याद् द्विगुणं पर्वशु पूजाजपहोमान् कुर्यात् । चरोरवदानत्रयं क्रमेण पृथक्पृथगभेधार्यं स्तुत्वा मूलेन जुहुयात् । सकृन्मूर्त्यङ्गा(ना)नि हस्तेनाथ प्रोक्षणीजलैरस्त्रेण परिषिच्य ताम्बूलं च निवेद्य प्रदक्षिणनमस्कारस्तुतिभिः प्रसाद्य भस्म चालभ्य क्षमस्वेत्युक्त्वा नाडीसन्धानं विसृज्य प्रणवहृदयबीजादिभिर्व्याहृतोभिर्हुत्वा मूर्त्यङ्गान्यस्त्रेणोद्धृत्यामिस्थे शिवे यथास्थानं संयोज्य देवं चामोर्हृदये सन्निरुध्य नैत्यिकमग्निं तस्मिन्नेव कुण्डे रक्षयेत् ।

अथवा प्रतिदिनमग्निं शिवं च सम्पूज्य संहारमुद्रया पूरकेण वह्नेर्मन्त्रान् संहृत्य शिवमग्निमपि क्रमेण द्वादशान्तमानीय स्वहृदि सन्नियोजयेत् ।

शिवमग्निं स्वविन्दुस्थाने हृदये वोद्भास्य प्रत्यहमग्निं जनयित्वा जुहोति । मार्गगमनादौ कुण्डाभावे गोमयेन गोचर्ममात्रं चतुरश्रमण्डलमुपलिप्य तत्र विशुद्धाग्निः सिकताभिः स्थण्डिलं कृत्वा निरीक्षणादिभिः संस्कृत्यामिमाधाय

होतव्यम् । अत्र सशिवाम्नेः प्रमादाद् निर्वाणे सति त्रिरात्रमुपोषितोऽघोरं ज-
पेत् । आज्यतिलैर्यथाशक्ति जुहुयात् । यद्यपि उद्वासितशिवशिवामिनिर्वा-
णेऽहोरात्रमुपोष्याघोरसहस्रजपहोमौ कृत्वा पुनराधाय जुहुयात् । नित्यकर्मणि
सुवसुवकर्मणि परिधिवेणीनां प्रक्षालनेन शुद्धिः, नित्य(कर्महो)मोपयोगित्वं
च निर्दिष्टम् । सशिवेऽग्नौ भस्मादिकं निर्माल्यं न भवति । तदेवोद्वासितशिवे
निर्गाल्यमस्पृश्यं स्यात् । एवं शिवमग्निं च निरुध्य परिधिविष्टरान् देवांश्चो-
द्वास्य कुण्डेऽस्य पुरतो वोत्तरे गन्धादिभिरिष्ट्वा चरुशेषेण बलिं दद्यात् ।

तत्र प्रागादिचतुर्दिक्षु रुद्रमातृगणयक्षेभ्योऽथैशानवायव्यान्तेषु ग्रहा-
सुरराक्षसनागेभ्यस्तन्मध्ये नक्षत्रेभ्यः पुनर्नक्षत्रबाह्यतो रुद्रादीनामन्तरीशा-
नादिकोणेषु राशिभ्यो विश्वदेवगणेभ्यः क्षेत्रपालाय दुर्गायै च तारादिस्वना-
मभिः स्वाहान्तैर्बलिं दत्त्वा द्वितीयमण्डलके पूर्वादिदशदिक्षु यथाक्रममिन्द्रादि-
भ्यस्तारादिस्वनामभिर्नमोन्तैर्बलिं दत्त्वा मण्डलबाह्ये सर्वतो विकिरन् ओं
वायसादिभ्यः स्वाहेति दद्यात् । अथ बलिमन्त्रान् संहृत्य प्राङ्गणे कृतमण्डले

ये रुद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।

सौम्याश्चैव तु ये केचित् सौम्यस्थाननिवासिनः ॥ ४ ॥

मातरो रौद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ।

सर्वे सुप्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥ ५ ॥

सिद्धिं यच्छन्तु मे क्षिप्रं भयेभ्यः पान्तु मां सदा ।

ओं छं छः हुं फट् । अनेन बलिं दत्त्वा हस्तपादौ प्रक्षाल्याचम्य
प्रातिलोम्येन लिङ्गान्तिकेऽर्घ्यं दत्त्वा भोगाङ्गानि प्राग्वत् संहृत्य लिङ्गे नियोज्य
भगवन्तमुक्तप्रकारेण विसर्जयेत् ।

अथ शिवाश्रमी गृहस्थश्चेद् भोक्तुमिच्छन् चुलिहोमगृहबलिवैश्वदेव-
दशबलीन् कृत्वा भुञ्जीत । तत्र पाकामान्नं पात्रे प्रक्षिप्य चुल्ल्यामग्निं प्रज्वालय
गोमयेनोपलिप्यार्घ्यजलैः परिषिच्य गन्धपुष्पाक्षतैरग्निं च वक्ष्यमाणदेवताश्चा-
राध्यान्नमाज्यमिश्रं जुहोति । अग्नये सोमाय सवित्रे बृहस्पतये प्रजापतये विश्वे-
भ्यो देवेभ्यः सर्वेभ्यो देवेभ्यः अग्नये स्विष्टकृते च प्रणवादिनमोन्तैः स-
म्पूज्य स्वाहान्तैर्हुत्वार्यजलैः परिषिच्य गृहदेवताभ्यो बलिमुपाहरेत् । तत्र
चुल्ल्यां दक्षिणवामयोः धर्मायाधर्माय सन्धाभाण्डे संसारपरिवर्तनाय उदक-

भाण्डे जलामृताय वरुणाय गृहस्य प्रधानद्वारे विघ्नराजाय द्वारश्रियै च
पेषण्यां सुभगे उल्लखले ओं रौद्रे कोट्टहरिके मुसले बलभद्रप्रियाय महा-
प्रहरणाय मार्जन्यां मृत्यवे देवोचिते शयनीयशिरसि कामाय कुसुमायुधाय
मध्यस्तम्भस्याधः स्कन्दाय गृहाधिपतये तदनन्तरं वास्तुमध्ये वृत्तमण्डलके
वैश्वदेवबलिमुपाहरेत् । तत्र मध्ये ब्रह्मणे वसुभ्यः रुद्रेभ्यः आदित्येभ्यः सा-
ध्येभ्यो नक्षत्रेभ्यः पृथिव्यै पृथिवीचरेभ्यो भूतेभ्यः अन्तरिक्षाय अन्तरि-
क्षचरेभ्यो भूतेभ्यः अधश्चरेभ्यः दिवे दिविचरेभ्यो भूतेभ्यः दिग्भ्यः दि-
क्चरेभ्यो भूतेभ्य इति प्रदक्षिणवृत्त्या बलिं दत्त्वा विष्णवे सर्वभूतपतये ध्या-
नगम्याय इति मण्डलमध्ये एतेषां प्रणवादिनमोन्तैः स्वनामभिर्बलिं विक्षि-
प्याथ प्राचीनावीनी मण्डलाद् बहिर्दक्षिणतोऽपसव्येन सोमः पितृमान् यमो-
ऽङ्गिरस्वानामिकव्यवाहनादयो ये पितरः तान् पितॄन् स्वधा नमः अग्निपि-
तृभ्यः स्वधा नमः सर्वपितृभ्यः स्वधा नमः इति यथाक्रमं प्रक्षिप्य बहिर्नि-
र्गत्य दिग्देवताभ्यो बलिमुपाहरेत् ।

तत्र ओं इन्द्राय प्रतिगृह्ण नमः ओं ऐन्द्रचै दिशे प्रतिगृह्ण नमः अथा-
ग्नय इत्यादिभिश्चैवमीशानन्तमष्टलोकपालानादिशान्तं प्रक्षिप्य ओं सुपर्णा-
सौपर्ण्यै चेत्यूर्ध्वायां ब्रह्मदिशि नागाय नागमात्र इत्यनन्तदिश्यधः इति ग-
न्धादिभिरभ्यर्च्य ओं वायसाः किमयः प्रेताः पतिताः श्वानः श्वपचाः समय-
भेदकाः ये चान्ये ते इमं बलिं प्रतिगृह्णन्तु नमः इति गन्धपुष्पान्वितं प्रक्षिप्य
शेषं भूमौ विनिक्षिप्य हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्यातिथीनभ्यागतानाश्रितान्
बालान् वृद्धान् गन्धान् दीनाननाथानन्यानप्यर्थिनोऽन्नेन पानेन च स्वशक्त्या
तोषयित्वा भोजनोक्तविधानेन भुञ्जीत ।

इत्युक्तं यजनमिदं शिवा(यथाग्ने ? गमाग्नौ)

शैवानां प्रियमिति शैवतन्त्रसिद्धम् ।

येन स्यात् प्रतिदिवसं सदेशपूजा

सम्पूर्णा दिशति फलं जगद्धितं च ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे

क्रियापादेऽभिचार्यपटलः पञ्चदशः ॥

अथ षोडशः पटलः ।

अथ प्रक्षीणदोषाणां शिवानुध्यानयोगतः ।

शक्तिपातो भवेत् तेन धीप्रसादस्ततोऽपि च ॥ १ ॥

गुरुपसदनं तस्माच्छिवदीक्षाभिलभ्यते ।

मलं कर्म च माया च पाशबन्धस्य हेतवः ॥ २ ॥

तद्विशेषाच्छिवज्ञानमनुग्राह्यस्य जायते ।

सा दीक्षा दी क्षयेत्यस्माद्धातोः पाशक्षयो यतः ॥ ३ ॥

दीक्षेति कथ्यते जन्तोरनुग्राह्यस्य वै पशोः ।

तत्रानुग्राह्यस्त्रिविधो विज्ञानकलः प्रलयाकलः सकलश्चेति ।

मलैकबन्धः प्रथमो द्वितीयो मलकर्मवान् ॥ ४ ॥

कर्ममायामलैर्युक्तस्तृतीयः सकलः स्मृतः ।

विज्ञानं विपरीतात्मज्ञानमज्ञानमेव तत् ॥ ५ ॥

कलबन्धनधात्वर्थाद् विज्ञानकल उच्यते ।

अज्ञानात् (क)र्मबद्धोऽसौ प्रलयाकल इत्यतः ॥ ६ ॥

प्रकर्षात् तु लयं प्राप्तं ज्ञानमस्येति कथ्यते ।

त्रिविधैस्तु तथा बन्धैर्मायाकर्ममलाद्बुधैः ॥ ७ ॥

वर्तमानः सहेत्यस्मात् सकलो यः स कथ्यते ।

एते शिवस्यानुग्राह्याः श्रेष्ठमध्याधमास्त्रयः ॥ ८ ॥

(अनुग्रहो)ऽपि द्विविधः शिवस्य करुणानिधेः ।

साधारश्च निराधारोऽनुग्राह्यानुगुणः पृथक् ॥ ९ ॥

अत्र निराधारसाधारानुग्रहानुगुणा दीक्षा । दीक्षा च निरधिकरणा सा-
धिकरणा चेति द्विप्रकारा । यथाह भोजराजः — “आचार्यनिरपेक्षेण भगवता
स्वशक्त्यानुग्रहरूपया तीव्रतीव्रतरशक्तिपातेन विज्ञानकलप्रलयाकलानां या
क्रियते सा दीक्षा निरधिकरणा । यत्राचार्यमूर्तिस्थेन भगवता मन्दमन्दतरती-
व्रशक्तिपातेन क्रियमाणा सकलानां (सा) साधिकरणा” (इति) । सा च स-
बीजा निर्बीजा चेत्यधिकारवशात् ।

सबीजा समयोपेता समयाचारसंयुता ।

पाशच्छेदादिसंयुक्ता विदुषामेव सा स्मृता ॥ १० ॥

निर्बीजा तु पुनर्दीक्षा राज्ञां बालाबलास्वपि ।

अतिवृद्धातिरुग्णानां बालिशानां च शस्यते ॥ ११ ॥

साधकाचार्ययोर्नित्यक्रियानैमित्तिकादिषु ।

स्वपरार्थाधिकारित्वात् सर्वाजैव विधीयते ॥ १२ ॥

सा च क्रियावती पूर्वा ज्ञानवत्यपरा स्मृता ।

या मण्डपरजःकुण्डपाशच्छेदाध्वशोधनैः ॥ १३ ॥

द्रव्यहोमादिसंयुक्ता दीक्षा सोक्ता क्रियावती ।

विना मण्डपकुण्डाद्यैर्मनोव्यापारमात्रतः ॥ १४ ॥

सम्यग्ज्ञानावबोधान्ता दीक्षा ज्ञानवती स्मृता ।

सा च चतुष्पदेदा चाक्षुषी स्पर्शदीक्षा वाचिकी मानसी चेति
तद् यथा --

ध्यायञ् शिवात्मा समवेक्ष्य शिष्यं तस्मिन्नियम्याध्वगणं दृशैव ।

छित्त्वा तु पाशांश्च शिवत्वमास्मिन् सम्पादयेद् या खलु चाक्षुषी स्यात् ॥ १५ ॥

रुद्रः स्वयं मन्त्रतनुः स्वहस्ते पद्मे समूर्त्यङ्गयुते समूले ।

स्मृत्वा शिवं यत् स्पृशतीह तेन सा स्पर्शदीक्षा च्युतपाशबन्धा ॥ १६ ॥

विश्वाध्वसंयुक्तसदाशिवात्मा मन्त्रान् स्ववक्त्रे विनिधाय सर्वान् ।

छित्त्वास्य पाशान् वचस क्रमेण संदीक्षयेद् यत्र तु वाचिकी स्यात् ॥ १७ ॥

स्वयं शिवात्मा निखिलाध युक्तः स्वहृत्सरोजे सकलं समन्त्रम् ।

स्मरञ् शिवं मानसदीक्षयामुं नियोजयेज्ज्ञानवशाच्छिवत्वे ॥ १८ ॥

क्रियावत्यापि समयदीक्षा निर्वाणदीक्षा साधकदीक्षा चेति बहु-
विधा । यत्र मलशोधनमात्रेण क्रियया संस्कृत्य शिष्यं समये प्रवेश्य रुद्रात्मतां
चापादयेत् सा समयदीक्षा ।

षड् यत्र शुध्यन्त्यध्वानः क्रियावाप्तिश्च पुष्कला ॥ १९ ॥

तत् तु पाशशिखाच्छेदो योगः शिवपदे तथा ।

निर्वाणदीक्षा सा प्रोक्ता विशेषेणाधिकारिणाम् ॥ २० ॥

यस्यां तु पाशविश्लेषान्नित्यदिषु शोध्यते ।

अणिमादिगुणावाप्तिर्योगश्चैवैश्वरे पदे ॥ २१ ॥

अधिकारश्च तत्रादौ दीक्षा सा साधकाद्वया ।

पूर्वोदितैरपि गुणैः सह दीक्षया स्यान्निर्वाणया भवसमुद्रतरीः स्वसंवित् ।

कार्यक्षयादितनुधर्मविपर्ययेण सर्वज्ञतादिगुणलब्धवरं शिवत्वम् ॥ २२ ॥

शिष्यैर्गुरुः परिवृतो विधिनावगाह्य साध्यक्रियाः परिसमाप्य समाहितात्मा ।

दीक्षालयं तु नवसप्तकपञ्चहस्ते शक्या कृतं तु चतुरश्रमतीव रम्यम् ॥ २३ ॥

अश्वत्थतोरणचतुष्टयमूलसंस्थैर्द्वारेषु पूर्णकलशैश्च चतुर्दिशासु ।

लाजाक्षतैरपि फलैः कुसुमैर्विचित्रैः संशोभितं च विविधाङ्कुरपालिकाभिः ॥

चन्द्रांशुपाण्डुरविशुद्धवितानमध्यं पर्यन्तलम्बितदुकूलविशेषशोभम् ।

मुक्तावलीकुसुमदामकृतावलम्बं बाह्ये च शुक्लनवकाण्डपटं समेत्य ॥ २५ ॥

सूक्ष्मावदातवसनः सितमाल्यगन्धो रत्नैर्विचित्रकनकाभरणोज्ज्वलाङ्गः ।

धौताङ्घ्रिपाणियुगलः सलिलैर्विशुद्धैराचम्य मौननिरतस्तु पवित्रपाणिः ॥ २६ ॥

अथ सामान्यार्धहस्तोऽस्त्रेण द्वाराणि सम्प्रोक्ष्य पश्चिमद्वारे नित्यवद्
द्वारपालानिष्ठा पार्श्विण्यत्वा तच्छोऽटिकातर्जनीत्रयैः (?) विघ्नानुत्सार्य नाराचास्त्रं
क्षिप्तवान्तः प्रविश्यै प्रतिनिवृत्त्य देहल्यां पुष्पेणास्त्रं निधाय मण्डपं तत्त्वदृष्ट्या
वीक्षमाणः प्रदक्षिणं पारक्रम्य ब्रह्मस्थाने पुष्पं निक्षिप्य स्वासनमिष्टोदङ्मुख
उपविश्य भूतशुद्धिं च कृत्वा

प्राक् प्राकृतादिभवदेहमपास्य बुद्ध्या सोऽहं सदाशिव इति स्वतनुं विभाव्य ।

गन्धानुलिप्तशिवहस्तनिविष्टमन्त्रो नित्यक्रमेण विधिवत् सकलीकृतात्मा ॥ २७ ॥

हृत्पद्मकोटरशिव मनसार्चयित्वा नाभिस्थमग्निमपि बिन्दुगतं च शम्भुम् ।

तालत्रयेण च बहिः प्रविधाय रक्षां स्वातास्त्रवप्रपरिनिष्ठितशक्तिभिश्च ॥ २८ ॥

अथापाद्य विशेषार्थं स्नानद्रव्याणि शोधयेत् ॥ २९ ॥

कृत्वा तु पञ्चकोष्ठानि समसूत्रनिपाततः ।

तत्र मध्ये शिवतत्त्वे सुप्रतिष्ठितारूपे कोष्ठे क्षीरमीशानमूलाभ्यां पात्रे
समापूर्य प्राच्यां सदाशिवतत्त्वे स्वशान्ताख्ये कोष्ठे तत्पुरुषेण वर्मणा च दधि,

दक्षिणे विद्यातत्त्वे तेजोरूपाख्येऽघोरेण शिखया च घृतं, सौम्ये पुरुषतत्त्वे निवृत्तिं कोष्ठे वामदेवेन शिरसा च रत्नतोययुक्तं गोमूत्रं, पश्चिमे कालतत्त्वेऽमृताख्ये कोष्ठे सद्योजातेन हृदयेन च गोमयमापूरयेत् । एकद्वित्रिचतुष्पञ्चवारं मध्यादिषु जपेत् । कुशोदकं शिवगायत्र्या षड्वारमभिमन्त्र्य यथाक्रमं क्षीरादिषु पञ्च पञ्चसु प्रक्षिपेत् । तदनु दध्यादीनि मध्यपात्रे सुप्रतिष्ठिताख्ये क्षीरेण संयोजयेत् । एकीकृत्य मथित्वा सदाशिववदभिपूज्य स्थापयेत् । अथ तत्त्वसंख्यकुशकूर्चज्ञानखड्गं सम्पाद्य विकिरानायोजयेत् ।

“लाजचन्दनसिद्धार्थमस्मपुष्पकुशाक्षताः ।

हेतयोऽस्त्रेण सप्तैते विधातव्या विमिश्रिताः ॥”

इति ब्रह्मशम्भुः ।

“तिललाजयवा दूर्वाः सिद्धार्थाः कुसुमानि च ।

ईषच्चन्दनकल्केन मिश्रिता विकिराः स्मृताः ॥”

इति मतङ्गे ।

“अस्त्रेणामन्त्र्य धान्यानि संक्षिपेच्चास्त्रवत् परि ।

तत्पाताद् विघ्नवृन्दानि द्रवन्त्यत्र भयाद् भृशम् ॥”

इति पराख्ये । इत्येषामेकप्रकारं विकिरान् सम्पादयेत् । उष्णीषं चाचार्यस्य,

“उष्णीषं धवलं सूक्ष्ममाचार्यो धारयेत् सदा ।

षडङ्गुलोच्चं सुषमं प्रादक्षिण्याभिवेष्टितम् ॥”

इति पौष्करे ।

“मन्त्रसंहितया लब्धमुष्णीषं धवलं गुरुः ।

षडङ्गुलोच्चं शिरसा धारयेन्नृपपट्टवत् ॥”

इति बृहत्कालोत्तरे ।

तद्वदुत्तरीयं च धवलं यज्ञोपवीतवद् धारयेत् । द्विजकन्ययावर्तितं नवगुणं सूत्रं पाशसंयमनाय सम्पाद्य शिख्यालभ्य पात्रे निदध्यात् ।

मण्डलाद् द्विगुणं सूत्रं नवतन्तुविनिर्मितम् ।

करणीत्युच्यते तद्वद् घटिका चातिपाण्डरा ॥ ३० ॥

तदुभयं मूर्तिमन्त्रैर्जपितं निदध्यात् । अयोमयीं कर्तरीं च तन्तुशिखा-
च्छेदनयास्त्रेण निदध्यात् ।

रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डलार्थं प्रकल्पयेत् ।

रत्नानि हेम धान्यानि कुम्भं च करकं तथा ॥ ३१ ॥

कलशांश्चरुपात्राणि गन्धपुष्पादिकं च यत् ।

वासांसि च विकेशानि शुक्लान्यभिनवानि च ॥ ३२ ॥

समिदाज्यतिलान् लाजान् स्नानद्रव्यादिकं च यत् ।

कल्पयेच्छान्त्यतीतादिकलामन्त्रैः पृथक् पृथक् ॥ ३३ ॥

मूलेन सितमुष्णीषं सप्तवारं जपेत् ततः ।

वेष्टयित्वा शिरसि तत् सोत्तरीयः समाहितः ॥ ३४ ॥

अनुग्रहः समर्थोऽस्मि सर्वज्ञोऽहं सदाशिवः ।

स्वतन्त्रोऽहं पशूनेतान् मोचयामीति चिन्तयन् ॥ ३५ ॥

अथ पात्रस्थान् विकिरान् वामहस्ते निधाय मण्डपस्य नैर्ऋत्यां दिशि
स्थित्वेशानाभिमुखोऽधोरास्त्रे(ण) शिवास्त्रेण वा सप्त परिजप्य मण्डपमध्यादी-
शानकोणान्तं ज्वलदग्निनिभान् विकिरानुत्तानेन दक्षिणे (न) हस्तेन विकिरेत् ।
विकिरेच्छर्वशर्वेतिपदेन । कुशमुष्ट्या धूपदेन विकीर्णान् संहृत्येशानकोणे
संस्थाप्य तत्रैव कृतपद्मपीठे शाल्याढकं दर्भासनं च निधाय सूत्रितं हैमाद्येक-
क्रमं शिवकुम्भं सुधातैर् धूपितमधोमुखं निधाय तत्पृष्ठे कूर्चं च पृथिव्यादिप्रकृ-
त्यन्ततत्त्वमयं कुम्भं ध्यात्वोत्तानयित्वा तत्कूर्चमुत्तानं तस्मिन् निधाय द्वादशा-
न्तामृतं ध्यायंस्तीर्थसलिलैरापूर्य नवरत्नहिरण्यौषधिकुसुमगन्धाक्षतान् प्रक्षि-
प्याश्चत्थ (सु ! पल्ल) वान्युत्तानानि तस्मिन् निधायाक्षतफलाढ्यविधाविधानेन नि-
धाय,

आच्छाद्य शुक्लवसनद्वयशुक्लमाल्यैस्तस्मिंश्चलाचलवृषासनसन्निविष्टम् ।

योगेश्वरं तु सशिवासनमूर्तिदेहमावाह्य गन्धकुसुमादिभिरर्चयित्वा ॥ ३६ ॥

कुम्भान्तिके तदनु दक्षिणतस्तथैव प्राक् संहृतेषु विकिरेष्वपि वर्धनीं च ।

आपूर्य कुम्भमिव शस्त्रजपेन शक्तिं त्वावाह्य केसरिगतां विधिनाभिपूज्य ॥

अथात्र ब्रह्मशम्भुः —

“दशस्वपि दिशास्वैन्द्रीप्रभृतिष्विन्द्रपूर्वकान् ।
सुरानुपेन्द्रपर्यन्तानिष्टा तु विधिवत् क्रमात् ॥”

इति ।

अथ तान् प्रार्थयेत् । चलाचलासनगतां वर्धनीमभिपूज्य, तदनु
अत्र मञ्जर्यां —

“जप्त्वा मन्त्रमघोरशस्त्रमभितः कुड्यं ततो वर्धनी-
माचार्यो भ्रमयेत् प्रदक्षिणवशादच्छिन्नया धारया ।
तन्मार्गेण तथा परः शिवघटं सङ्गृह्य नीत्वा पुनः
स्थाने पूर्ववदासने शिवघटं तां वर्धनीं च न्यसेत् ॥

मूलं न्यसेच्छिवघटे तु शिवश्च तस्मिन् पूज्यः स्थिरासनगतः सहिताङ्गमूर्तिः ।
तारं च पाशुपतशस्त्रमथात्र तोये तस्मिन्नुमां भगवतीमभिपूज्य सम्यक् ॥”

लिङ्गमुद्रया शिवकुम्भं स्पृष्ट्वा सव्यया तन्मुष्ट्या वर्धने स्पृशेत् ।
“सव्यमुष्टिरुमा पिण्डी लिङ्गमङ्गुष्ठको हरः ।”

इति ब्रह्मशम्भुः ।

एवं भुक्तिकामो भुक्तिकामश्चेत् पूर्वं वर्धनीं पश्चात् घटं स्पृशेत् ।

उमायै भग(वद् ?)रूपिण्यै लिङ्गरूपधराय च ॥ ३८ ॥

शङ्कराय नमस्तुभ्यमिति स्तुत्यानुमोद्य तु ।

यज्ञस्यास्य पतिस्त्वं हि शक्तिरेषा तवाचला ॥ ३९ ॥

एष ते ज्ञानखड्गोऽयं तं गृहाण स्वमायुधम् ।

मया प्रवर्तितश्चायं यज्वनां भवता क्रतुः ॥ ४० ॥

रक्षणीयस्त्वया देव ! समाप्तिर्यावदस्य हि ।

इत्थं शिवं समभिवन्द्य समर्प्य सम्यक् तं ज्ञानखड्गमथ तावभिपूज्य सम्यक् ।

कृत्यं च तद्भगवते विनिवेद्य रक्षां विघ्नाधिपं स्वदिशि तत्र यजेद् यथावत् ॥

यः सुरेशाध्वरोऽस्माभिः पश्चनुग्रहेतवे ।

प्रवर्तितः प्रयात्वन्तमविघ्नस्तव सन्निधौ ॥ ४२ ॥

एवं गणेशमभिवन्द्य तु मण्डपे प्राङ् मध्ये सगन्धजलगोमयसम्प्रलिप्ते ।
लिङ्गोद्भवान्यतममप्यथ भद्रकं वा संलिरुय मण्डलमथात्र यजेन्महेशम् ॥

आनन्तमासनमथो परिभाव्य तस्मिन्नावाह्य चोक्तविधिना (च सदा) शिवं तम् ।
मुख्योपचारपरिबर्हसमेतमिष्ट्वा तुष्टे शिवे विधिवदावरणान्यपीष्ट्वा ॥ ४४ ॥

आवरणानीति पञ्चावरणान्युच्यन्ते ।

प्राच्यां तथाभिशरणे चतुरश्रकुण्डे त्वाधाय वह्निमपि तत्र सदाशिवाख्यम् ।
+ + + + + दिचरोऽस्तु चतुर्थमंशं मूलाङ्गमूर्तिमनुभिः क्रमशो जुहोति ॥

तद्यथा — यथोदितमग्निमुक्तप्रकोरेणाधाय शिवसन्धानं च कृत्वा पञ्च-
संस्कारसंस्कृतादग्नेः पूर्वमेव किञ्चिदुद्धृत्य चुल्ल्यां प्रज्वलितं कपिलाक्षीरे पञ्च-
प्रसूतिशालितण्डुलैरेकशिष्यदीक्षायां प्रतिशिष्यं प्रतिकुडुम्बवृद्ध्या प्रोक्तक्रमेण
चरुं श्रपयित्वा यथावदभिघार्य कुण्डान्तिके वारुण्यां दर्भेषु संस्थाप्य मन्त्रसं-
हितयाज्येन हुत्वा चरौ सम्पात्य धेन्वामृतीकृत्य चतुर्धा चरुं विभज्य (म ? मू)-
लस्थायैकमंशं भगवते कुम्भस्थायापरं निवेद्यान्यमग्नये शिष्टं सशिष्यायात्मने
स्थापयेत् । अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“अभिनीय शिवायांशमग्नये कलशाय च ।
सशिष्यायात्मने शेषं रक्षेदविहृतं चरोः ॥”

इति ।

अथावदानत्रितयं जुहुयात् तु पृथक् पृथक् ।
सुचैव मूलमन्त्रेण क्रमेणाज्याभिघारितम् ॥ ४६ ॥
अथाज्यामिश्रितं हुत्वा मूलेनैकादशहुतीः ।
ब्रह्माङ्गमूर्तिमन्त्रैस्तु हुत्वैकैकां पृथक् पृथक् ॥ ४७ ॥

अत्र

“ब्रह्माख्यमन्त्रैश्च षडङ्गमन्त्रैराज्येन सर्वैः परिवारमन्त्रैः ।
विद्येश्वराद्यैर्जुहुयात् क्रमेण”

इति मञ्जर्याम् ।

तद्वत् तिलैश्च हुत्वाथ हुत्वा पूर्णाहुतिं तथा ॥ ४८ ॥

रुद्रादिभ्यो बलिं क्षिप्त्वा रुन्धानुज्ञः शिवाद् गुरुः ।
शिष्यं तु शिष्यौ शिष्यान् वा दीक्षयेदाधिकारतः ॥ ४९ ॥

एतावत् कर्म सामान्यक्रियादीक्षासु देशिकैः ।
सामय्याद्यासु विज्ञेयं साधकान्तास्वनुक्रमात् ॥ ५० ॥

सामान्यक्रियाधिकारः ।

अथ समयदीक्षायां यथोदिताञ् शिष्यान् कृतदन्तधावनान् निर्वर्तित-
स्नानसान्ध्यनित्यानुष्ठानान् धवलाम्बरोत्तरीयान् द्वाराद् बहिः संस्थाप्य स्वय-
मन्तः प्रविश्य प्रणम्य देवं विज्ञापयेत् ।

यदर्थोऽयं मया देव ! शिवयज्ञः प्रवर्तितः ।
त इमे पशवः शान्ता द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः ॥ ५१ ॥

तत् कुरुष्व प्रसादं मे तत्प्रवेशाय शङ्कर ! ।
करोम्यनुग्रहमिति देवेनानुग्रहे कृते ॥ ५२ ॥

सकलीकृत्य चात्मानं सदाशिवतनुर्गुरुः ।
दीक्षाधिकरणेष्वेकः पञ्चस्वपि शिवो ह्यहम् ॥ ५३ ॥

यज्ञसंरक्षकः कुम्भैः कर्मसाक्षी च मण्डले ।
होमाधिकरणेनामौ शिष्ये तत्पाशबन्धहृत् ॥ ५४ ॥

आचार्योऽनुग्रहपरः सोऽहमेवेति भावयेत् ॥ ५५ ॥

द्वारस्य बाह्यभुवि मण्डलकेऽथ शिष्यं दर्भाक्षतप्रणवपङ्कजविष्टरस्थम् ।
बद्धाञ्जलिं भगवदुन्मुखमूर्ध्वकायं पश्येद् गुरुः स्वयमुदम्बदनोऽर्घ्यहस्तः ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“विलेख्येच्छिखातस्तं यावत्पादनखाग्रकम् ।

नखाग्राञ्चुडिका यावत् तत्त्वज्ञानदशा गुरुः ॥”

इति ।

आत्मायमस्य शिथिलीकृतबन्धजाल-

स्त्व(हन्तः)शिवत्वमधुना शिवशक्तिपातम् ।

ध्यात्वेत्थमर्ध्यसालिलैस्त्रिरवोक्ष्य चास्त्रात्

तं भस्मना त्रिरभिषाज्य शिरस्यथाद्भिः ॥ ५६ ॥

सम्प्रोक्ष्येति यावत् । शिष्यस्य शिरसि कुसुमं विन्यस्य कुशाग्रमूलाभ्यां हृदयादूर्ध्वं त्रिधातिर्यगुल्लिखेत् । “नाभेरूर्ध्वमधश्चे”ति भोजराजः । अथाघा-
रशक्तितत्रत्रयस्य (?) ज्ञानक्रियाशक्तियुक्तं पशुमूर्तिमन्त्रेणोद्भाष्य विद्यादेहं च
विन्यस्य मूलाग्रमूर्तिभिः सकलीकृत्याभिपूज्य सितसूक्ष्मेण विशुद्धेनाहतेन वस्त्रेण
प्रोक्षितकवचावगुण्ठितमूलाभिमन्त्रितेन नेत्रमन्त्रेण शिष्यस्य नेत्रबन्धं विधाय
यागगृहं प्रवेश्य कुम्भाग्निमण्डलशिवानां प्रदक्षिणं कारयेत् ।

शिवस्य दक्षिणे भागे कल्पिते कमलासने ॥ ५७ ॥

धर्मादिभिश्चतुर्भिश्च सकुशे तं निवेशयेत् ।

हृद्बीजपुटहंसेन नूलेन पुतनादिना ॥ ५८ ॥

संहारमुद्रया तस्य संज्ञां संहृत्य देशिकः ।

स्थूलपाशकलाजालमपि शुद्धफलाप्तये ॥ ५९ ॥

शिष्यदेहगतं ध्यात्वा नैन्दवीभिर्विशोधयेत् ।

भूतशुद्धिविधानेन धारणाभिर्विशोधयेत् तम् ॥ ६० ॥

हृदये तस्य सूर्यादिबिम्बब्रह्मादिपङ्कजे ।

पञ्चमन्त्रकलाजालमूर्त्यङ्गाढ्यं सदाशिवम् ॥ ६१ ॥

सासनं मूर्तिसहितं विद्यादेहं यथाविधि ।

मनसाराध्य तन्नाभिकुण्डामौ जुहुयाद्विद्या ॥ ६२ ॥

भ्रूमध्याम्भोरुहे बिन्दौ शिवध्यानेन चास्य तु ।

आत्मशुद्धिं समापाद्य गन्धालिप्तकरः स्वयम् ॥ ६३ ॥

शिवहस्तं विधाय स्वे वामपाण्यम्बुजे स्मरन् ।

आसनादिक्रमात् साङ्गं शिवं सम्पूज्य वै धिया ॥ ६४ ॥

हृद्बीजमूलहंसाब्धं तस्मिन् विन्यस्य चेतसा ।

तं हस्तं शिष्यहृदये विन्यसेत् प्रथमं ततः ॥ ६५ ॥

हृदादिग्रन्थिभेदार्थं क्रमात् तत्कण्ठतालुगम् ।

भ्रूमध्यगं च मूर्ध्निस्थं कुर्याद् रुद्रपदासये ॥ ६६ ॥

तदनु शिष्यस्य पाण्योः पुष्पाञ्जलिं गन्धपुष्पाधिवासितं कृत्वोत्थाय देवाग्रे शिष्यमूर्ध्वकायं देवाभिमुखं संस्थाप्य स्वयमुदङ्मुखस्तिष्ठन् पशोस्तिरो-धायकं नेत्रबन्धं ध्यात्वा ज्ञानासिना पाशुपतास्त्रेण नेत्रबन्धमपनीय पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्पुक्त्वा तमञ्जलिं मण्डले पातयेत् । बद्धनेत्र एव पुष्पाञ्जलिं क्षिपेदिति केचित् । तत्र मूर्त्यङ्गादिषु यत्र पति पुष्पाञ्जलिस्तन्नामधेयान्तं (?) कुर्यात् ।

शिवान्तं ब्राह्मणस्य स्याद् देवगणान्तमन्ययोः ।

शूद्रस्य मुनिशब्दान्तं नाम कुर्याद् यथाक्रमम् ॥ ६७ ॥

तस्याष्टाङ्गनमस्कारमुपदिश्य प्रणामयेत् ।

अत्र भोजराजपक्षे तु प्रदक्षिणानन्तरं पुष्पाञ्जलिं (प्रक्षिप्यान)न्तरमुप-वेश्य शिष्यं धारणाभिर्विशोध्य सकलीकृत्य शिवहस्तं विन्यसेदिति । नैतन्मू-लागमसम्मतं, यतो धारणाभिर्विशुद्धस्यैव मण्डलस्थविशिष्टाशिवे पुष्पाञ्जलि-प्रक्षेपाधिकार इत्यतः प्रागुक्त एव पक्षो ब्रह्मशम्भुना च स्वीकृतः । तदनु शि-वकुम्भायाग्नये च पुष्पाञ्जलिपूर्वं नमस्कारमुपदिश्य कुण्डाद् वायव्यभागे प्रा-ग्वत् कल्पितासने शिष्यं निवेश्य मन्त्रसंहितयाज्येन हुत्वा सम्पात्य शिष्यस्या-त्मनश्च नाडीसन्धानं विदध्यात् । तत्र दर्भमूलं स्वजङ्घासन्धौ गृहीत्वा दर्भाग्रं शिष्यहस्ते दध्यात् । विपरीनमिति भोजराजः ।

अथ शिष्यस्येडापिङ्गलासुषुम्नानाडीः स्वनाडीः प्रविष्टाः सम्भान्य मूलेनाहुतित्रयं पञ्चकं वा हुत्वा तच्चैतन्यग्रहणाय प्रवेशनिर्गमौ विधायाष्टशत-मूलेन दशांशेनाङ्गमूर्तीनां हुत्वा पूर्णां च विधाय प्रायश्चित्तार्थं पुनरष्टोत्तरशतं मूलेन हुत्वा तदीयां प्राक्तनजातिमुद्धरेत् ।

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“नाद्विजो युज्यते सिद्ध्या न च निर्वाणमश्नुते ।

द्विजोऽपि हि यतस्तेन कुर्यात् तं द्विजसत्तमम् ॥”

इति । एतस्माद् द्विजानां जात्युद्धारेण द्विजोत्तमत्वं च पशुजातिमोक्षाच्छिव-
त्वं (च) भवति ।

शूद्रस्यापि शूद्रत्वपशुभावव्यावर्तनाच्छिवत्वलक्षणद्वितीयजन्म जात्यु-
द्धारेण भवतीत्यतो दीक्षितः शूद्रो न भवति, किन्तु शिवसंस्कारजातस्य
शिवत्वसम्भवात् पूर्वजन्मव्यपगमाच्च वेदमन्त्रव्यतिरिक्तशैवमन्त्रतन्त्रश्रवणपू-
जासु योग्यता भवति ।

ननु शिवसंस्कारजात्युद्धाराच्छूद्रस्य द्विजत्वमस्ति चेत् किमिति वेद-
मन्त्रानधिकारित्वमिति चोद्ये ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातस्यापि वैदिकमन्त्रैरुप-
नयनेन संस्कृतस्य वैदिकद्विजस्यैव वेदेऽधिकारः, कारणानुगुणकार्यत्वात्,
तद्वच्छैवमन्त्रसंस्कृतस्य तदनुगुणद्विजत्वसिद्धौ तन्मन्त्रपूजादावेवाधिकार इत्यु-
पपन्नम् ।

तत्राचार्यः स्वहृत्पद्मे मायापर्यङ्कशोभिते ॥ ६८ ॥

रागतत्त्वास्तृते रम्ये पशुसंज्ञोपधानके ।

विद्याप्रदीपे सुश्लिष्टौ स्मरेद् विद्यापती शिवौ ॥ ६९ ॥

तौ च संपूज्य मनसा पशुं पश्चात् समुद्धरेत् ।

तस्य हृत्पङ्कजे जीवं प्रोक्ष्य सन्ताड्य हेतिना ॥ ७० ॥

रेचकेन स्वयं मूर्ध्ना निर्गत्य तु सुषुम्नया ।

शिष्यदेहं प्रविश्यात्महृत्पद्मस्थं तु पुद्गलम् ॥ ७१ ॥

उद्धरेच्छेदविश्लेषौ विधायाम्त्रेण चाङ्कुशात् ।

आकृष्य चोर्ध्वं नाड्या तु द्वादशान्ते निवेश्य तु ॥ ७२ ॥

अभिपूज्य ध्रुवेणाथ तारं हंसं च कारकम् ।

अपेदिति यावत् ।

संहारमुद्रया तस्मात् समाहृत्य तु पुद्गलम् ॥ ७३ ॥

अथ पूरकेण स्वहृदयाब्जे शिवयोर्गर्भे निवेश्य कुम्भकेन समरसीकृत्य
मनसाभ्यर्च्य तत्र विद्यायां जातं विचिन्त्य रेचकेन सुषुम्नयोर्ध्वं नीत्वा ब्रह्म-

विष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवेषु क्रमादायोज्य तानतिक्रम्य द्वादशान्ते संवोज्ज भुवे-
णाभिपूज्य प्रणवहंसप्रणवैस्ततः संहारिण्या तं गृहीत्वा तथैव सुषुम्नया शि-
ष्यस्य हृदम्भोजे निवेश्य हृदयसम्पुटहंसेन समरसीकृत्य द्वादशान्तामृ-
तेनाप्लाव्य पुनर्जातं निर्मलं कुमारं चिन्तयेत् ।

ब्रह्मादिकारणोपाधिशिवसंसर्गपावितम् ।

तज्जातं शिष्यमुद्धाव्य द्विजत्वेनोपपादयेत् ॥ ७४ ॥

अत्र मकुटोत्तरे —

“अन्यं कीटकमादाय कुड्यसंवेष्टितं मृदा ।

अमरो घूर्णनादाद्यैः स्वज्जातिं कुरुते यथा ॥

तद्वद् दीक्षासु संस्कारैर्निर्मलः शिवतामियात् ।”

जात्युद्धारायाहुतित्रयं मूलेन हुत्वा ततो द्विजत्वापादनाय च ओं हौं
शिवाय स्वाहा इति च हुत्वा, ओं भगवन्नयमात्मयोनिबीजाहारभावदेश-
शुद्धो द्विजो भवतु स्वाहा । पुनराहुतित्रयेण हुत्वा रुद्रांशतामापादयेत् ।
ओं भगवन्नयमात्मा रुद्रो भवतु स्वाहा । “तत्संस्काराश्च पञ्चैव शिवाग्नेरिव”
इति ब्रह्मशम्भुमतदर्शनाद् अग्निकार्यपटलमार्गेण गर्भाधानादिसंस्कारनिष्पत्तये
सद्यादिभिः पृथक् पृथगभ्यर्च्य हृदयादिभिः पृथक् पृथक् जुहुयात् । संसारि-
तद्विजसंस्कारेभ्यो (?) दीक्षितद्विजसंस्कारव्यतिरेकं दर्शयति ।

गर्भाधानं स्मृते शक्तौ(?) मलापायसमाश्रयात् ।

बीजं + + + + + ब्रह्मादिस्पर्शशोधितम् ॥ ७५ ॥

व्याक्तिः स्वतन्त्रतायास्तु तस्य पुंसवनं भवेत् ।

मायात्मनोर्विवेकेन ज्ञानं सीमन्तकल्पना ॥ ७६ ॥

ज्ञातहेयपरित्यागादुपादे(या!य)परिग्रहः ।

जातकर्म भवेत् तस्य शिवत्वव्यञ्जकं हि तत् ॥ ७७ ॥

उक्तं हि नामकरणाभिस्थं संस्कारपञ्चकम् ।

ब्रह्मशम्भुरिह प्राह निष्कामान्नाशनादयः ॥ ७८ ॥

अशिवाः शिवमार्गेऽस्मिन् भवभूतिफला अपि ।

एतस्मादुपनिष्कामणादीनप्ये(तान्) संस्कारान् जीवाग्नेरुक्तमार्गेण कृत्वा
सतोऽस्य यज्ञोपवीतं मूलेन दत्त्वा प्रायाश्चित्तार्थं शतं सहस्रं वा प्रासादेनाज्येन

हुत्वा पूर्णाहुतिं चाथ कुम्भाग्निशिवानां प्रणामं कारयेत् । पुनः शिवं चाभि-
पूज्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य सुवर्णकुसुमादिभिरशून्यहस्तः शिवं गुरुं च शिष्यो
दण्डवत् प्रणमेत् ।

तमुत्थाप्य गुरुः शिष्यमाशीर्भिरभिनन्द्य च ॥ ७९ ॥

जातः समययोग्यस्त्वमिति ब्रूयात् प्रसन्नधीः ।

इहामुत्रार्थाप्त्यै खलु समयदीक्षेति कथिता

द्विजो जात्युद्धाराद् भवति पतिविद्याश्रयवशात् ।

ततः पूजाजप्यश्रवणविधियोग्यश्च स भवेत्

तथा रुद्रांशास्मा प्रतिदिनशिवार्चादिगुणवान् ॥ ८० ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः—

“यथाव्यवस्थितान् वर्णान् सापेक्षान् स्वाश्रमानपि ।

स्थापयेन्नित्यमीशा(ना?)मिगुरुपूजानतिक्रमात् ॥

पूर्वाश्रमानपेक्षं तु व्रतं यद् ब्रह्मचारिणः ।

भौतिको नैष्ठिको वापि सम्यगायातुमर्हति (?) ॥”

इति । एतस्माद् भस्माधाराक्षसूत्रकौपीनदण्डांश्च जटाशिखयोरन्यतमां
चेति पञ्च मुद्राः पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्चाभिमन्त्र्याथ धारयेत् ।

नाडीसन्धानहोमः प्रथममथ भवेन्मन्त्रसन्तर्पणार्चा-

जात्युद्धारद्विजत्वैः प्रतिपदगमनाच्छक्तिचैतन्ययोगः ।

संस्काराद् रुद्रतामिस्तदनु निगदितं चोपवीतप्रदानं

प्रायश्चित्तं प्रणामः समय इति भवेत् सामयी नाम दीक्षा ॥ ८१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे
सामान्यक्रियासमयदीक्षापटलः षोडशः ।

अथ सप्तदशः पटलः ।

अथ निर्वाणदीक्षादिक्रियानिष्पत्तिसाधनम् ।

यथाबद्धवनां वृष्णां स्वरूपं तु निरूप्यते ॥ १ ॥

तत्त्वाध्वा चैव वर्णाध्वा मन्त्राध्वाध्वा च भौवनः ।
 पदाध्वा च कलाध्वा च षट्प्रकारोऽध्वनिर्णयः ॥ २ ॥
 व्याप्यास्तत्त्वादयः पञ्च मलाद्या व्यापकास्त्रयः ।
 पुनर्मलादयो व्याप्याः कलाध्वा व्यापकः स्मृतः ॥ ३ ॥
 तत्र तत्त्वानि षट्त्रिंशत् तत्त्वाध्वा स्याद् विलोमतः ।
 क्षकारादिरकारान्तो वर्णाध्वाक्षरसन्ततिः ॥ ४ ॥
 सधादिकानि ब्राह्माणि मन्त्राश्च हृदयादयः ।
 मूलमन्त्रश्च मन्त्राध्वा प्रागेवात्र प्रदर्शितः ॥ ५ ॥
 कालाग्न्यादीनि शक्त्यन्तं भुवनानि शतद्वयम् ।
 सचतुर्विंशतिपुरं भुवनाध्वेति कथ्यते ॥ ६ ॥
 व्योमव्यापिपदान्यत्र यान्येकाशीतिसंख्यया ।
 विलोमतः पदाध्वा स्यान्मन्त्रोद्धारे स चोदितः ॥ ७ ॥
 निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्च पञ्चमी ।
 शान्त्यतीतेति हि कलाः कलाध्वा सोऽपि दर्शितः ॥ ८ ॥
 तन्त्रेऽस्मिन् प्रागनुक्तत्वाद् भुवनाध्वाथ कथ्यते ।
 कालाग्निसंज्ञं कूष्माण्डं हाटकं ब्राह्मवैष्णवे ॥ ९ ॥
 रौद्रं च भुवनान्यत्र ब्रह्माण्डान्तःस्थितानि षट् ।
 ब्रह्माण्डमूले कालाग्निभुवनं दशकोटिभिः ॥ १० ॥
 योजनैर्विस्तृतं तस्य विमानं लक्षयोजनम् ।
 तस्य सिंहासनं पञ्चसहस्रैः साग्निमण्डलम् ॥ ११ ॥

अत्र मञ्जर्या —

“कालाग्निः स च योजनायुततनुर्लोकान् दिधक्षुः स्थितो-
 ऽभ्युद्गीर्णाग्निशिखैस्त्रिनेत्रविकटैर्वक्त्रैश्च दंष्ट्रोज्ज्वलैः ।
 सत्पाशाङ्कुशखड्गखेटकशरेष्वासाभिखट्वाङ्गकै-
 र्दोर्भिः शूलकपालसाभयवरैर्नानाहिभूषान्वितः ॥”

इति । अपिच

अनतिकृशंकृशानुश्रेणिविद्युद्वितान-
 द्युतिक्वपिलजटाभिर्विप्रकीर्णाभिरुग्रः ।

प्रतिभयभटमुण्डसंघरः कृत्तिवासाः

सितभसितसिताङ्गो भाति कालाग्निरुद्रः ॥ १२ ॥

सप्तकोटिगणैर्भीमैरात्मवेषानुकारिभिः ।

रुद्रैः परिवृतो देवस्तेषां चैव दशेश्वराः ॥ १३ ॥

धूम्रेश्वरश्च कपिलः कालकोऽधीश्वरस्तथा ।

जलदध्मञ्चलोऽर्थेश ईशोऽनन्तश्च पद्मभूः ॥ १४ ॥

एते पूर्वाददशदिक्षु प्रतिसप्ततिलक्षणानामधिपतयः सपरिवारास्तिष्ठन्ति ।

कालाग्निभुवनादूर्ध्वं कूष्माण्डभुवनं स्थितम् ।

योजनानां नवतिभिर्लक्षैस्तद्विस्तृतोच्छ्रितः ॥ १५ ॥

तन्मध्ये पञ्चसाहस्रयोजनस्तस्य चालयः ।

कूष्माण्डस्तु सहस्रयोजनतनुस्त्यक्षैस्त्रिभिश्चाननै-

र्दष्टाभीषणदन्तुरैश्च दहनज्वालादृहासात्मवान् ।

विद्युत्पिङ्गजटः करैर्दमरुकं खट्वाङ्गपाशाङ्कुशान्

विभ्रच्छूलकपालवद्भिभुजगानान्त्रास्थिमालाधरः ॥ १६ ॥

अपिच,

षण्ठाशृङ्गलवङ्गकेशवसनः प्रेतासने संस्थितो

भस्मोद्धूलितविग्रहश्च भुजगैर्नानाविधैर्भूषितः ।

भूतप्रेतपिशाचजम्भकगणैः षट्कोटिसंख्यैर्वृतो

भीमः स्वे भुवने विभाति भगवान् कूष्माण्डरुद्रः स्थितः ॥ १७ ॥

तस्याधस्तात् परितः पञ्चकोटिसंख्यया

नरकाण्यतिदुःखानि पच्यन्ते येषु पापिनः ॥ १८ ॥

तेषामपि च मुख्यानि द्वात्रिंशन्नरकाणि तु ।

तेषामपि त्रयो वर्गाः स्युस्तेषां चाधिपाक्ययः ॥ १९ ॥

रौरवः कुम्भीपाकोऽवीचिश्च । तानि च रौरवमहारौरवशीतोष्णसन्तापन-
विदारणपङ्कमहापङ्कासिपत्रवनसूचीमुखकालसूत्रक्षुरधारसंज्ञान्येकादश रौरवप्र-
धानानि । तद्वत् कुम्भीपाकाङ्गारनिचयश्चभक्षणासृक्पूयपङ्ककचपाटनतप्तलो-

हतसवालुकास्त्रिभङ्गसूकरस्वमांसभक्षणावाङ्मुखलम्बनानि कुम्भीपाकप्रधानान्ये-
कादश । अवीचिकिमिनिचयकूटशल्मलिनिरुच्छ्वासामेध्यकूपकिमिकूपान्धकूप-
निरालम्बनपतनशूलप्रोतवैतरणिसंज्ञान्यवीचिप्रधानानि दश ।

कूशमाण्डरुद्रः सर्वेषां नरकाणां प्रभुः स्मृतः ।

+ + + (योज)नादूर्ध्वं सप्तपातालसंस्थितिः ॥ २० ॥

तेषां नवतिलक्षाणि प्रत्येकं विस्तृतिः स्मृता ।

उपर्युपरि सप्तापि पातालानि स्थितानि हि ॥ २१ ॥

अतलं चैव पातालं नितलं च गभस्तितम् ।

महातलं च सुतलं रसातलमतःपरम् ॥ २२ ॥

तानि च क्रमाद्रेममाणिक्येन्द्रनीलपुष्परागरजतस्फटिकमयानि ।
रसातलं तु शैलमयं मुक्ताफलाकीर्णमिति विद्यात् ।

दैतेया दानवा नागाः कृतपुण्यास्तु ये पुरा ।

पातालेषु वसन्त्येषु हरपादार्चने रताः ॥ २३ ॥

विरोचनहिरण्याक्षप्रह्लादबलिशम्बराः ।

वृत्राद्याश्चैव दैत्येन्द्राः पातालस्वर्गवासिनः ॥ २४ ॥

भूमेश्च धारणे युक्तो विष्णुर्योऽनन्तविग्रहः ।

सोऽप्यास्ते भवने दिव्ये नागेन्द्रैरर्चितः सदा ॥ २५ ॥

तत्र भोगवती नाम वासुकेर्नगरी शुभा ।

हेमरत्नमयी दिव्या दिव्यभोगसमन्विता ॥ २६ ॥

क्रमात् पातालानामधिपतयः सप्त रुद्रास्तत्र तत्र निवसन्ति । ते च
चण्डविजयज्येष्ठामयार्थवर्षदमहारुद्रनैर्ऋतसंज्ञाः । सामान्येन सर्वपातालाना-
मधिपतिर्हाटकेश्वरदेवः ।

हैमं तु हाटकेशस्य पुरं दिव्यगणावृतम् ।

विस्तारायामतस्तुल्यं सहस्रद्वययोजनैः ॥ २७ ॥

तस्य विमानं द्विशतयोजनप्रमाणम् ।

तन्मध्ये कनकद्युतिस्त्रिनयनः सिंहासनस्थो भुजै-

र्विभ्राणो वरदाभये च हरिणं उङ्गं च दिव्याकृतिः ।

धुधूरेन्दुकलाभुजङ्गवलयस्रग्जाटजूटोज्ज्वलः

पार्वत्या सहितस्तु हाटकशिवो दिव्यैर्गणैरावृतः ॥ २८ ॥

दैत्यदानवनोगेन्द्रकन्याभिश्च कुमारकैः ।

अभ्यर्च्यमानः सततं सुगन्धकुसुमोत्करैः ॥ २९ ॥

तस्योर्ध्वं खलु भूलोकादासत्यात् सप्तधा स्थितम् ।

ब्राह्मं तु भुवनं प्रोक्तं ब्रह्मसृष्ट्यभिपूरितम् ॥ ३० ॥

तस्य दशलक्षयोजनघना भूमिः पद्माशत्कोटियोजनविस्तृता पद्माकारा-
वस्थिता ।

मध्येऽस्याः कर्णिकाकारो मेरुः कनकपर्वतः ।

स्थितः षोडशसाहस्रयोजनं त्ववनावधः ॥ ३१ ॥

चतुरशीतिसाहस्रं योजनानां तथोच्छ्रितः ।

मूले षोडशसाहस्रं योजनं विस्तृतश्च सः ॥ ३२ ॥

ततोऽपि द्विगुणं मूर्ध्नि विस्तृतः स महागिरिः ।

चतुर्दशसहस्रैस्तु योजनैर्ब्रह्मणः पुरी ॥ ३३ ॥

मध्येऽत्र मानसी दिव्या नानारत्नप्रभोज्ज्वला ।

तस्याः पूर्वाद्यष्टदिक्षु इन्द्रादिलोकपालानामष्टौ पुर्यो विश्वकर्मविनि-
र्मिताः । ताश्चामरावती तेजोवती सांयमनी कृष्णावती शुद्धावती गन्धावती म-
होदया यशोवतीसंज्ञाः ।

किञ्चित् पश्चिमतस्तत्र विष्णोरपि पुरं महत् ॥ ३४ ॥

तद्वत् पूर्वोत्तरे भागे ज्योतिःशिखरसंज्ञितः ।

पर्वतोऽष्टसहस्राणां योजनानां प्रमाणतः ॥ ३५ ॥

तत्र दिव्यविमानेषु पार्वत्या सहितो हरः ।

गणेश्वरैः परिवृतो रमतेऽभ्यर्चितः सुरैः ॥ ३६ ॥

स्वर्गादापतिता गङ्गा प्लावयन्तीन्दुमण्डलम् ।

तस्मिन् हरजटाजूटे पतितास्माच्च निर्गता ॥ ३७ ॥

ख्याता सीता गता प्राचीं भद्राख्या चोत्तरां दिशम् ।

याम्यामलकनन्दाख्या सुचक्षुः पश्चिमां गता ॥ ३८ ॥

चतुर्दिक्षु गत्वा लवणसागरं प्रविष्टा इति यावत् ।

पूर्वेण मन्दरो मेरोर्दक्षिणे गन्धमादनः ।

विपुलः पश्चिमगिरिः सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः ॥ ३९ ॥

एते चत्वारोऽपि मेरोर्विष्कम्भगिरयः प्रत्येकमष्टसहस्रयोजनप्रमाणा रत्न-
बहुला दिव्यजनसेव्याः । तेषु क्रमाद् देवोद्यानानि सरांसि च । यथा —

वनं चैत्ररथं प्राच्यां दक्षिणे गन्धमादनम् ।

वैभ्राजं विपुले तद्वत् सुपार्श्वे नन्दनं स्मृतम् ॥ ४० ॥

अरुणोदं सुभद्रं च सितोदमथ मानसम् ।

सरांसि देवभोग्यानि मन्दरादिष्वनुक्रमात् ॥ ४१ ॥

मन्दरादिषु तद्वच्च वृक्षाणां तु चतुष्टयम् ।

विद्यात् कदम्बो जम्बूश्च पिप्पलोऽथ वटस्तथा ॥ ४२ ॥

ते च प्रत्येकं द्विसहस्रयोजनविष्कम्भोच्छ्रयाः ।

गन्धमादनसंस्थस्तु जम्बूद्वीपस्थपादपः ।

जम्बूस्तन्नामधेयेन जम्बूद्वीपोऽयमुच्यते ॥ ४३ ॥

महागजप्रमाणानि स्वादूनि रसवन्ति च ।

सार्वकालं फलान्यस्य निपतन्ति सहस्रशः ॥ ४४ ॥

तस्मिन् फलरसोद्भूता नाम्ना जम्बूनदी सरित् ।

प्रवृत्ता देवगन्धर्वसिद्धचारणसेविता ॥ ४५ ॥

तज्जलस्पर्शनात् काष्ठमृत्तिकाशर्करादिकम् ।

जाम्बूनदारूपं भवति स्वर्णं षोडशवर्णकम् ॥ ४६ ॥

तज्जलस्नानपानेन प्राणिनो ये चतुर्विधाः ।

सर्वे भवन्ति सौवर्णा निर्जराश्चायुतायुषः ॥ ४७ ॥

मेरोस्तु परितः ख्यातो लक्षयोजनविस्तृतः ।

जम्बूद्वीपस्य स्रण्डानि नव वर्षाणि तानि हि ॥ ४८ ॥

लावणेन समुद्रेण द्वीपोऽयं वेष्टितो बहिः ।
 नवानामपि वर्षाणां मध्यमं स्यादिलावृतम् ॥ ४९ ॥
 मेरुश्च तन्मध्यगतः केसराचलसङ्गतः ।
 इलावृताद् दक्षिणतो हरिकिम्पुरुषाद्भवे ॥ ५० ॥
 (भारतं) नव वर्षाणि त्रीणि तेष्वचलास्त्रयः ।
 निषधो हेमकूटश्च हिमवांश्चात्र दक्षिणे ॥ ५१ ॥
 पूर्वापरायताः सर्वे पूर्वापरसमुद्रगाः ।
 रम्यहैरण्यकुरवो वर्षत्रयमिलावृतात् ॥ ५२ ॥
 उत्तरे गिरय(स्ते च) प्राग्वत् प्रागायतास्त्रयः ।
 नीलः श्वेतस्त्रिशृङ्गी च वर्षसीमास्ववस्थिताः ॥ ५३ ॥
 प्राच्यामिलावृताद् वर्षो ह्येको भद्राश्चसंज्ञितः ।
 पश्चिमे केतुमालश्च तयोर्द्वौ वर्षपर्वतौ ॥ ५४ ॥
 आनीलनिषधायामौ माल्यवद्वन्धमादनौ ।
 इलावृते पद्मवर्णा जम्बूफलरसाशिनः ॥ ५५ ॥
 त्रयोदशसहस्रायुस्तेषां पूज्यश्च शङ्करः ।
 भद्राश्वे मानवाः शुक्ला दिव्यरूपायुतायुषः ॥ ५६ ॥
 दिव्यान्नभोजना देवं यजन्ति च महेश्वरम् ।
 कुसुम्भकुसुमप्रख्या हरिवर्षेऽयुतायुषः ॥ ५७ ॥
 विष्णुं यजन्ते मनुजाः सर्वे चैक्षवभोजिनः ।
 किम्पूरुषे हैमवर्णा नरास्ते चायुतायुषः ॥ ५८ ॥
 लक्षवृक्षफलाहारा ब्रह्माणं पूजयन्ति ते ।
 भारते नैकवर्णास्तु नानाभाषाशनायुषः ॥ ५९ ॥
 नानादेवार्चनाः सर्वे नानाकर्मकरास्तथा ।
 महेन्द्रो मलयः सद्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ ६० ॥
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।
 मुद्ग्यशोऽत्र तथा नद्यो गङ्गा गोदावरी तथा ॥ ६१ ॥

यमुना नर्मदा तापी कृष्णवेण्णा सरस्वती ।
 तुङ्गभद्रा च कावेरी सिन्धुताम्रादिकास्तथा ॥ ६२ ॥
 स्पृष्टाः पीतास्तथा स्नाताः सर्वाः पापापहाः स्मृताः ।
 इदं तु भारतं वर्षं नवद्वीपविभूषितम् ॥ ६३ ॥
 कुमारीहिमवन्मध्ये द्वीपोऽयं पुण्य उच्यते ।
 कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम् ॥ ६४ ॥
 अन्ये म्लेच्छजनाकीर्णा द्वीपास्ते भारतस्य ये ।
 इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥ ६५ ॥
 नागः सौम्यश्च गान्धर्वो वारुणश्चाष्टमः स्मृतः ।
 अस्मिन् कुमारीद्वीपे तु देवर्षीणां तु मुख्यशः ॥ ६६ ॥
 स्थानानि यानि तानि स्युः संक्षेपादत्र तान्यपि ।
 अस्त्रवादिषु वक्ष्यन्ते षट्पञ्चाशत् पुराण्युत ॥ ६७ ॥
 अमरेशादिसंज्ञाभिर्द्दृश्यन्तेऽत्रापि तानि ह ।

शम्भोः स्थानानीति यावत् । अत्र

महेन्द्रे जामदग्न्यश्चाप्यगस्त्यो मलयाचले ॥ ६८ ॥
 सखे ब्रह्महरीशानाः कुमारः शुक्तिमद्भिरौ ।
 ऋक्षे शिवो निवसति पारियात्रे नृकेसरी ॥ ६९ ॥
 विन्ध्ये दुर्गा हिमवति नरनारायणाश्रमः ।
 केतुमाळे नरा नीलाः स्त्रियश्चोत्पलसन्निभाः ॥ ७० ॥
 क्षीराब्जभोजिनो रुद्रभक्तास्ते चायुतायुषः ।
 रम्ये रजतसङ्काशाः पञ्चसाहस्रजीविनः ॥ ७१ ॥
 मध्वाशा ब्रह्मभक्तास्ते रम्याङ्गाः स्थिरयौवनाः ।
 हिरण्यके हेमवर्णा द्राक्षाशाश्चायुतायुषः ॥ ७२ ॥
 सूर्यभक्ता नरास्तद्वत् कुरुवर्षे सुरोपमाः ।
 श्यामवर्णा मिथुनजाः कल्पवृक्षोपजीविनः ॥ ७३ ॥
 आयुर्द्वादशसाहस्रं तेषां पूज्यौ शिवौ स्मृतौ ।
 कैलासे हेमकूटे च हिमवत्युत्तरेऽपि च ॥ ७४ ॥

त्रिशृङ्गे मन्दरे नीले गन्धमादनपर्वते ।
 कर्णिकारवने चैव पुराणि पुरशासितुः ॥ ७५ ॥
 हेमरत्नविमानानि प्राधान्येन भवन्ति हि ।
 अलकाद्या तु कैलासे धनदस्य पुरी शुभा ॥ ७६ ॥
 वसुधारे वसूनां च रत्नाधारे सुरर्षिणाम् ।
 एकशृङ्गे ब्रह्मणस्तु जैगीषव्यस्य चाश्रमः ॥ ७७ ॥
 गजशैले तु दुर्गायां सुनीले रक्षसां पुरी ।
 सुमेधे देवराजस्य श्वेताद्रौ गरुडस्य च ॥ ७८ ॥
 षण्मुखस्य च तत्रैव क्रौञ्चे जारुधिपर्वते ।
 यक्षाणां शतशृङ्गे तु त्रिशृङ्गाद्रौ तथा श्रियः ॥ ७९ ॥
 सहस्रशिखरेऽद्दीन्द्रे विद्याधरपुराणि हि ।
 महालक्ष्म्याः पारिजाते सरस्वत्याः सुपार्श्वके ॥ ८० ॥
 अञ्जनाद्रावप्सरसां गन्धर्वाणां च पाण्डरे ।
 कुमुदाद्रौ तु रुद्राणां जारुधौ भास्करस्य च ॥ ८१ ॥
 पिञ्जराद्रौ गणपतेर्हंसकूटे तु वेधसः ।
 तत्रैव सनकादीनां दैत्यानां पञ्चशैलके ॥ ८२ ॥
 दक्षिणे लवणाम्भोधौ लङ्काख्या रक्षसां पुरी ।
 ऐक्षवाढ्यौ गणेशस्य द्वीपाः सन्ति पुराणि च ॥ ८३ ॥
 सुराढ्यौ भद्रकाल्याश्च भैरवाणां पुराण्यपि ।
 वीरभद्रस्य मातृणां क्षेत्रेशस्यापि तत्र हि ॥ ८४ ॥
 घृतोदेऽग्रेश्च देवानां दध्यढ्यौ ब्रह्मणो हरैः ।
 नारायणस्य क्षीराढ्यौ श्वेतद्वीपोऽतिशोभतः ॥ ८५ ॥
 हेमरत्नविमानाढ्यः पञ्चलक्षप्रविस्तृतः ।
 चतुर्भुजैः श्वेतवर्णैः शङ्खचक्रगदाधरैः ॥ ८६ ॥
 विष्णुसारूप्यमुक्तैस्तु जनैः स्त्रीभिश्च शोभितम् ।
 तत्र दिव्ये विमाने तु शेते नारायणो विभुः ॥ ८७ ॥
 शेपाहिशयने दिव्ये श्रीभूमिसहितो विराट् ।
 सेवितः कुमुदाद्यैश्च विष्वक्सेनादिकैर्गणैः ॥ ८८ ॥

तत्रापि च गणाः केचिद् दिव्यरूपास्त्रिलोचनाः ।

भस्मच्छन्नास्त्रिपुण्ड्राङ्गाः सन्ति रुद्रार्चने रताः ॥ ८९ ॥

स्वादूदकाब्धौ स्वाशासु लोकेशानां (पुरा)ण्यपि ।

प्रजापतीनां च पृथग् भोगवन्ति भवन्ति हि ॥ ९० ॥

अलमतिविस्तरेण । प्रस्तुतमेव प्रस्तूयते ।

जम्बूः शाकः कुशः क्रौञ्चः शल्मलप्लक्षपुष्कराः ।

लवणक्षीरं दध्याज्यगुलमद्यजलार्णवाः ॥ ९१ ॥

इति + + + + + न्नेष्वपि च केषुचित् ।

मध्वादिकः क्रमः प्रोक्तो द्वीपाब्धीनां विभागशः ॥ ९२ ॥

जम्बूः प्लक्षः शल्मलश्च कुशः क्रौञ्चस्ततः परम् ।

शाकश्च पुष्कराख्यश्च द्वीपाः सप्तार्णावावृताः ॥ ९३ ॥

लवणेषुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः ।

प्रोक्ताः + + + + + पि सर्वशः ॥ ९४ ॥

मिथोविरोधि नोरेवं द्वीपाब्धिक्रमपक्षयोः ।

उत्तरं मतबहुल्यादत्राश्रित्य निगद्यते ॥ ९५ ॥

जम्बूद्वीपालावणोऽब्धिर्द्विगुणस्तस्य बाह्यतः ।

लावणाद् द्विगुणो द्वीपः प्लक्षाख्यो वलयाकृतिः ॥ ९६ ॥

तस्मिन् सप्तैव वर्षाणि सन्ति सप्त (च) पर्वताः ।

तद्यथा—शान्ताभयशिशिरसुखोदयानन्दशिवक्षेमकध्रुवसंज्ञानि वर्षाणि ।
गोमेदचक्रकनारददुन्दुभिसोमकक्रवभवैभ्राजसंज्ञा वर्षगिरयो लवणेषुसमुद्रस्प-
र्शिनः सर्वे सहस्रयोजनविस्तारोच्छ्रयाः । तत्र तु —

आर्यकाः कुरराश्चैव विदंशा भाविनस्तथा ॥ ९७ ॥

वर्णाश्चत्वार एवं स्युर्यथात्र ब्राह्मणादयः ।

ते च पञ्चसहस्रायुः स्थिरयौवनशालिनः ॥ ९८ ॥

सोममूर्ति महादेवं यजन्तः सुखमासते ।

वर्षनद्योऽपि सप्तात्राप्यनुतप्ता शिवामृता ॥ ९९ ॥

विपापा त्रिदिवा नन्दा सुकृता चामलोदकाः ।

लक्षाद् द्विगुण इक्षूदो द्विगुणोऽस्माच्च शास्त्रमलः ॥ १०० ॥

द्वीपस्तत्र च वर्षाणि सप्त शैलाश्च निम्नगाः ।

यथाहुः —

हरीतजीमूतरोहितवैद्युतमानसहंससुप्रभसंज्ञानि वर्षाणि । कुमुदकुमु-
दोलतवलाहकद्वेणकङ्कमहिषककुञ्जसंज्ञाः पर्वता ऋज्वायता इक्षूदसुरोदस्प-
र्शिनः ।

योनितोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी ॥ १०१ ॥

निवृत्तिश्च सुभद्रा च सप्त नद्यस्तु शास्त्रमले ।

कापिला अरुणाः पीताः कृष्णाख्याश्च द्विजादयः ॥ १०२ ॥

तत्रायुतायुषो मर्त्या धूमा वायुं यजन्ति ते ।

शास्त्रमलाद् द्विगुणो बाह्ये सुरोदो मण्डलाकृतिः ॥ १०३ ॥

द्विगुणोऽस्य कुशद्वीपस्तस्मिन् वर्षाणि सप्त वै ।

उद्भिदो वेणुमांश्चैव सुरयो लम्बनो धृतिः ॥ १०४ ॥

प्रभाकरश्च कपिलो वर्षाः स्फातजनाकुलाः ।

विद्रुमो द्युतिमान् हेमो हरिः पुष्टः कुशेशयः ॥ १०५ ॥

मन्दरश्चेति गिरयः सुराज्योदधिसङ्गताः ।

हेमाभास्ते च वर्षाणां सप्तसाहस्रजीविनः ॥ १०६ ॥

कुशाद् घृतोदाद् द्विगुणो बाह्येऽस्माद् द्विगुणः पुनः ।

क्रौञ्चद्वीपोऽस्य वर्षाणि सप्त नद्यश्च पर्वताः ॥ १०७ ॥

कुशलमनोहरोष्णकप्रवरान्धकारमुनिदुन्दुभिसंज्ञानि वर्षाणि । क्रौञ्चवा-
मनकारण्डकादिविस्पृग्विदपुण्डरीकदुन्दुभिस्वनसंज्ञाः पर्वताः ।

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ।

ख्यातिश्च पुण्डरीका च नद्यः प्राधान्यतः स्मृताः ॥ १०८ ॥

पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्याश्च ब्राह्मणादयः ।

जीवन्त्यष्टसहस्राणि वर्षाणि शिवपूजकाः ॥ १०९ ॥

कौञ्चात् तु द्विगुणो बाह्ये दध्यब्धिस्तस्य बाह्यतः ।

शाकद्वीपो द्विमानोऽस्मात् तत्र वर्षाणि सप्त हि ॥ ११० ॥

जलदकुमारसुकुमारमणिचक्रकुसुमोत्तरमोदकमहाद्रुमसंज्ञानि वर्षाणि ।

उदयो रैवतश्चैव श्यामाकोऽस्तगिरिस्तथा ।

आम्बिकेयस्तथा रम्यः केसरी चेति पर्वताः ॥ १११ ॥

सुकुमारी कुमारी च नन्दिनी वेणुका तथा ।

इक्षुका धेनुका चैव गभस्तिः सप्त निम्नगाः ॥ ११२ ॥

तत्र वर्णाश्च चत्वारो नगा मगधवामनाः ।

नन्दकाश्चैव पीताभाः सप्तसाहस्रजीविनः ॥ ११३ ॥

ते च सूर्यमूर्तिं यजन्ते ।

शाकाद् बाह्ये तु दुग्धाब्धिर्द्विगुणोऽस्माच्च पुष्करः ।

तत्र वर्षाचलस्त्वेको मानसोत्तरसंज्ञितः ॥ ११४ ॥

मध्येन वलयाकारः पञ्चाशद्भिः सहस्रकैः ।

योजनानां तु विस्तीर्णस्तावदुच्चो महागिरिः ॥ ११५ ॥

तस्य चोभयतो वर्षे तथैवोपरिमण्डले ।

अभ्यन्तरे महावीतो धातकी षण्डको बहिः ॥ ११६ ॥

तस्मिन् न नद्यो वर्णा वा द्विजप्रायोऽखिलो जनः ।

अयुतायुर्हेमवर्णो वायुमूर्तिं यजत्यसौ ॥ ११७ ॥

तस्य मानसोत्तरस्य मध्ये त्रिषहस्रयोजनप्रमाणो न्यग्रोधतरुः, तस्मिन्
ब्रह्मा सपरिवारो निवसति ।

तस्योत्तरेण हर्यर्धतनोः शम्भोर्निकेतनम् ।

वसत्यास्मिन् हरिहरः पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ ११८ ॥

पुष्कराद् द्विगुणो बाह्ये स्वादूदः सागरो महान् ।

तद्बाह्ये दशकोट्यास्ति योजनानां हिरण्यभूः ॥ ११९ ॥

स्वाद्बन्धेस्तु बहिर्हिरण्यधरणिः कोट्या दशास्या बहि-

र्लोकालोकगिरिस्तु मेरुसदृशश्चोत्सेधविस्तारतः ।

निर्जीवः खलु बाह्यतोऽस्य तु तमः षट्त्रिंशता कोटिभि-

र्वाणि चाण्डकटाहतः स च घनः षट्कोटिगव्यूतिभिः ॥ १२० ॥

अलमतिप्रसङ्गेन । अथ भुवर्लोकादयः कथ्यन्ते । तद् यथा —

भूमेरूर्ध्वं योजनानां लक्षे सूर्यगतिः स्मृता ।

योजनैर्नवसाहस्रैर्विष्कम्भोऽर्करथस्य तु ॥ १२१ ॥

तत्प्रभामण्डलं तस्मात् त्रिगुणं हि प्रमाणतः ।

सूर्यलोकास्तु विज्ञेयो विमानशतसङ्कुलः ॥ १२२ ॥

उद्यानैः सप्तभै रम्यैः शोभितः सजलाशयैः ।

सूर्यालक्षे स्थितश्चन्द्रस्तस्मान्नक्षत्रमण्डलम् ॥ १२३ ॥

तस्माद् द्विलक्षे तु बुधो द्विलक्षेऽस्माच्च भार्गवः ।

द्विलक्षे भार्गवाद् भौमस्तद्वद् भौमाद् बृहस्पतिः ॥ १२४ ॥

योजनानां द्विलक्षे तु गुरोः सौरिर्व्यवस्थितः ।

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दगौराश्च वाजिनः ॥ १२५ ॥

दश ते च वहन्त्येनं सोमलोकास्तु स स्मृतः ।

रक्ताष्टाश्वो बुधस्यापि रथो लोकः स तस्य हि ॥ १२६ ॥

कुसुम्भसदृशाष्टाश्वः शुक्रस्यापि रथो महान् ।

पद्मरागारुणाष्टाश्वो हैमो भौमस्य वै रथः ॥ १२७ ॥

रथस्तु पाण्डराष्टाश्वो हैमः ख्यातो बृहस्पतेः ।

रथस्तु शबलाष्टाश्वः शनेरपि हिरण्मयः ॥ १२८ ॥

धूसरस्तु रथो राहोर्नीलाष्टाश्वैरलङ्कृतः ।

अष्टौ धूम्राणाः केतोरश्वा युक्ता रथे स्मृताः ॥ १२९ ॥

तयोरपि स्थितिः ख्याता ह्यधस्तात् सोमसूर्ययोः ।

एतेषां तु पृथग् लोकास्त एव परिकीर्तिताः ॥ १३० ॥

शनेरुपरि लक्षे तु सप्तर्षीणां तु मण्डलम् ।

तेषामुपरि लक्षे तु मेघीभूते ध्रुवः स्थितः ॥ १३१ ॥

ग्रहनक्षत्रताराणां प्रेरको ध्रुव ईरितः ।

भूमेरूर्ध्वं भुवर्लोकास्त्वा नक्षत्रपथात् स्मृतः ॥ १३२ ॥

तदूर्ध्वमा ध्रुवपथात् स्वर्लोकः स्वर्ग उच्यते ।
 तत्रामरावती नाम शक्रस्य तु पुरी शुभा ॥ १३३ ॥
 देवर्षीणां विमानानि तत्र सन्ति सहस्रशः ।
 आदित्यानां च रुद्राणां वसूनामश्विनोरपि ॥ १३४ ॥
 मरुतामपि साध्यानां पुराणि भुवनानि च ।
 स्वदिक्षु लोकपालानां राजर्षीणां च मुख्यशः ॥ १३५ ॥
 गन्धर्वाणां पितॄणां च विमानानि सहस्रशः ।
 अन्येषां च स्वर्गजितामावासः स्वरि(तः ? ति)स्मृतः ॥ १३६ ॥
 ते स्वपुण्यानुरूपांस्तु भोगांस्तत्रैव भुञ्जते ।
 शिशुमारो ध्रुवस्यापि स्यादाधारो ध्रुवोपरि ॥ १३७ ॥
 ध्रुवात् कोट्या महर्लोको वैमानिकसुरैर्वृतः ।
 कोटिद्वये महर्लोकादूर्ध्वं लोको जनः स्मृतः ॥ १३८ ॥
 तत्र सिद्धा विमानेषु मानसा ब्रह्मणः सुताः ।
 निवसन्ति महात्मानो योगैश्वर्योपबृंहिताः ॥ १३९ ॥

आ ब्रह्मप्रलयादिति यावत् ।

कोटित्रये जनादूर्ध्वं तपोलोकः प्रतिष्ठितः ।
 वैराजा नाम ये देवास्तपोलोके वसन्ति ते ॥ १४० ॥

आ ब्रह्मप्रलयात् तेऽपि वसन्ति ।

तपोलोकात् तु षट्कोट्यामूर्ध्वं सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
 ब्रह्मलोकस्तु स ज्ञेय आब्रह्मप्रलया स्थितिः ॥ १४१ ॥
 प्रजानां पतयश्चैव दक्षभृग्वादयोऽमलाः ।
 ब्रह्मलोकजितोऽन्ये च यतयो ब्रह्मवादिनः ॥ १४२ ॥
 यत्र यद् ब्रह्मसदनं न तद् वर्णयितुं क्षमम् ।
 सत्यलोकात् ततः किञ्चिदूर्ध्वं विष्णुपुरं महत् ॥ १४३ ॥
 तेजोमयमपर्यन्तं तत्र वर्णयितुं क्षमम् ।
 ब्राह्मे ब्रह्मा सदैवास्ते पूज्यमानः सुरादिभिः ॥ १४४ ॥

स्वलोके भगवान् विष्णुरास्तेऽनन्तासने विभुः ।
 योगिभिः कुमुदाद्यैश्च विष्वक्सेनादिभिर्गणैः ॥ १४५ ॥
 चक्राद्यैश्चायुधैः सर्वैर्मूर्तिमद्विरूपस्थितः ।
 योजनानां तथा कोट्यां विष्णुलोकादथोपरि ॥ १४६ ॥
 रुद्रलोकः स्थितस्तस्य प्रभावो नोदितुं क्षमः ।
 ज्योतिःप्राकारसंवीतः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ १४७ ॥
 तत्र दिव्यवपुर्देवस्त्रिणेत्रश्चन्द्रशेखरः ।
 स्कन्दनन्दिगणेशैश्च गणैर्दिव्यवपुर्धरैः ॥ १४८ ॥
 उपास्यमानः सारूप्यमुक्तैरीशार्चने रतैः ।
 आस्ते दिव्यविमानेषु शश्वद् देव्या सहोमया ॥ १४९ ॥

अलं वर्णनया । भूरादिसत्यान्तेषु पृथक् पृथक् रुद्रास्तदधिपतयः सप्त ।

यथा मञ्जरी —

“भूमौ सुभद्रो दिवि वायुवेगः स्वर्गे महावीर्यपराक्रमाख्यः ।
 रुद्रो महःस्थो विकटः परस्तात् ख्यातो महाकालकवैद्युतौ च ॥
 सत्यलोकेश्वरः श्वेतस्ततो ब्रह्मा ततो हरिः ।
 रुद्रः स्वयं स्वलोकेशो ब्रह्माण्डान्तरितीरितः ॥”

अथ ब्रह्माण्डाद् बाह्यतो दशादिक्षु प्रतिदिशं दश दश रुद्रपुराणि ।
 तेषां नामधेयानि कपालीशादिशतरुद्राणां संज्ञावेद्यानि । अत्र पौष्करे —

“लक्षयोजनमानानां तेजिष्ठानां पृथक् पृथक् ।
 तत्रास्ते रुद्रशक्तिर्या भद्रकाली स्वकैर्गणैः ॥
 एवं कालाग्निपूर्वाणि भुवनानि पृथक् पृथक् ।
 भद्रकालीपुरान्तानि पृथ्वीतत्त्वे स्थितानि हि ॥”

अष्टोत्तरशतं भुवनानीति यावत् ।

अतः परं च भुवनान्यतत्त्वादिस्थितानि हि ।
 तानि चातिविशालानि तेजिष्ठानि महान्ति च ॥ १५० ॥

स्वरूपतो वर्णयितुं तानि वर्षशतैरपि ।

न शक्यानि यतो ग्रन्थगौरवाद् भयमस्त्यतः ॥ १५१ ॥

समासेन प्रदर्श्यन्ते भुवनाध्वप्रसिद्धये ।

पृथ्वीतत्त्वादथासत्त्वं ज्ञेयं दशगुणं ततः ॥ १५२ ॥

तेजस्तत्त्वं दशगुणं ततो वायुस्ततो वियत् ।

एवमुत्तरोत्तरप्रमाणानि पृथिव्यादिमायान्तानि तत्त्वानि विष्ठात् । शुद्ध-
विद्येश्वरसदाशिवतत्त्वानि क्रमात् सहस्रगुणितानि । शक्तिशिवतत्त्वयोरनाद्य-
न्तत्वात् परिमाणं नोच्यते ।

अथाबादिषु तत्त्वेषु भुवनानां व्यवस्थितिः ॥ १५३ ॥

क्रमात् पृथग् वेदितव्या देशिकैरध्वशोधने ।

गुह्याष्टकाख्यमसत्त्वेऽप्यमरेशादिकं न + ॥ १५४ ॥

वह्नौ गुह्यातिगुह्याख्यं हरिश्चन्द्राद्यमष्टकम् ।

+ + + + + वित्राख्यमष्टकं वायुतत्त्वगम् ॥ १५५ ॥

ब्रह्मापदाद्यं भीमाख्यमष्टकं व्योम्नि संस्थितम् ।

अहङ्कारान्तकं गन्धतन्मात्राद्येषु सप्तसु ॥ १५६ ॥

तत्त्वेषुच्छगलण्डादिर्वाष्टकमवस्थितम् ।

पैशाचाद्यं तथा बुद्धौ देवयोन्यष्टकं स्थितम् ॥ १५७ ॥

योन्यष्टकाद्यं प्रकृतावकृताद्यमिह स्थितम् ।

स्थलेश्वराष्टकं यत् तु महादेवादिकं तु तत् ॥ १५८ ॥

कालतत्त्वे च मायायां विज्ञेयं स्याद् व्यवस्थितम् ।

वामाज्येष्ठादि नवकं शुद्धविद्याह्वये स्थितम् ॥ १५९ ॥

अनन्तेशादिसंज्ञाभिर्विद्येशभुवनाष्टकम् ।

स्थितमीश्वरतत्त्वे तु विज्ञेयं देशिकैः क्रमात् ॥ १६० ॥

सदाशिवाख्यं भुवनं स्थितं तत्त्वे सदाशिवे ।

निवृत्त्यादिकलासंज्ञं बिन्दौ भुवनपञ्चकम् ॥ १६१ ॥

इन्द्रिकाद्यं पञ्चकं तु स्थितं नादे ततः परम् ।

व्यापिन्याद्यं पञ्चकं यच्छक्तावेव व्यवस्थितम् ॥ १६२ ॥

भुवनानां चतुर्विंशत्यधिकं यच्छतद्वयम् ।

संक्षेपात् कथितं विद्यादेवं तत्त्वाध्वानि स्थितम् ॥ १६३ ॥

पूर्णान्येतानि सर्वाणि भुवनानि शरीरिभिः ।

प्रवर्तितैः शिवेच्छातः क्रियाशक्तेर्विजृम्भणान् ॥ १६४ ॥

भूलोकान्तं शरीराणि पार्थिवैर्द्युणुकादिभिः ।

प्रारब्धान्यधिकैर्यस्मात् पार्थिवानि भवन्ति हि ॥ १६५ ॥

भुवर्लोकैर्दिलोकेषु देवानां तनवः शुभाः ।

आप्याश्च तैजसाः काश्चिद् वायवीयाः स्मृताः काचित् ॥ १६६ ॥

सर्वत्रयं स्मृतं व्योम पुर्यष्टकाविमिश्रितम् ।

मनःप्रभृति तत्त्वेषु मायान्तं भुवनेष्विह ॥ १६७ ॥

तत्तत्तत्त्वप्रधानाः स्युर्देहा मायाविजृम्भणान् ।

शुद्धविद्यादिशक्यन्तमणूनां देहसङ्ग्रहाः ॥ १६८ ॥

विद्यामयः स्मृतः शुद्धः शुद्धतत्त्वोपलम्भणान् ।

किन्तु निर्वाणदीक्षादौ प्राक्कर्मागामिकर्माभिः ॥ १६९ ॥

भुवनेष्वेषु सर्वेषु पशुः शोध्यः शरीरवान् ।

अलमतिविस्तरेण ।

अथाध्वनां क्रमादेषां व्याप्तिः सम्यङ् निरूपयते ॥ १७० ॥

पृथ्वीतत्त्वं क्षवर्णश्च मन्त्रौ हृदयसंयुक्ता ।

कालाग्निरपि कृद्माण्डो हाटकं ब्राह्मवैष्णवं ॥ १७१ ॥

रौद्रं च भुवनान्यन्तर्ब्रह्माण्डस्य भर्तृन्त पदम् ।

अण्डाद् बहिः शतरुद्रा दशदिशु व्यवस्थिताः ॥ १७२ ॥

कपालीशो ह्यजो बुद्धो वज्रदेहः प्रमर्दनः ।

विभूतिरव्ययः शारता पिनाकी त्रिदशाधिपः ॥ १७३ ॥

अग्नी रुद्रो हुताशश्च पिङ्गलः सनको हरः ।

ज्वलनो दहनो बभ्रुर्भस्मान्तश्च क्षयान्तकः ॥ १७४ ॥

यमो मृत्युर्हरो धाता विधाता च तथापरः ।
 कर्ता चैव च संयोक्ता वियोक्ता धर्म एव च ॥ १७५ ॥
 तद्वद् धर्मपतिस्तत्र दशमो दक्षिणे स्थितः ।
 निर्ऋतिर्मारणो हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयानकः ॥ १७६ ॥
 ऊर्ध्वकेशो विरूपाक्षो धूम्रलोहितदंष्ट्रिणः ।
 बलश्चातिबलश्चैव पाशहस्तो महाबलः ॥ १७७ ॥
 श्वेतोऽथ जयभद्रश्च दीर्घहस्तो जलान्तकः ।
 मेघनादः सुनादश्च वारुण्यां दश संस्थिताः ॥ १७८ ॥
 शीघ्रो वायुर्वायुवेगः सूक्ष्मस्तीक्ष्णः क्षयान्तकः ।
 पञ्चान्तकः पञ्चशिखः कपर्दी मेघवाहनः ॥ १७९ ॥
 रुद्रा दशैते विख्याता वायव्यां दिशि संस्थिताः ।
 निधीशो रूपवान् धन्यः सौम्यदेहो जटाधरः ॥ १८० ॥
 लक्ष्मीधरो रत्नधरः श्रीधरश्च प्रसादनः ।
 प्रकाशो दशमश्चेति कौबेर्यां दिशि संस्थिताः ॥ १८१ ॥
 विद्याधिपेशसर्वज्ञा ज्ञानभुग् वेदपारगः ।
 सुरेशशर्वज्येष्ठाश्च भूतपालो बलिप्रियः ॥ १८२ ॥
 वृषो वृषधरोऽनन्तः क्रोधनो मारुताशनः ।
 प्रसनोदुम्बरीशश्च फणीन्द्रो वज्रदंष्ट्रिणौ ॥ १८३ ॥
 शम्भुर्विभुर्गणाध्यक्षस्त्रिदशस्त्रिदशेश्वरः ।
 संवाहश्च विवाहश्च लिप्सुर्ब्रह्मा त्रिलोचनः ॥ १८४ ॥
 तेषामुपरि रुद्राणां वीरभद्रो व्यवस्थितः ।
 भद्रकाल्याश्च भुवनमेवमष्टाधिकं शतम् ॥ १८५ ॥
 भुवनानि क्रमोक्तानि रुद्राणां स्वाख्यया पृथक् ।

ओं नमोऽनन्त नमः शिवाय ओं नमोनमः सर्वद शर्व शिव सूक्ष्म
 सूक्ष्म शब्द शब्द पिङ्ग पिङ्ग पतङ्ग पतङ्ग तुरुङ्ग तुरुङ्ग साक्षिन् साक्षिन् पूर्व-
 स्थित असंस्तु(त ? ता)संस्तुत अनर्चिता(न)र्चित ब्रह्मविष्णुरुद्रपर सर्वसान्निध्य-

कर सर्वभूतसुखप्रद भवोद्भव भव भव सर्व सर्व प्रथम प्रथम मुञ्च मुञ्च
योगाधिपते महातेजः सद्भावेश्वर महादेव । थप्र=२८ ॥

मन्त्रावसानिकपदान्महादेवपदावधि ॥ १८६ ॥

विलोमतः पदानि स्युरष्टाविंशतिसंख्यया ।

इत्यध्वपञ्चकं षष्ठ्या निवृत्तिकलया समम् ॥ १८७ ॥

व्याप्तं सञ्चिन्तनीयं स्यादध्वषट्कं विभागतः ।

आपोऽग्निर्वायुराकाशो गन्धश्च रसरूपके ॥ १८८ ॥

स्पर्शः शब्दश्च वाक्पादपाणिपायुभगानि च ।

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणश्चेतीन्द्रियाणि च ॥ १८९ ॥

मनोहृद्भारबुद्ध्याख्यं तदन्तःकरणत्रयम् ।

सर्वेषां त्रिगुणाय स्यात् प्रकृतिः कारणं परा ॥ १९० ॥

त्रयोविंशतितत्त्वानि विलोमादिति संख्यया ।

हसपाः शवला रो यमभवाः फपना धदौ ॥ १९१ ॥

यंतणा ढडठा टश्च त्रयोविंशतिवर्णकाः ।

शिरश्च वामदेवाख्यौ मन्त्रौ तद्वत् पुराणि तु ॥ १९२ ॥

षट्पञ्चाशत् क्रमेण स्युरमरेशादिनामभिः ।

अमरेशः प्रभासश्च नैमिशः पुष्कराषढी ॥ १९३ ॥

डिण्डी मुण्डी भारभूतिरित्यष्टावम्बुतत्त्वके ।

हरिश्चन्द्रश्च श्रीशैलो जरूपीशाम्रादकेश्वरौ ॥ १९४ ॥

मध्यमेशो महाकालः केदारो भैरवस्तथा ।

भुवनाष्टकमित्येतत् तेजस्तत्त्वे व्यवस्थितम् ॥ १९५ ॥

गया चैव कुरुक्षेत्रं नोखलं कनखालकम् ।

विमलेशोऽट्टहासश्च महेन्द्रो भीमकेश्वरः ॥ १९६ ॥

इत्यष्टौ भुवनानि स्युर्वायुतत्त्वगतानि तु ।

वज्रापदो रुद्रकोटिरविमुक्तो महालयः ॥ १९७ ॥

गोकर्णभद्रकर्णौ च स्वर्णाक्षः स्थाणुरित्यपि ।

भुवनाष्टकमाकाशसंज्ञे तत्त्वे व्यवस्थितम् ॥ १९८ ॥

लगलण्डो द्विरण्डश्च माकोटो मण्डलेश्वरः ।
 कालक्षरः शङ्कुकर्णः स्थूलेशोऽथ स्थलेश्वरः ॥ १९९ ॥
 प्रारभ्य गन्धतन्मात्रमहङ्कारान्तमध्वनि ।
 स्थितानि भुवनान्यष्टावेतानि च यथाक्रमम् ॥ २०० ॥
 पैशाचं गक्षमं याक्षं गान्धर्वं चैन्द्रसौम्यके ।
 प्राजेशं ब्राह्ममित्येतद् देवयोन्यष्टकं धियाम् ॥ २०१ ॥
 अकृतं च कृतं चैव भैरवं ब्राह्मवैष्णवे ।
 कौमारमौमं श्रीकण्ठमिति योगाष्टकं स्थितम् ॥ २०२ ॥
 गुणप्रकृतितत्त्वे तु स्थितमेतत् तु भौवनम् ।
 अष्टकैः सप्तभिस्त्वेवं षट्पञ्चाशद् यथाक्रमम् ॥ २०३ ॥
 भुवनानि स्थितान्येवं पदान्यप्येकविंशतिः ।

महेश्वरं परमात्मन् सर्वं शिवं निधनोद्भवं निधनं अनिधनं ओं स्वः ओं
 भुवः ओं भूः धू धू ना ना ना अनादे अभस्स अधूम अनग्ने अरूप ज्योति
 ज्योति तेज तेज प्रथम प्रथम अरूपिन् अरूपिन् । धन-२१ ॥

महेश्वराख्यात् प्रारभ्य स्यादरूपिपदावधि ॥ २०४ ॥
 एवं पञ्चविधाध्वा स्यात् प्रतिष्ठाकलया समम् ।
 षष्ठ्या व्याप्तं विचिन्त्यं स्यात् षोडशव्यातिरीदृशी ॥ २०५ ॥
 अथ विद्याकलायां तु पुरुषो राग एव च ।
 द्विविद्या च कला नियतिः काल एव च ॥ २०६ ॥
 मा । च सप्त तत्त्वानि वर्णमस्तकसंयुतम् ।
 अष्टत्रादलचङ्गा वक्ष्य शिखाघोरौ च मन्त्रकौ ॥ २०७ ॥
 वामानि भुवनानि स्युः सप्तविंशतिसंख्यया ।
 वामो भीमस्तथैवोग्रो भवश्चेशान एव च ॥ २०८ ॥
 एकवीरश्च पुरुषे षडेते भुवनेश्वराः ।
 प्रचण्डोर्मापतिश्चाजो ह्यनन्तश्चैकरुद्रकः ॥ २०९ ॥
 रागतत्त्वे स्थितं त्वेतद् भुवनानां तु पञ्चकम् ।
 क्रोधचण्डार्बुशुद्धायां विद्यायां तु व्यवस्थितौ ॥ २१० ॥

नियत्यां ज्योतिसंवर्ती ततः सुकरसंज्ञितः ।

पञ्चान्तकैकवीरौ च शिवदश्च कलागताः ॥ २११ ॥

काले चेति यावत् ।

महादेवो वामदेव उद्भवश्चैकपिङ्गलः ।

एकनेत्रस्तथेशानो भुवनेशस्ततः परः ॥ २१२ ॥

अङ्गुष्ठमात्र इति चाप्यष्टावेते स्थलेश्वराः ।

कालतत्त्वाच्च मायायां भौवनी सप्तविंशतिः ॥ २१३ ॥

व्यापिन्व्यापिन् व्योम्निव्योम्नि अचेतनाचेतन महेश्वरपराय ज्योती-
रूपाय सर्वयोगाधिपाय सर्वविद्याधिकृताय अनिधनाय गोप्त्रे गुह्यातिगुह्याय
ओं नमोनमः सद्योजातमूर्तये वामदेवगुह्याय अधोरहृदयाय तत्पुरुषवक्त्राय
ईशानमूर्धाय शिवाय सर्वप्रभवे ओं नमः शिवाय ध्यानाहाराय ।

व्यापिन्निति समारभ्य ध्यानाहारपदावधि ।

पदानां विंशतिश्चात्र स्याद् विद्याकलयाखिलम् ॥ २१४ ॥

व्याप्तं संचिन्तयेदेवं षड्विधाध्वव्यवस्थितिः ।

अथ शान्तिकलायां स्याच्छुद्धविद्येश्वरावपि ॥ २१५ ॥

सदाशिवश्च तत्त्वानि त्रीणि तस्यां स्थितानि हि ।

वर्णास्त्रयः स्युर्गणका मन्त्रौ कवचपूरुषौ ॥ २१६ ॥

अष्टादशैव भुवनान्यत्र वामादिसंज्ञया ।

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली कलविकरणी ॥ २१७ ॥

बलविकरणी चैव बलप्रमथनी तथा ।

सर्वभूतदमन्येका नवमी तु मनोन्मनी ॥ २१८ ॥

शुद्धविद्याहये तत्त्वे स्थितान्येवमनुक्रमात् ।

अनन्तेशश्च सूक्ष्मश्च ततश्चापि शिवोत्तमः ॥ २१९ ॥

एकनेत्रश्चैकरुद्रस्त्रिमूर्तिश्च तथापरः ।

श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च भुवनानीश्वराह्वये ॥ २२० ॥

सदाशिवाख्यं भुवनं स्थितं तत्त्वे सदाशिवे ।

नित्ययोगिने योगपीठसंस्थाय शाश्वताय भुवाय अनाश्रिताय अना-
थाय अनन्ताय शिवाय सर्वव्यापिने व्योमरूपाय व्योमव्यापिने नमः ।

पदान्येकादशात्रैव नित्ययोगिनआदितः ॥ २२१ ॥

व्योमव्यापिपदान्तानि स्थितान्येवं तु पञ्चधा ।

षष्ठ्या तु शान्तिकलया व्याप्तान्येवं विचक्षणैः ॥ २२२ ॥

षड्विधाध्वमयी व्याप्तिर्बोद्धव्या क्रमशो भवेत् ।

तथैव शान्त्यतीतायां शिवतत्त्वं व्यवस्थितम् ॥ २२३ ॥

वर्णाः षोडश सर्गाद्याः स्वराः स्युस्ते विलोमतः ।

अक्षेशानौ तथा मूलं त्रयो मन्त्रा भवन्ति हि ॥ २२४ ॥

निवृत्त्यादीनि भुवनान्यत्र पञ्चदशैव हि ।

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च ॥ २२५ ॥

शान्त्यतीतेति हि कलाः स्युर्बिन्दौ भुवनानि हि ।

इन्द्रिका दीपिका रोचिर्मोचिका चोर्ध्वगा तथा ॥ २२६ ॥

भुवनादीनि पञ्च स्युस्तानि नादकलाः खलु ।

व्यापिनी व्यामरूपा चाप्यनन्ता चाप्यनाधया ॥ २२७ ॥

अनाश्रिता चेति कलाः शार्काः स्युर्भुवनान्यपि ।

मन्त्राद्यं प्रणवं यत् तद् विलोमेनान्तकं तु तत् ॥ २२८ ॥

पदमेकं भवेदेवमध्वायं पञ्चधोदितः ।

शान्त्यतीतकलाव्याप्तं विद्यादित्यध्वनां क्रमात् ॥ २२९ ॥

षड्विधा व्याप्तिरुद्दिष्टा शैवागमविनिर्णयात् ।

भुवनानि चतुर्विंशत्यधिकं तु शतद्वयम् ॥ २३० ॥

षडध्वज्ञानवान् मुच्येन्मोचयेच्च भवार्णवात् ।

एकत्राध्वा षड्विधैकादश स्युर्मन्त्रास्त्वेकं चाप्यशीतिः पदानि ।

षट्त्रिंशच्चाप्यत्र तत्त्वानि वर्णाः पञ्चाशत् स्युः पञ्चसंख्याः कलाश्च ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे

क्रियापादे षडध्वनिर्णयपटलः सप्तदशः ।

अथाष्टादशः पटलः ।

अथ निर्वाणदीक्षार्थं कृतनित्यक्रियो गुरुः ।

संहृतोदितसंहारः सकलीकृतविग्रहः ॥ १ ॥

विकिरक्षेपपूर्वेष्टशिवकुम्भास्त्रवर्धनिः ।

मण्डलेऽन्यतमे शम्भुमावाह्याभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ २ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“न पुष्पैर्न च गन्धेन नाक्षतैः सलिलेन वा ।

रजसां रचनाभङ्गं कुर्यात् ”

इति ।

त(स्या ? स्मि)न्मण्डलपर्यन्ते यजेच्चित्रपटे यथा ।

कुण्डेऽग्नौ शिवमिष्टा तु प्राग्वत् सन्तर्प्य चोदितैः ॥ ३ ॥

विकीर्य च बलिं त्यक्त्वा पवित्रं वाग्यतो गुरुः ।

क्षालिताङ्घ्रिकरः सम्यगाचान्तो धवलाम्बरः ॥ ४ ॥

सोष्णीषः सोत्तरीयश्च सपवित्राङ्गुलीयकः ।

सकलीकृतदेहस्तु सामान्यार्घ्येण पूर्ववत् ॥ ५ ॥

प्रोक्षणनिरीक्षणभसितताडनेत्रबन्धमण्डपप्रवेशशिष्यान्तःकरणशोधन-
पुष्पाञ्जलिक्षेपाशिवकुम्भामिपूजनकुण्डोपान्तनाडीसन्धानमन्त्रसमर्पणपूर्णाहुत्यन्तं
कर्म सर्वं समयदीक्षोक्तं कृत्वा

ततो मूलाङ्गमन्त्राणां क्रमात् कुर्वीत दीपनम् ।

अभियुक्तशिखाबीजसम्पुटानि पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥

तारादीनि फडन्तानि मूलाङ्गार्णान्युदीर्य तु ।

त्रिवारं जुहुयादाज्यं मन्त्रस्फूर्तिकरं तु तत् ॥ ७ ॥

अथोर्ध्वकायशिष्यस्य नवतन्तुविनिर्मितम् ।

देहायतं तु यत् सूत्रं पाशसंयमनाय तत् ॥ ८ ॥

अक्षप्रोक्षितं कवचावगुण्ठितमभ्यर्चितं शिष्यशिखायां बद्ध्वा दक्षिण-
पादाङ्गुष्ठाक्रान्तं भुक्त्यर्थं लम्बयेत् पुरुषस्य । स्त्रियो वामाङ्गुष्ठाक्रान्तम् । सु-
मुक्षोः पादाङ्गुष्ठे पूर्वं बद्ध्वा पश्चात् शिखायां तत्सूत्रं शिष्यसुषुम्नात्मकं
ध्यात्वा ओं हुं सुषुम्नायै नमः इति शिष्यदेहात् सुषुम्नां संहारिण्या संगृह्य
तत्सूत्रे संयोज्य सुषुम्नात्मकं सूत्रं सम्पूज्य बर्मणावगुण्ठय सान्निध्यार्थं त्रिवारं
जुहुयात् ।

सम्प्रोक्ष्य हृत्प्रदेशेऽस्य सन्ताड्य कुसुमास्त्रतः ।
 स्वयं रेचकमार्गेण हुङ्कारं प्लुतमुच्चरन् ॥ ९ ॥
 प्रविश्य शिष्यहृदयं नाड्या तच्चेतनां स्मरन् ।
 स्फुरत्तारकसङ्काशमाच्छिद्यस्त्रेण मूलतः ॥ १० ॥
 आकृष्य द्वादशान्तःस्थां शिवशक्त्युपबृंहिताम् ।
 हस्तम्पुटां गृहीत्वा तु संहारिण्याथ सूत्रके ॥ ११ ॥
 संयोज्य व्यापकं ध्यात्वा कवचेनावगुण्ठय तु ।
 सम्पूज्य जुहुयात् तिस्रो मूलेनैवाहुतीस्ततः ॥ १२ ॥
 ताडनग्रहणादीनि सूत्रे कुर्यान्न विग्रहे ।
 मलादिपाशांस्तत्सूत्रे पशोरस्य विभावयेत् ॥ १३ ॥
 भोक्तृत्वभोगविषयशरीरजननक्षमान् ।
 ततश्च शान्त्यतीताद्याः कलाः सूत्रे नियोजयेत् ॥ १४ ॥

तद् यथा —

बीजमूलमतीतायां मूर्ध्नि स्थानमुदाहृतम् ।
 तथैव सान्तो वायुस्थो द्वादशस्वरबिन्दुमान् ॥ १५ ॥
 शान्तिबीजं ललाटात् तत्स्थानं कण्ठावधि स्मृतम् ।
 बह्व्यारूढं शिखाबीजं विद्याबीजमिति स्मृतम् ॥ १६ ॥
 कण्ठादानाभि तत्स्थानं विद्या तत्र व्यवस्थिता ।
 सान्तं शान्तसमारूढं चतुर्थस्वरबिन्दुमत् ॥ १७ ॥
 बीजमुक्तं प्रतिष्ठाया नाभेरागुल्फकस्थितिः ।
 पृथ्वीदीर्घयुतं सान्तं निवृत्त्या बिन्दुशेखरम् ॥ १८ ॥
 बीजं स्यात् स्थानमप्युक्तं गुल्फात् पादतलान्तकम् ।
 तारादिकैः कलाबीजैः कलाख्याः सचतुर्थिकाः ॥ १९ ॥
 ताडने हुंफडन्ताः स्युर्नमोन्ताः स्युर्नियोजने ।
 स्वाहान्ताश्चैव होमे स्युरेवं सूत्रे नियोजयेत् ॥ २० ॥

एवं मूर्धादिषूक्तस्थानेषु पुष्पास्त्रेण सन्ताड्यातीताद्याः कलाः संहारिण्या मुद्रया संहृत्य तत्र तत्र सूत्रे क्रमेण नियोजयेत् । तदनु व्याप्यव्यापकभावं विभावयेत् । तत्र तत्त्वभुवनपदवर्णमन्त्राः व्याप्याः मलकर्ममायेशा व्यापकाः । पुनर्मलादयो व्याप्याः शान्त्यतीतादयो व्यापकाः । अत एव व्यापकानां ग्रहणात् तत्त्वाद्या मलादयश्च सङ्गृहीता भवन्तीत्युपस्थापिताभिः संनिहिताः शोधिताभिः शुद्धाः स्युः ।

अथ सूत्रस्थितान् पाशान् स्वमन्त्रादभिपूज्य तु ।

उद्दीपनं विधातव्यं वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥ २१ ॥

ताराघोरकलाबीजैः कलानाम् चतुर्थियुक् ।

हुंफडन्तं क्रमादुक्त्वा जुहुयादाहुतित्रयम् ॥ २२ ॥

अतीतादिकलानां स्यादेवमुद्दीपनं ततः ।

पाशबन्धो विधातव्यस्त्वतीतादिकलाक्रमात् ॥ २३ ॥

तद् यथा — प्राग्वत् पुष्पास्त्रेण सन्ताड्यं प्रणवपूर्वं मूलसम्पुटान्यतीतादिकलाबीजान्युच्चार्य भगवन्! शान्त्यतीतकलापाशमलमायाकर्मशक्तित्वभुवनमन्त्रवर्णपदा(ध्व)व्यापकं बन्ध बन्ध हुंफडित्यतीतादिकलास्थाने सूत्रे ग्रन्थिं कुर्यात् । एवं शान्त्यतीतादिनिवृत्त्यन्तं क्रमेण पाशबन्धनाय ग्रन्थिं कुर्यात् । तदनु,

शरावसम्पुटे कृत्वा पाशांस्तन्मन्त्रहोमतः ।

सम्पात्य मण्डले शम्भोर्निवेद्याभ्यर्च्य देशिकः ॥ २४ ॥

तस्माच्च नीत्वा रक्षार्थं शिवकुम्भे निवेदयेत् ।

अत्र मन्त्रदीपनसूत्रावलम्बनसुपुम्नासंयोगशिष्यचैतन्ययोजनमलादिसङ्कल्पशान्त्यतीतादिताडनग्रहणसंयोगपूजासमर्पणोद्दीपनपाशबन्धनसम्पातशिवकुम्भसमर्पणानि चतुर्दश कर्माणि विधाय,

ततः कुम्भशिवाग्नीनां प्र(माणं ? णामं) कारयेदमुम् ॥ २५ ॥

मण्डपाद् बाह्यतः प्राच्यां पृथक्मण्डलकत्रये ।

क्रमात् समुपविष्टाय शिष्याय प्राङ्मुखाय तु ॥ २६ ॥

पञ्चगव्यं चरोरंशं दन्तकाष्ठं च दापयेत् ।

पलाशपत्रे मुक्त्यर्थं भुक्तयेऽश्वत्थपत्रके ॥ २७ ॥

तत्राष्टप्रासमात्रं चरुं प्राशयेन्नाधिकमिति केचित् ।

दन्तकाष्ठाग्रपातेन ज्ञेयमस्य शुभाशुभम् ।

सोमेन्द्रेणाग्रपातस्तु शुभोऽन्याशास्वशोभनः ॥ २८ ॥

अशुभे शान्तिहोमं तु कुर्यान्मूलाङ्गदक्षिणैः ।

सुलिप्तायां क्षितौ दर्भसंस्तरं सोत्तरच्छदे ॥ २९ ॥

प्राचीनेऽस्त्रशतालब्धे भुक्तये प्राक्छिराः स्वपेत् ।

मुमुक्षुर्भस्मशय्यायां स्वपेद् दक्षिणमस्तकः ॥ ३० ॥

हृन्मन्त्रेणालभेतैनं बध्नीयात् तच्छिखां हृदा ।

अस्त्रेणाच्छादयेच्चैनं सितसूक्ष्मेण वाससा ॥ ३१ ॥

तिलसर्षपरक्षाभिः शय्याबाह्वे त्रिवर्तुलम् ।

प्राकारवद् विलिख्यास्त्राद् दत्त्वा भूतबलिं ततः ॥ ३२ ॥

स्वयं च पञ्चगव्यादि प्राश्याचम्य गुरुः स्वपेत् ।

तत्र प्रातः समुत्थाय स्नात्वानुष्ठितनैत्यकः ॥ ३३ ॥

शिवानुज्ञातमाभीय शिष्यं स्वप्नान् विचारयेत् ।

अनुमोद्य शुभे स्वप्ने त्वशुभे तस्य शान्तये ॥ ३४ ॥

तिलाज्यचरुसिद्धार्थमन्त्रसंहितया शतम् ।

अघोरेण तथास्त्रेण हुत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥ ३५ ॥

द्विजेभ्यश्चैव लिङ्गिभ्यः सुस्वप्नोऽस्त्विति वाचयेत् ।

अथ स्वप्नास्त्वशुभाः शुभाश्च कथ्यन्ते ।

श्रुतो दृष्टोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कथितस्तथा ॥ ३६ ॥

एष्यंश्च सूचकश्चेति स्वप्नः सप्तविधः स्मृतः ।

पञ्चैषु विफलाः पूर्वे फलदौ चेप्यसूचकौ ॥ ३७ ॥

स्वाङ्गकेशनखानां च दन्तप्रासादवेश्मनाम् ।

देवचन्द्रार्कवृक्षाणां पातश्चोच्चात् तथात्मनः ॥ ३८ ॥

क्षौराम्यङ्गविवाहाश्च शृङ्गिभिर्दंष्ट्रिभिः खगैः ।
 पीडनं वा खरोष्ट्राश्चडोलारोहणकानि च ॥ ३९ ॥
 दक्षिणाभिमुखं यात्रा गर्तपङ्काप्सु मज्जनम् ।
 अनुत्थानं ततो मार्गविधानं पतितस्य च ॥ ४० ॥
 रण्डाभिर्वाथ मुण्डाभिर्विकृताभिरथापि वा ।
 अतिकृष्णातिरौद्राभिः कृष्णरक्ताम्बरायसैः ॥ ४१ ॥
 भूषिताभिरसौम्याभिः स्त्रीभिः सङ्गोपगूहनम् ।
 कर्षणं च सरित्सिन्धुसमुद्राणां च शोषणम् ॥ ४२ ॥
 दीपाम्निज्योतिषां नाशः प्रतिमालिङ्गभेदनम् ।
 कृष्णस्रगम्बरालेपरक्तवस्त्रादिधारणम् ॥ ४३ ॥
 हरिद्रालेपनं स्थौल्यं देहाङ्गानां च खण्डनम् ।
 कार्पासतिलपिण्याकसुवर्णमरिचान्धसाम् ॥ ४४ ॥
 लाभो विरेचनं चैव घृतं मत्स्यं च शासनम्(?) ।
 मधुतैलेक्षुतक्राणां पानं गीतं च नर्तनम् ॥ ४५ ॥
 हृष्टैर्वियोगोऽनिष्टैश्च योगो देवद्विजन्मभिः ।
 पितृभिरिज्जिनश्चापि भर्त्सनं ताडनादिकम् ॥ ४६ ॥
 अपूपसक्तुशुष्कान्नभक्षणं सलिलादिभिः ।
 निर्वापणं वा दीपादेः पतनं पादचर्मणोः ॥ ४७ ॥
 दिग्वाससामसौम्यानां मुण्डानां कृष्णवाससाम् ।
 काषायिणां कपीनां च दर्शनस्पर्शनादिकम् ॥ ४८ ॥
 खरोष्ट्रकोलमहिषाद्यारोहस्तद्रथस्य वा ।
 गोमयोन्मज्जनालेपावसौम्यशिशुसङ्ग्रहः ॥ ४९ ॥
 समाजः पानगोष्ठ्यादौ मृत्तरण्युपगूहनम् ।
 हस्त्येवमादिकं स्वप्ने विनाशभयदुःखदम् ॥ ५० ॥
 स्वस्थानामपि रोगाय मरणायाथवा भवेत् ।
 अतःपरं शुभाः स्वप्नाः कथ्यन्ते सिद्धिसूचकाः ॥ ५१ ॥

शुक्लसगम्बरालेपदीपदर्पणसङ्ग्रहः ।
 दधिक्षीराज्यताम्बूलफलतण्डुलवाससाम् ॥ ५२ ॥
 व्रीहिशालियवानां च शङ्खमौक्तिकयोषिताम् ।
 सुरूपशुक्लवेषाणां लाभश्च रुधिरार्द्रता ॥ ५३ ॥
 नद्यब्धितोयतरणं प्रज्वलद्बहिर्दर्शनम् ।
 चन्द्रार्कतारकास्पर्शो नरयानाधिरोहणम् ॥ ५४ ॥
 वृक्षाद्रिहस्तिप्रासादफलक्षीरमहीरुहाम् ।
 अस्थितुङ्गविमानानामारोहो नृगवामपि ॥ ५५ ॥
 विशिष्टलिङ्गविप्रेन्द्रपितृदेवाद्यनुग्रहः ।
 लिङ्गाक्षसूत्रप्रतिमाविशिष्टायुधसङ्ग्रहः ॥ ५६ ॥
 स्वाङ्गवस्त्रगृहादीनामनिर्वाणामिदीपनम् ।
 तेष्वान्त्रवेष्टनं वापि विडालेपः स्वविग्रहे ॥ ५७ ॥
 मृतिर्वा कुणपस्पर्श आर्द्रमांसस्य भक्षणम् ।
 दंशः स्वदक्षिणकरे शुक्लवर्णेन भोगिना ॥ ५८ ॥
 पौष्करे स्वर्णपात्रे वा घृतपायसभोजनम् ।
 दधिक्षीराशनं पानं मैरेयस्यामृतस्य वा ॥ ५९ ॥
 तत्पूर्णकुम्भलाभो वाप्यगम्यस्त्रीनिषेवणम् ।
 बलाकाकुवकुटीक्रौञ्चीहंसीलाभः सुतागमः ॥ ६० ॥
 मन्त्रपुस्तकविद्यानां वीणायाश्चौषधस्य वा ।
 छत्राणां चामराणां च लाभस्तीर्थावगाहनम् ॥ ६१ ॥
 इत्यादिदर्शनं स्वप्ने सिद्धिश्रीसुखसूचकम् ।
 ब्राह्मणाश्चैव देवाश्च पितरो लिङ्गिनस्तथा ॥ ६२ ॥
 यद् यद् वदन्ति हि स्वप्ने तत् तथैव भविष्यति ।
 इति स्वप्नाधिकारः ।

अथ शिष्यं स्नातं निर्वर्तितसन्ध्येोपासनं शम्भुकुम्भशिवाग्नीनां कृतप्र-
 गामार्चनं प्राग्वदालम्बितपाशसूत्रं शिवानुज्ञया मण्डपं प्रवेश्य कुण्डान्तिक

उपवेश्य ओं हाम् आधारशक्तये नमः इति तामग्नावावाह्य स्वाहान्तेन तेनाज्यं त्रिवारं जुहुयात् ।

तस्यामाधारशक्तौ तु विन्यसेदध्वपञ्चकम् ॥ ६३ ॥

तद्व्यापिकां निवृत्तिं च विभागोऽस्यैव कथ्यते ।

पृथ्वीतत्त्वं क्षवर्णश्च मन्त्रौ हृदयसद्यकौ ॥ ६४ ॥

अष्टाविंशतिसंख्यानि पदान्यन्त्याद् विलोमतः ।

कालाग्न्यादीनि काल्यन्तं भुवनाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६५ ॥

स्वमन्त्रेण निवृत्तिं तु सूत्रात् संहृत्य तेन तु ।

बहौ शक्तौ निवेद्येष्ट्वा सान्निध्यायाहुतित्रयम् ॥ ६६ ॥

तेनैवाग्निप्रियान्तेन हुत्वा तत्र विभावयेत् ।

मलं कर्म च तन्मायारूपपाशात् पशोः पुनः ॥ ६७ ॥

भोक्तृत्वभोगदेहादिजनकं च शिवेच्छया ।

सङ्कल्प्य भुक्तेष्वेषु योनीर्नानाशरीरिणीः ॥ ६८ ॥

भुवनानुगुणं याः स्युरनन्ताः कर्मसम्भवाः ।

तद्व्यापिकां च वागीशीं

ओं हां वागीश्वर्यै नमः

अनेनावाह्य पूजयेत् ॥ ६९ ॥

अनेनैव स्वाहान्तेन त्रिवारं हुत्वा भगवति ! वागीश्वरि ! पशोरनुग्रहाय सन्निहिता भवेति सम्प्रार्थ्यार्ध्याम्बुभिरस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य पुष्पास्त्रेण हृदि सन्ताड्य रेचकेन स्वयं शिष्यहृदयं सुषुम्नया प्रविश्य तच्चैतन्यमस्त्रेणाच्छिद्याङ्कुशमुद्र-योत्कृष्य मूलेन द्वादशान्ते बिन्दुरूपे संयोज्य प्रणवसंपुटितं हंसं समुच्चारयन्तच्छिष्यचैतन्यं पूरकेण स्वहृदयपद्ममानीय मूलमन्त्रं स्मृत्वा कुम्भकं च कृत्वा ततो मूलेन सङ्गृह्य रेचकेन द्वादशान्तं नीत्वा भवमुद्रया जरायुजा-ण्डजस्वेदजोद्भिज्जमानसीषु सर्वास्वनन्तासु योनिषु पूर्वोक्तासु तच्छरीरग्रहण-व्यक्तिरूपेण शिष्यचैतन्यस्य युगपत् संयोगं कुर्यात् । तदनु

तारमूलं शिवायाग्नेर्जायासप्ताक्षरस्त्वयम् ।

योनिसंयोगगर्भासिजन्मादौ मन्त्र ईरितः ॥ ७० ॥

होमे प्रयोज्यस्वस्यान्ते

भगवन् ! अस्यात्मनः सर्वासु योनिषु युगपत् संयोगं कुरु कुर्विति ।

इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।

तत्रास्यात्मनःपदादूर्ध्वं सर्वासु योनिषु संयोगमित्यस्मिन् स्थाने गर्भ-
निष्पत्तिगर्भजन्मादीनि वक्ष्यमाणानि कर्माणि तत्तन्नामधेयेन संयोज्य कुरु
कुर्वित्युच्चार्य तत्तत् कर्म निष्पादयेत् । सर्वत्र मूलेनाहुतित्रयं हुत्वा सप्ता-
क्षरेण च त्रिवारं हुत्वा भगवन्नादिकं त्रिवारमुच्चार्य प्रार्थयेत् । तत्र सर्वयो-
निसंयोगं गर्भनिष्पत्तिं सर्वगर्भजननं च क्रमान्निष्पाद्य

ततः सर्वशरीराणां युगपद् वृद्धिमादितः ॥ ७१ ॥

भोगनिष्पत्तये स्मृत्वा प्राक्कर्मागामिकर्म च ।

सर्वयोनिशरीरेषु भोगकर्मारजनं स्मरेत् ॥ ७२ ॥

तत्र प्राग्वद्भुत्वा भगवन्नादौ नानाभोगदायकं कर्मारजनं कुरु कुर्विति
लोकधर्मिकायां प्राक्कर्मागामिकधर्माधर्मरूपकर्मारजनं विभाव्य होतव्यम् ।

अपि साधकदीक्षायां प्राक्कर्मागामिकं स्मरन् ।

हुत्वा तद्देशकालासशरीरविषयक्रियाः ॥ ७३ ॥

भेदेन नानारूपाढ्याः प्राक्तनागामिकर्मणाम् ।

भोक्तृत्वालिङ्गितस्यास्य ह्यात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ७४ ॥

वेदनादस्य भोगस्य विषयासक्तिनिवृत्ताम् ।

संस्मृत्य तिस्रो जुहुयान्मूलेनाढ्यर्णकेन च ॥ ७५ ॥

तत्र पशोरस्थ सर्वभोगनिष्पत्तिं कुरु कुर्विति ।

अत्र भोजराजः — “लोकधर्मिकायां प्रागागामिकधर्माधर्मजनितदेश-
कालशरीरविषयभेदेन नानारूपं भोगं सञ्चिन्त्याहुतीर्दिद्यात् । साधकदीक्षायां
प्राक्कर्मेणैव जानितदेशकालशरीरविषयभेदेन नानारूपं भोगं सञ्चिन्त्याहुति-
दानं कर्तव्यमिति ।

ततो लयं च भोगेषु परमप्रीतिलक्षणम् ।

अभिसन्धाय जुहुयात् प्राग्वत् तल्लयकारणात् ॥ ७६ ॥

भोगेषु परमप्रीतिरूपं लयं कुरु कुर्विति । तदनु

जात्यायुर्भोगसंस्कारसिद्धचर्थं हृदयेन तु ।

शतं जुहोतु चात्राह ब्रह्मशम्भुः प्रयोजनम् ॥ ७७ ॥

“उपयुक्तोदकस्येव शरन्मेघस्य लाघवम् ।

शुद्धिरस्य विनिर्दिष्टा तत्त्वस्य क्षीणकर्मणः ॥

अपुनःप्रसवित्वं च निष्कृतिश्चेति सोच्यते ।
हृदयेनाहुतीनां तु तदर्थं जुहुयाच्छतम् ॥”

इति ।

ततो मूलेन त्रिवारं हुत्वा सप्ताक्षरेण च भगवन्नादिना निष्कृत्य सर्वक-
र्मशुद्धिं कुरु कुर्विति प्रार्थयेत् ।

भोगाभावं च सङ्कल्प्य मायापाशाद् बहिर्गतः ।

तद्विश्लेषं च सञ्चिन्त्य मूलसप्ताक्षरादिभिः ॥ ७८ ॥

हुत्वाथ भोक्तृतामस्य विषयासक्तिलक्षणम् ।

मलकायं विभाव्यास्य विशुद्धयै जुहुयाद् दश ॥ ७९ ॥

मूलेन मलविश्लेषं सङ्कल्प्य जुहुयात् त्रयम् ।

कर्मणोऽपि विशुद्धस्य विश्लेषायाहुतित्रयम् ॥ ८० ॥

मूलसप्ताक्षराभ्यां तु भगवन्नादिना पुनः ।

मायामलकर्मरूपस्य पाशत्रयस्य विश्लेषं कुरु कुर्विति पाशविश्लेषं
विधाय मलादितत्त्वादिव्यापकस्य निवृत्तिपाशस्यास्त्रेण मूलेन सप्ताक्षरेण च
त्रिवारं हुत्वा भगवन्नादिना निवृत्तिपाशच्छेदं कुरु कुर्विति तत्पाशच्छेदं विभाव्य
तदनु

सर्वयोनिशरीराणां विनाशात् तद्गतात्मनः ॥ ८१ ॥

एकत्वं परिभाव्याथ बौध्वातिर्युतेन तु ।

मूलेन पूर्णं हुत्वा तु सतारं ब्रह्मणे नमः ॥ ८२ ॥

इत्युक्त्वावाह्यं सम्पूज्य

ओं ब्रह्मन् शब्दस्पर्शौ गृहाण स्वाहा ।

इति हुत्वाहुतित्रयम् ।

तदनु

कारणेश त्वया नास्य यातुः पदमनामयम् ॥ ८३ ॥

प्रतिबन्धो विधातव्य आशैषा पारमेश्वरी ।

एवं शिवाज्ञां दत्त्वा निवृत्तिकलापाशादिकारणेशं ब्रह्माणं विसर्जयेत् ।

एवं तु शिष्यचैतन्यं विशुद्धं स्फटिकप्रभम् ॥ ८४ ॥

निवृत्तिपाशनिर्मुक्तं स्मृत्योद्धारं समाचरेत् ।

प्राग्वद्धृत्वा तु भगवन्नादिनां निवृत्तिकलापाशादुद्धारं कुरु कुर्विति ।

संहारिण्या तदुद्धृत्य चैतन्यं पूरकेण तु ॥ ८५ ॥

कृत्वात्मस्थं गुरुः पश्चाद् रेचकेनोद्धृतं क्षणात् ।

योजयेत् सूत्रदेहेऽस्य स्थैर्यार्थं त्रिजुहोतु च ॥ ८६ ॥

ततो वागीश्वरीमिष्ट्वा तिस्रो हुत्वा स्वमन्त्रतः ।

तां विमृज्याथ सन्दध्यात् कलां शुद्धामशुद्धया ॥ ८७ ॥

बीजं निवृत्त्याः शुद्धाया ह्रस्वमुच्चारयेत् ततः ।

विशुद्धायाः प्रतिष्ठाया दीर्घान्तं नामनी क्रमात् ॥ ८८ ॥

समस्य तु चतुर्थ्यन्तं नम इत्यभिपूज्य तु ।

अनेनैवाग्निजायान्तं हुत्वा वारत्रयं ततः ॥ ८९ ॥

लीनां निवृत्तिं संशुद्धां प्रतिष्ठायां विभावयेत् ।

इति निवृत्तिकलाशोधनम् ।

उक्तानां कर्मणामत्र क्रमपाठो विधीयते ॥ ९० ॥

प्रतिष्ठादिकलानां च य एव स्याद् विशोधने ।

आधारशक्तिस्तत्त्वं च वागीश्या नैकयोनिता ॥ ९१ ॥

शिष्यात्मनः समादानं योजनं सर्वयोनिषु ।

गर्भनिष्पत्तिजनने कर्मार्जनमतः परम् ॥ ९२ ॥

ऐश्वर्यं भोगसिद्धिश्च लयो निष्कृतिरेव च ।

विश्लेषश्च मलादीनां पाशच्छेदश्च पूर्णया ॥ ९३ ॥

कारणेशार्पणोद्धारग्रहणैक्यान्यतः परम् ।

नियोजनं सूत्रदेहे वागीश्वर्या विसर्जनम् ॥ ९४ ॥

शुद्धतत्त्वात्मतालोकः कलासन्धानपूजने ।

इति कर्मक्रमस्तुल्यः प्रतिष्ठादिकलास्वपि ॥ ९५ ॥

अथ शक्तिं समाराध्य स्वमन्त्रेण प्रतिष्ठामावाह्य संस्थाप्याभ्यर्च्य
सन्निध्याय तेन त्रिवारं हुत्वा मलकर्ममायापाशरूपं भोक्तृत्वभोगशरीरादिज-

नकं प्रतिष्ठया व्याप्तं सञ्चिन्त्याबादिप्रकृत्यन्ते तत्त्वाध्वनि षट्पञ्चाशद् भुवना-
 न्येकविंशतिपदानि वर्णानां त्रयोविंशतिः शिरोवामौ प्रतिष्ठया व्याप्ताश्चिन्त-
 नीयाः । मूलसप्ताक्षराभ्यां त्रिवारं हुत्वा भगवन्नस्यात्मनो मलादितत्त्वानि प्र-
 तिष्ठाकलायां सन्निधिं कुरु कुर्विति । तदनु षट्पञ्चाशद्भुवनेषु नानाविधा
 योनीः सङ्कल्प्य तद्व्यापिनीं वागीश्वरीमावाह्य संस्थाप्याभ्यर्च्य सान्निध्याय
 त्रिवारं हुत्वा प्रोक्षणताडनप्रवेशनच्छेदाकर्षणग्रहणादीनि पूर्ववत् कृत्वा पृ-
 रकेणात्मस्थं शिष्यचैतन्यं कुम्भीकृत्य रेचकेन द्वादशान्तगतं सङ्गृह्य पूर्ववत्
 सर्वासु योनिषु युगपद् व्यक्तिमापाद्य मूलसप्ताक्षराभ्यां त्रिवारं हुत्वा भगवन्ना-
 दिना च सर्वयोनिषु संयोगगर्भनिष्पत्तिजननकर्माज्जनभोगलयांश्च पृथक् पृथक्
 प्राग्वन्निष्पाद्य निष्कृतौ शिरसा शतं हुत्वा निष्कृतिं च प्राग्वदापाद्य भोगाभा-
 वान्मायापाशाद् बहिर्निष्क्रमणाद् विश्लेषं च पूर्ववद्धुत्वापाद्य मलकार्यभोक्तृत्वा-
 दिभ्यो बहिर्निर्गमाद् विश्लेषं ध्यात्वा तद्विशेषं च पूर्ववद्धुत्वापाद्य कर्मणो
 विश्लेषं तथैवापादयेत् । ॐ विष्णो! अस्यात्मनः पुर्यष्टकं गृहाण स्वाहेति
 त्रिवारं हुत्वा कारणेशत्वयेत्यादिनाज्ञां विश्राव्य विसर्जयेत् । ततो मूलसप्ता-
 क्षराभ्यां प्राग्वद्धुत्वा भगवन्नादिना प्रतिष्ठापाशादुद्धारं कुरु कुर्वित्युद्धृत्य
 तच्चैतन्यं प्राग्वदात्मस्थं कृत्वा सूत्रशरीरे प्रवेशयेत् । वागीश्वरीमिष्ट्वा वि-
 सृज्य कलासन्धानं च प्रतिष्ठाविद्याभ्यां स्वबीजोच्चारणादिना विधाय स-
 म्पूज्य हुत्वा प्रतिष्ठां विद्यायां लीनां चिन्तयेत् । अथ विद्याकलां शोधितुं
 शक्तिमभ्यर्च्य स्वमन्त्रेण विद्याकलामावाह्य संस्थाप्याभ्यर्च्य तेन त्रिवारं
 हुत्वा व्याप्तिमवलोकयेत् । पुरुषादिमायान्तं सप्त तत्त्वानि सप्त वर्णाः सप्त-
 विंशतिर्भुवनानि शिखाघोरौ मन्त्रौ पदानां विंशतिश्च मलादित्रयं च सर्वं
 विद्याकलया व्याप्तं विभाव्य सर्वयोनिव्यापिकां स्वमन्त्रेण वागीशीमावाह्य
 संस्थाप्याभ्यर्च्य तत्सान्निध्याय त्रिवारं हुत्वा प्रोक्षणताडनादिकं च सर्व-
 योनिस्वरूपसंयोगगर्भनिष्पत्तिजननभोगलयान्तं कर्म सर्वं मूलेन सप्ताक्षरेण
 त्रिवारं त्रिवारं हुत्वा भगवन्नादिना च यथायोगं विधाय निष्कृतौ शि-
 खया शतं हुत्वा मूलेन सप्ताक्षरेण च प्राग्वन्निष्कृतिमापादयेत् । तत्र नि-
 ष्कृत्या सर्वपाशशुद्धिं कुरु कुर्विति तथैव विश्लेषपाशच्छेदपूर्णाहुतीः प्राग्वद्
 विधाय ततो रुद्राय नम इत्यावाह्य संस्थाप्याभ्यर्च्य त्रिवारं हुत्वा ॐ रुद्र! रूप-
 गन्धौ गृहाण स्वाहेति त्रिर्जुहोति । ततः कारणेशेत्यादिनाज्ञां श्रावयित्वा तं वि-
 सृज्य पूर्ववद् विद्याकलापाशादुद्धृत्यात्मस्थं कृत्वा द्वादशान्तात् सूत्रे देहे निवेश्य

स्थिरीकरणाय त्रिवारं हुत्वा वागीशमभ्यर्च्य हुत्वा विमृज्य प्राग्बद्ध विद्या-
शान्तिबीजे ह्रस्वदीर्घे सन्धाय सन्निधीकृत्य मूलेन त्रिवारं हुत्वा विद्यां शा-
न्तिकलायां विलीनां विभाव्य शान्तिं शोधयेत् ।

ततः शक्तिं समभ्यर्च्य हुत्वा सप्ताक्षरेण तु ।

शान्तिं स्वमन्त्रेणावाह्य संस्थाप्येष्टा जुहोते च ॥ ९६ ॥

सन्निधानाय मूलेन हुत्वा ध्यात्वाध्वपञ्चकम् ।

सदाशिवान्तं तत्त्वानि पुराण्यष्टादशैव तु ॥ ९७ ॥

एकादश पदान्यत्र मन्त्रौ कवचपूरुषौ ।

त्रयो वर्णाश्च विज्ञेयाः शान्त्या व्याप्ताः पृथक् पृथक् ॥ ९८ ॥

ततो वागीश्वरीं नानायोनिःसञ्जननीं स्मरन् ।

आवाह्याभ्यर्च्य हुत्वाथ मूलेन प्राग्बद्धाहुतीः ॥ ९९ ॥

तदनु प्रोक्षणताडनप्रवेशच्छेदार्कषणग्रहणयोजनगर्भजन्मकर्माज्जनैश्वर्य-
भोगलयांश्च पूर्ववद् विधाय निष्कृतौ वर्णना शतं हुत्वा मूलसप्ताक्षराभ्यां भगव-
न्नादिना निष्कृत्य सर्वपाशशुद्धिं कुरु कुर्विति समाप्य

भोगाद् बहिर्निर्गमनान्मूलसप्ताक्षरादिभिः ।

विश्लेषं सर्वभोगेभ्यः कृत्वाथ मलकर्मणोः ॥ १०० ॥

विश्लेषायाहुतीहुत्वा पाशच्छेदेऽस्त्रतस्तथा ।

मूलात् सप्ताक्षराद्धुत्वा भगवन्नादिनात्मनः ॥ १०१ ॥

मलादितत्त्वादेव्यापकस्यच्छेदनं कुरु कुर्विति समाप्य

प्राग्बद्ध पूर्णाहुतौ दत्त्वा

ओं ईश्वराय नम इति

आवाह्याभ्यर्चयेदमुम् ।

हुत्वा च बुद्धयहङ्कारौ गृहाणेति तदाख्यया ॥ १०२ ॥

हुत्वा त्रिवारं संश्राव्य कारणेशादिना ततः ।

तं विमृज्यैश्वरं शिष्यं शान्तिपाशैर्वियोजितम् ॥ १०३ ॥

मूलसप्तार्णहोमेन भगवन्नादिनात्मनः ।

प्राग्बद्धशान्तिकलापाशादुद्धारं कुरु कुर्विति ॥ १०४ ॥

संहारिण्या तदुद्धृत्य पूरकेणात्मयोजितम् ।

रेचकेनोद्धृतं पाशसूत्रदेहे प्रवेशयेत् ॥ १०५ ॥

स्थिरीकृत्य तु मूलेन हुत्वा वागीश्वरीमपि ।

सम्पूज्य हुत्वा चोत्सृज्य कलासन्धानमाचरेत् ॥ १०६ ॥

प्राग्वद्भस्वं च दीर्घं च शुद्धाशुद्धविभागतः ।

शान्त्याश्च शान्त्यतीतायाः प्राग्वदिष्टा जुहोतु च ॥ १०७ ॥

शान्तिं लीनामतीतायां कृत्वातीतां च शोधयेत् ।

शान्त्यतीतामथावाह्य संस्थाप्येष्टा जुहोतु च ॥ १०८ ॥

प्राग्वद् व्याप्तिं सरेदत्र मलकर्मविमिश्रिताम् ।

शक्त्यन्तोऽध्वा त्रयो मन्त्रा वर्णाः षोडश वै पदम् ॥ १०९ ॥

एकं तु भुवनानां च चिन्त्यं पञ्चदशैव हि ।

बिन्दुनादकलाशक्तिव्यक्तान्येतान्यतीतया ॥ ११० ॥

व्याप्तानि तत्सन्निधाने मूलेन त्रिजुहुत्वथ ।

वागीशीं भुवनेष्वेषु व्याप्तामावाह्य चार्चयेत् ॥ १११ ॥

तत्सन्निध्याय जुहुयात् त्रिवारं पूर्ववद् घृतम् ।

तदनु प्रोक्षणताडनच्छेदाकर्षणयोनिंसयोगगर्भजन्मकर्मैश्वर्यभोगलया-
न्तं तिसृभिस्तिसृभिराहुतिभिर्मूलसप्ताक्षराभ्यां हुत्वा भगवन्नादिना तत्तत्कर्मा-
भिसन्धाय सम्पाद्य निष्कृतौ मूलेन शतं हुत्वा प्राग्वन्निष्कृतिं कुरु कुर्विति च
शान्त्यतीतापाशेभ्यो बहिर्निर्गमाद् विश्लेषं ध्यात्वा मूलेन त्रिवारं हुत्वातीतापाश-
स्य मलादिव्यापकस्य प्रणवेनाहुतित्रयं हुत्वा तत्पाशच्छेदाय मूलसप्ताक्षरा-
भ्यां च भगवन्नस्यात्मनः शान्त्यतीतापाशच्छेदं कुरु कुर्वित्युक्त्वा मूलेन पूर्णां
हुत्वा कलानां शुद्धयर्थं समयसमयाचारपाशं सादेशे सङ्कल्प्य शोधयेत् ।

ओं समयसमयाचारपाशाधिपेभ्यो गणेभ्यो नम इत्यावाह्य संस्था-
प्याभ्यर्च्यार्चनेन स्वाहान्तेन सन्निधानाय त्रिवारं हुत्वा सप्ताक्षरेण च ततः प्रण-
वमूलादिकं सदाशिवपुर्यष्टकांशं मनः सङ्गृहाण स्वाहेति त्रिवारं हुत्वा का-
रणेशेत्यादिना संश्राव्य तं विसर्जयेत् । ततः शिवास्त्रेण प्रणवसम्पुटेन रेचके-
नातीतापाशात् संहृत्यात्यन्तं निर्मलमात्मस्थं शिष्यस्थं च विधाय तच्छिरस्यु-

दकविन्दुं दत्त्वाथ वागीशीमभ्यर्च्य सन्तर्प्य विज्ञापयेत् । भगवति ! पञ्चत-
त्त्वखेदितासि गच्छेदानीं स्वविषयमिति विसृज्य शान्त्यतीतकलां शक्तितत्त्वे
विलीनां ध्यात्वा मायातत्त्वान्तमात्मतत्त्वमुपस्थापयेत् । प्रणवमूलादिकमात्मत-
त्त्वाय नम इति सन्निधीकृत्य सप्ताक्षरेणोच्चैरुच्चारयन्नाहुतिशतं हुत्वैवं विधिवै-
कल्यकर्मशुद्धिर्भवेत् ।

ततः सदाशिवान्तं विद्यातत्त्वं स्वमन्त्रेणावाह्य स्थापयित्वाभ्यर्च्य तेनै-
वोपांशूच्चारणेनाष्टोत्तरशतं हुत्वा मन्त्रोच्चारणवैकल्यं शुध्यति । ततः शक्त्यन्तं
शिवतत्त्वमुपस्थाप्यावाह्य स्थापयित्वाभ्यर्च्य तेनैव मानसोच्चारणेनाष्टोत्तरशतं
हुत्वा मनोविज्ञानवैकल्याच्छुध्यति । ततस्तु

विश्वाध्वव्यापिकां शक्तिमध्वान्तःस्थां विभावयेत् ॥ ११२ ॥

सर्वकारणरूपां च तदग्रे शिष्यपुद्गलम् ।

विशुद्धमणिसङ्काशं विचिन्त्याभ्यर्च्य तं गुरुः ॥ ११३ ॥

कर्तरीं शिखयामन्त्र्य बुभुक्षोर्द्वादशाङ्गुलात् ।

परतस्तु शिखां छिन्द्यान्मोक्षयाष्टाङ्गुलात् परम् ॥ ११४ ॥

शिखयैव शिखां छित्त्वा स्नायाच्छिष्यो विशुद्धये ।

गुरुश्च धौतपाण्यङ्घ्रिराचान्तः प्रोक्षणाच्छुचिः ॥ ११५ ॥

ततो गुरुः प्रविश्यान्तः सशिष्यः सकलीकृतः ।

सपाशसूत्रां तु शिखां छन्नां गोमयगोलके ॥ ११६ ॥

स्रुचि स्रुवेण विहितां कृत्वा पूर्णाहुतिं यथा ।

हुत्वा बहिस्ततो गत्वा क्षालयेत् सुक्सुवावपि ॥ ११७ ॥

कर्तरीं च समाचम्य शिवमिष्ट्वा विशेषतः ।

विज्ञापयेद् भो भगवन्ध्वशुद्धिस्त्वदाज्ञया ॥ ११८ ॥

अस्यात्मनः कृता देवा लूनपाशशिखा यतः ।

शिवत्वं च परं धाम यात्वयं त्वदनुग्रहात् ॥ ११९ ॥

आज्ञा मे दीयतामस्य शिवत्वगुणयोजने ।

एवं कुरुष्वेति भगवतानुज्ञातः प्रहृष्टोऽर्धपात्रहस्तः शिष्यसहितोऽग्नि-
समीप उपविश्य प्राग्वत् प्रोक्षणाडनान्तःकरणसकलीकरणनाडीसन्धान-

मन्त्रतर्पणानि विधाय संहितामन्त्राणामेकैकाहुत्या सकलीकरणशोधनं विधाय शिवात्मनि शिष्यचैतन्यं नियोजयेत् । ततः गुरु(विःर्वि)न्दुतत्वास(नःने) स्वयं विद्यातत्त्वास्पद इन्धिका दीपिका रोचिका मोचिका ऊर्ध्वगामिनी सूक्ष्मा सु-सूक्ष्मा अमृता ऋता शक्तिरिति नादशक्तिकलास्तद्यापिनी व्योमरूपा अनन्ता अनाथा अनाश्रिता चेति बहिष्करणं विभाव्यान्तःकरणशुद्धात्मतत्त्वस्तत्त्वत्रया-पूर्णतनुः पूरककुम्भकेन कृत्वा तालुके जिह्वां संयोज्य किञ्चिद्विवृतवक्त्रो दन्तै-र्दन्तानसंस्पृशन् ऋजुकायः शिष्यचैतन्यमात्मनि संयोज्य सुषुम्नायामन्य-नाडीः प्राणवायुनैकीकृत्य शिष्यात्मानं समन्त्रं शुद्धस्फटिकनिभं विचिन्त्य मू-लमन्त्रं हंसं चोच्चारयन् हृत्कण्ठतालुबिन्दुमूर्धगतान् ब्रह्मादिकारणेशानतीत्य शिष्यात्मानं पूर्णाहुत्या बहिः कुम्भकेन शिवे संयोज्य शिष्यं शिवीभूतं ध्यात्वा तस्मै शिवविषयान् षडङ्गगुणानापादयेत् । तद्यथा—

ओं हुं आत्मन् ! सर्वज्ञो भव स्वाहा इत्याज्याहुतिं हुत्वा एवमिव प-रितृप्त अनादिवुद्ध स्वतन्त्र अलुप्तशक्ति अनन्तशक्ति इत्येकैकाहुतिं हुत्वा शिवीभूतं सार्वज्ञ्यादिगुणसम्पन्नं शिष्यं विभाव्य मूलेनार्घ्यजलेन मन्त्रसंहितया तमभिषिच्याष्टौ समयान् ज्ञापयेत् ।

तद्यथा —

माहेश्वरांश्च तच्छास्त्रसमयाचारमाधकान् ॥ १२० ॥

शिवं गुरुं च तद्भक्तान् न निन्देत् प्रथमस्त्वयम् ।

विमानगुरुलिङ्गानां (जा ? छा)यां लिङ्गिगवामपि ॥ १२१ ॥

न लङ्घयेच्च निर्माल्यं नाशनीयात् पतितादिभिः ।

पुष्पिकासौतिकाशौचिस्पृष्टं नाद्यान्न तान् स्पृशेत् ॥ १२२ ॥

अथ द्वितीयः समयः ।

समयान् समयाचारान् मन्त्रतन्त्राण्यदीक्षितैः ।

न लेखयेच्छ्रावयेद् वा तृतीयः समयस्त्वयम् ॥ १२३ ॥

द्विकालं वा त्रिकालं वाप्येककालं शिवं गुरुम् ।

पूजयित्वैव मुञ्जीत चतुर्थः समयस्त्वयम् ॥ १२४ ॥

अनापातितशर्त्तीश्च पतितान् वाथ नास्तिकान् ।
 न दीक्षयेत् पापशीलान् समयः पञ्चमः स्मृतः ॥ १२५ ॥
 शिवाग्निगुरुविद्यानां यादिष्टं नवमेव च ।
 अन्नाद्यं कुसुमाद्यं वा नानिवेद्य चरेत् स्वयम् ॥ १२६ ॥
 तद्वद् बालाबलावृद्धरोगार्तकृपणानपि ।
 अतिथीनन्नपानाद्यैस्तर्पयित्वा स्वशक्तितः ॥ १२७ ॥
 शुककाकश्चचण्डालेभ्योऽन्नं दद्यादनुग्रहात् ।
 इति षष्ठं तु शैवानां विज्ञेयं समयव्रतम् ॥ १२८ ॥
 अष्टमीपर्वभूतासु स्त्रीक्षौराभ्यङ्गवर्जनम् ।
 कांस्यपात्राशनं पानं मत्स्यं मांसं मधूनि च ॥ १२९ ॥
 सर्वथा सर्वदा वर्ज्यं समयस्त्वेष सप्तमः ।
 यमानां नियमानां च यथायोगनिषेवणम् ॥ १३० ॥
 चतुर्दश्यष्टमीपर्वग्रहविष्वयनादिषु ।
 पवित्रचैत्रकादौ च विशेषविधिपूजनम् ॥ १३१ ॥
 कुर्यान्नक्तं दिवा वापि सकृत् सङ्कल्प्य भोजनम् ।
 शरणागतरोगार्तपथिकत्रस्तविह्वलान् ॥ १३२ ॥
 शिवभक्तानथाप्यन्यान् साधून् गोब्राह्मणानपि ।
 पोष्यान् भृत्यादिकाञ् शक्त्या पालयेदिति चाष्टमः ॥ १३३ ॥
 समयः कथितो ह्येष पालनीयः प्रयत्नतः ।
 इति गुरुसमयानां प्राप्य शिक्षां तु शिष्यो
 गुरुमभिमतवित्तैः प्रश्रयैस्तोषयित्वा ।
 प्रणतिमतिविधायानुज्ञया तस्य शश्वत्
 प्रियहितविनिविष्टः शम्भुपूजां विदध्यात् ॥ १३४ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे

निर्वाणदीक्षापटलोऽष्टादशः ।

अथैकोनविंशः पटलः ।

अथोच्यते क्रियावत्या दीक्षया दीक्षितस्य तु ।

सम्यग्विज्ञाततन्त्रस्य साधकस्याभिषेचनम् ॥ १ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“त्रिपदार्थं चतुष्पादां भुक्तिमुक्तिफलोदयाम् ।

संहितां यो विजानाति शिष्योऽसौ सेकमर्हति ॥”

इति । इष्टदिवसमुद्घातौ यथावच्छिष्यमधिवास्य कुम्भमण्डलाग्नीनां पूजां कारयित्वा प्राच्यामैशान्यामुदीच्यां वा नवसप्तपञ्चहस्तान्यतमे चतुरश्रे मण्डपे अर्धहस्तोच्छ्रितचतुस्त्रिहस्तान्यतमचतुरश्रवेदिकायामक्षतैर्यवैर्वा चतुष्कोणविरचितस्वस्तिकायां विद्येश्वरसदाशिवाधिष्ठितं कलशनवकं वा ब्रह्मभिर्निवृत्त्यादिकलामिश्राधिष्ठितं कलशपञ्चकं वा संस्थाप्य सर्वरत्नौषधिगन्धामिश्रितं तीर्थजलैरापूर्य सितवसनाभ्यामाच्छाद्य कुशकूर्चाश्चत्तुपल्लवबीजपूरफलानि कलशमुखेषु निधाय शक्तिं शिवं साध्यमन्त्रं च तेषु सम्पूज्य वेद्यां दक्षिणतः शिवमुपवेश्य सिद्धार्थाक्षततिलदूर्वाज्यचरुभिः क्रमात् साध्यमन्त्रेण हुत्वाथ सम्पाताज्यं कलशेषु किञ्चिन्निर्बाणदीक्षोक्तमार्गेण निवृत्त्यादिकलात्रयं शिष्यदेहे संशोध्य ततः शान्त्यतीतां शोधयित्वा विद्यादेहं सदाशिवं ध्यात्वा शिष्यहृदये समावाह्य संस्थाप्य सकलीकृत्यासनादिक्रमेणाभ्यर्च्य पूर्णं हुत्वा अथ शान्तिकलां शोधयेत् । तदनु

प्रणवं च ततो मूलमात्मञ्छब्देन योजितम् ।

अणिमादिगुणाख्यान्ते ते भवन्त्यभिजायया ॥ २ ॥

अणिमादिगुणानां तु पृथक्पृथगुदीर्य तु ।

हुत्वा चाष्टाहुतीः शिष्यं कुर्यादष्टगुणैर्युतम् ॥ ३ ॥

अणिमा महिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च ।

प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं च ततः परम् ॥ ४ ॥

यत्रकामावसायित्वमित्यैश्वर्यगुणाष्टकम् ।

ततः शिष्यं तु साङ्गेन साध्येन सकलीकृतम् ॥ ५ ॥

शिवेन च तथा शक्त्या समधिष्ठितविग्रहम् ।

गन्धधैरभिपूज्याथ गीतवाद्यसमन्वितम् ॥ ६ ॥

वर्णपिष्टकृतैर्वस्त्रैर्वज्राद्यैः पात्रयोजितैः ।
प्राज्यप्रदीपैर्निराज्य प्राङ्मुखं तमुदङ्मुखः ॥ ७ ॥

तदनु

दधिगोमयसिद्धार्थदूर्वाचन्दनपङ्कजैः ।
वल्मीकमृत्स्नारक्षाभिर्निर्मृज्य सलिङ्गाप्लुतैः ॥ ८ ॥
धूपान्तमभिपूज्यैनं कलशैरभिषेचयेत् ।
अनन्तादिनिवृत्त्यादिक्रमात् तन्मन्त्रयोजितैः ॥ ९ ॥
परिस्नवत्सुधाधारामैक्वेनास्य सुपुञ्जया ।
पातयंश्चिन्तयेत् तत्तन्मन्त्रमूर्तिप्रवेशनम् ॥ १० ॥
परमामृतविष्यन्दक्षालिताशेषकश्मषम् ।
तदधृदम्भोजचिह्न्यासां मन्त्रमूर्तिं च भावयेत् ॥ ११ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“अमृतं तोयमाधारः शक्तिस्तस्य तु कुण्डली ।
अभिषेक्ता शिवो ज्ञेय अभिषिच्यस्तु पुद्गलः ॥”

इति । ततः शिष्यं परिवर्तितशुक्लाम्बरं प्रक्षालितपाणिपादमाचान्तं देवस्य
दक्षिणवेद्यां श्रीपण्यादिमये परिकल्पितानन्तासने प्राङ्मुखमुपवेश्य भूतशुद्धिं
विधायोपवीतभूषणगन्धपुष्पैरलङ्कृत्य सकलीकृत्याभ्यर्च्यारान्त्रिकं च दधिदूर्वा-
क्षतार्चितं त्रिवारमुद्भ्राम्य शीताम्बुचुलुकत्रयेण मङ्गलाष्टकं सवन्दनं स्पर्श-
येत् । तच्च

रोचना चन्दनं दूर्वाः सुमनोदधिपायसम् ।
यवाः सिद्धार्थकाश्चेति कथितं मङ्गलाष्टकम् ॥ १२ ॥
ततः संयोजयेच्छिष्यमधिकारेण साधनैः ।
कटकं चोत्तरीयं च छत्रं चामरपादुके ॥ १३ ॥
पुस्तकं चाक्षसूत्रं च भृङ्गारं यानवाहने ।
अन्यच्च राजचिह्नं यत् सर्वमर्हति साधकः ॥ १४ ॥
आचार्यस्यापि तुल्योऽयमधिकारः परिच्छदे ।
विशेषस्तस्य मकुट उष्णीषं करणी तथा ॥ १५ ॥

तदनु गुरुः स्वसव्यहस्तेन तस्य दक्षिणकरं गृहीत्वा पश्चिमद्वारेण प्रवि-
श्य शम्भुकुम्भमण्डलशिवानां प्रदक्षिणत्रयं पूजां च कारयित्वा जानुभ्यां प्रणा-
मेनावर्तिं गतस्य शिष्यस्याञ्जलौ सगन्धकुसुमसालिलं साध्यमन्त्रमुच्चार्याञ्जलिना
सोपदेशं मन्त्रं दद्यात् । सोऽपि तमञ्जलिं स्वशिरसि निधाय गुरवे नमस्कृत्य
सुषुम्नामार्गेण सृष्टिक्रमेणानीय स्वहृदयकमले निवेश्य द्वादशान्तामृतेनाप्लाव्य
मन्त्रसंहितयाज्येन हुत्वा शिवकुम्भाग्नीनां दक्षिणतः पद्मासने साध्यमन्त्रं साङ्ग-
मावाह्य स्थापयित्वा शिववत् पूजयित्वा तस्मान्मन्त्रमुद्धृत्य साधकः स्वदेहे
शक्त्यादिक्रमेण विचिन्त्य स्थापयेत् ।

यथा ब्रह्मशम्भुः —

“शिवाच्छक्तिं ततो बिन्दुं बिन्दोर्नादं च नादतः ।

अर्धचन्द्रं हकारं च षष्ठमाद्यस्वरं तथा ॥

तदथो द्विपदं ब्रह्म कलाकारणमक्षरम् ।

मन्त्रबीजमनुच्चार्य सृष्टिसंहारकारणम् ॥”

इति । एतेषां नव ग्रन्थिस्थानानि विज्ञेयानि द्वादशान्तशिखारन्ध्रललाटभूम-
ध्यतालुगलहृदयनाभिर्वस्तीनि । एतेषां स्थानेषु पद्मेषु क्रमं ध्यात्वामृतेना-
प्लावयेत् । अथ तं समयाचारान् गुरुर्ग्राहयेत् । ते च निर्वाणदीक्षितस्योदिताः
साधकस्यापि समाना एव । अस्यापि सेवाव्रतधारणं विशिष्टलिङ्गपरिग्रहो
विशुद्धाहारसेवा सङ्गपरित्यागो निग्रहानुग्रहेष्वनास्था च निषिद्धवर्जनं विहि-
तानां कर्मणामपरित्यागश्चेति संक्षेपः ।

अथार्घिं संहितामन्त्रैः सन्तर्प्य च विसर्जयेत् ।

मण्डलस्थं तदाज्ञातः शिवकुम्भे नियोजयेत् ॥ १६ ॥

भूतेभ्योऽथ बलिं दिक्षु विकीर्य स्वस्वमन्त्रतः ।

ततः शिष्यं यथापूर्वमासनस्थं तु पूजितम् ॥ १७ ॥

मङ्गलैः शिवकुम्भेन गुरुस्तमभिषेचयेत् ।

अनेनैव विधानेन राज्यश्रीविजायाप्तये ॥ १८ ॥

आयुरारोग्यसौभाग्यपुत्रस्त्रीपुष्टयेऽपि वा ।

नृपं वापि नरानन्यान् स्त्रियश्चाप्यभिषेचयेत् ॥ १९ ॥

तत्तदाम्नोत्ययलेन शिवभक्तस्तु नान्यथा ।

प्राप्ताभिषेकमन्त्रोऽथ प्राप्यानुज्ञां गुरोस्ततः ॥ २० ॥

साधकः साधयेन्मन्त्रं दृष्टादृष्टफलाप्तये ।

शस्तर्क्षतिथिवारादौ स्वानुकूले विशेषतः ॥ २१ ॥

समभ्येत्य शिवक्षेत्रं भूरिपुष्पकुशाम्बुमत् ।

दक्षिणोत्तरदिग्द्वारं लिङ्गं यत्नेन वर्जयेत् ॥ २२ ॥

ब्रह्मस्कन्देन्द्रनन्दीशवृषविष्णुगणेश्वरैः ।

मातृभास्करदुर्गाभिर्युक्तं लिङ्गं तु कीलतम् ॥ २३ ॥

वर्जयेदित्यर्थः । अपिच साधकान्तरसेवितं मानुषप्रतिष्ठितं पूजार-
हितं म्लेच्छान्त्यजजनदूषितं चलितमिनादिदोषदुष्टमनेकलिङ्गं च वर्ज्यम् । ए-
कलिङ्गं पश्चिमद्वारं स्वयम्भुलिङ्गं च श्रेष्ठम् । पूर्वं दैवमार्षं च बाणं च मध्य-
मम् । असुरराक्षसपिशाचादिप्रतिष्ठितं कनिष्ठम् । एतेषु लिङ्गेषु सर्वार्थमन्त्र-
साधारणतया मन्त्रसङ्करो नास्तीत्यतः स्वमन्त्रमेषु विन्यस्य पूजयेत् । अज्ञा-
तमन्त्रलिङ्गेषु प्रणवं मातृकां वापि विन्यस्य स्वहृदये पूरणेन समानीय रेच-
केन द्वादशान्ते लयं नीत्वा प्रतिष्ठाविधानेन स्वमन्त्रं विन्यस्य पूजयेत् । त्रि-
विधलिङ्गानामसम्भवे शक्तिमता गुरुणा वात्मनान्येन वा प्रतिष्ठितं सान्निध्य-
बलिङ्गमप्याश्रयणीयमिति चतुर्थः पक्षः । तदनु

साङ्गं कृत्वास्त्रयागं तु हुत्वाज्येन तिलैरपि ।

वास्तुपूजां विधायादौ वास्तुदेवाभिरक्षिते ॥ २४ ॥

अष्टौ तिलान् हस्तमात्रान् लोकेशास्त्रैरधिष्ठितान् ।

दिक्षु तत्क्षेत्ररक्षार्थं निखनेत् तत्तदस्त्रतः ॥ २५ ॥

सूत्रेण वर्मालब्धेन शङ्कुना वेष्टयेद्ब्रह्मिः ।

हस्तेन सप्तबीजानि विकीर्य परितः पुनः ॥ २६ ॥

रेखां च भस्मना कुर्याद् यवमिश्रैस्तिलैरपि ।

प्राकारं परिकल्प्यात्र दत्त्वा भूतबलिं तथा ॥ २७ ॥

अकृष्टमन्त्रमक्षारलवणं शुचि यल्लघु ।

सकृदश्वन् परिमितं ज्ञाने त्रिषवणे रतः ॥ २८ ॥

सान्निध्यम्येन्द्रियग्रामं साधयेन्मन्त्रमीप्सितम् ।
 सिद्धमन्त्रः पुनस्तस्मिञ्छिवमाराध्य भक्तितः ॥ २९ ॥
 कीललोकाधिपास्त्राणि विसृज्य प्रणतः शिवम् ।
 अनुज्ञाप्य ब्रजेदिष्टं देशं तत्रैव वा वसेत् ॥ ३० ॥

साधकदीक्षाधिकारः ।

अथाचार्योऽभिषेकार्हो वृत्तवाञ्छीलवाञ्छुचिः ।
 प्रशस्तदेशजो विद्वान् प्रशस्तोदितलक्षणः ॥ ३१ ॥
 सबीजदीक्षया सम्यग् दीक्षितो विजितेन्द्रियः ।
 सम्यक् साधितमन्त्रश्च निग्रहानुग्रहक्षमः ॥ ३२ ॥
 विज्ञाताशेषतन्त्रार्थ उदारः करुणारसः ।
 शिवपूजापरः शान्तः समयाचारपालकः ॥ ३३ ॥
 स निर्गत्य गृहात् पूर्वं तीर्थयात्रां समाचरेत् ।
 देशकालवयश्शक्तिसामर्थ्यानुगुणं क्रमात् ॥ ३४ ॥
 निर्वर्त्य तीर्थसेवां तु गङ्गादेः सरितस्तटे ।
 शिवक्षेत्रेऽथवा शैले तत्राचार्यव्रतं चरेत् ॥ ३५ ॥
 उदङ्मार्गगते सूर्ये शुक्लपक्षे शुभे दिने ।
 गणेश्वरं गुरुं चेष्ट्वा सविशेषं यजेच्छिवम् ॥ ३६ ॥
 अस्त्रयागं च निर्वर्त्य स्नाने त्रिषवणे रतः ।
 गोमूत्रेण तथा स्नायादथ त्रिदिनसंख्यया ॥ ३७ ॥
 एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।
 केवलं पञ्चगव्येन तत्सिद्धचरुणा पुनः ॥ ३८ ॥
 उपवासेन च त्रीणि दिनानि क्षपयेत् पृथक् ।
 पक्षं चतुर्थकालाशी षष्ठकालाशनस्तथा ॥ ३९ ॥
 एवं पक्षद्वयादूर्ध्वं क्षपयेद् दिवसत्रयम् ।
 भस्मदर्भशयो नित्यं भस्मस्नानरतः सदा ॥ ४० ॥

अक्षारलवणं यावमन्नं भुक्त्वोदितक्रमात् ।

समाप्तौ दीक्षितान् विप्रान् भोजनाच्छादनादिभिः ॥ ४१ ॥

परितोष्य यथाशक्त्या सादेशः प्रीयतामिति ।

ततो यथोदिते देशे शुद्धे सूद्धृतशल्यके ॥ ४२ ॥

नवहस्तं तथा सप्तपञ्चहस्तमथापि वा ।

अर्धहस्तोच्छ्रितं कृत्वा मण्डपं सुमनोरमम् ॥ ४३ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षैः पूर्वादितोरणम् ।

पलाशामलकौ चैव मधूको बिल्व एव च ॥ ४४ ॥

आग्नेयादिषु कोणेषु तोरणास्तैः प्रकल्पयेत् ।

ध्वजांश्च दश दिक्पालवर्णहेतिविलक्षणान् ॥ ४५ ॥

मण्डपस्य वितानं च विचित्रं धवलं शुचि ।

घण्टाकिङ्किणिकाजालमुक्तादामविराजितम् ॥ ४६ ॥

पर्यन्तपट्टवसनमणिकन्दुकचामरैः ।

अलङ्कृतं दुकूलादिकृतप्रतिसरान्वितम् ॥ ४७ ॥

प्राच्यामग्न्यालयं तस्य कुर्यात् कुण्डं च शोभनम् ।

द्वारेषु कलशांस्तस्य न्यसेच्चाङ्कुरपालिकाः ॥ ४८ ॥

वास्तुपूजां च निर्वर्त्य पुण्याहं वाचयेत् ततः ।

विकिरक्षेपपूर्वं तु कुम्भास्त्रे चाभिपूज्य तु ॥ ४९ ॥

दिक्षु संस्थाप्य लोकेशान् वज्रादीन्यायुधानि च ।

पञ्चगव्यं च सम्पाद्य पञ्चकोष्ठोदितक्रमात् ॥ ५० ॥

प्रोक्ताष्टादशसंस्कारैः संस्कृते कुण्डे शिवामिमाधाय यथावत् स-
न्तर्प्य तस्मिन् यथोक्तं सदाशिवमावाह्याभिपूज्य समिदाज्यचरुतिलैः पञ्चपञ्चा-
हुतीर्हुत्वा पूर्णां च विधाय

मध्येऽस्य सर्वतोभद्रं भद्रकं वा लिखेच्छुभम् ।

विप्रादीनां क्रमात् पञ्चचतुस्त्रिद्विकरैर्मितम् ॥ ५१ ॥

रजोभिरपि तावद्विस्तन्मध्येऽब्जं च पाण्डुरम् ।
 विप्रादीनां स्मृतं मुख्यं द्वारं प्रागादिदिग्गतम् ॥ ५२ ॥
 पीठस्य बाह्यवीथ्यां तु वलीपत्रादिकं लिखेत् ।
 मण्डलाद् बाह्यदिक्ष्वष्टौ लिखेच्छङ्खान् सुपाण्डुरान् ॥ ५३ ॥
 तेषां नामानि चानन्दः सुनन्दो नन्द एव च ।
 नन्दिवर्धननामा च श्रीमुखो विजयस्तथा ॥ ५४ ॥
 तारः सुतारश्चैतेषां मन्त्राः स्युः प्रणवास्त्रयः ।
 आकाराद्याः स्वरा दीर्घाः सानुस्वाराः स्वनाम च ॥ ५५ ॥
 आत्मनेन्ते नमः शब्दस्त्वेभिरावाह्य पूजयेत् ।
 शङ्खानां मध्यदेशेषु विलिखेत् कलशाष्टकम् ॥ ५६ ॥
 मण्डलाभिमुखं तच्च शुक्लं चित्रं च वर्णकैः ।
 सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दः पुष्पनन्दकः ॥ ५७ ॥
 जयोऽथ विजयः पूर्णः पूर्णकुम्भश्च ते क्रमात् ।
 तेषां च मन्त्रान् स्वाख्याभिः शङ्खानामिव योजयेत् ॥ ५८ ॥
 तोरणानां तथाष्टानां लोकेशाख्यान्वितं पृथक् ।
 तत्रायं विशेषः — ओं आं ईं ऊं न्यग्रोधात्मने सुराधिपतोरणाय नमः ।
 एवमेव पलाशादिष्वपि मन्त्रा भवन्ति हि ॥ ५९ ॥
 ततः पीठाद् व(लि ? हि)र्धीथ्यां शङ्खान् षोडश विन्यसेत् ।
 तद्बाह्ये कलशानष्टौ स्थापयेद् दिग्विदिग्गतान् ॥ ६० ॥
 सर्वरत्नौषधीबीजैर्गण्डैर्मृद्भिर्जलैरपि ।
 शङ्खांश्च कलशानेतान् पूरयेत् स्वस्वमन्त्रतः ॥ ६१ ॥
 वस्त्रस्रग्दामकण्ठांश्च चन्दनाक्षतचर्चितान् ।
 पञ्चपल्लववक्त्रांश्च बीजपूरफलाननान् ॥ ६२ ॥

अत्र षोडशशङ्खानामष्टकलशानां च नामान्युच्यन्ते — यान्येव प्रणव-
 दीर्घस्वरत्रयादिकानि आत्मनेनमशब्दान्तानि तत्तन्मन्त्रा भवन्ति । तद् यथा—

आयतः आनन्दः नन्दायतः सुनन्दः महाकुक्षिः नन्दी सुनाभिः नन्दिवर्धनः
 ह्रस्वनाभिः श्रीमुखनाभिः मण्डली विजयः सुघोषः तारः उत्तारः सुतारश्च
 षोडश शङ्खाः पूरणीयाः । मन्थरः सुभद्रः पृथुलोष्ठः सुदन्तः ह्रस्वोष्ठः मन्थ-
 रभीवः जयो विजयश्च कलशा एते पृथक् पृथक् शालिदर्भविष्टरेषु स्थाप्याः ।
 अथौषध्यः कथ्यन्ते — जया विजया जयन्ती अपराजिता विष्णुकान्ता श-
 ङ्खपुष्पी हेमपुष्पी नाकुली विशाला बला अतिबला गन्धनाकुली सहा सह-
 देवा वाराही शतावरी मेदा महामेदा वृधिश्रद्धिः काकौलीसंज्ञा यथालभ-
 मोषधयो ग्राह्याः । रत्नानि माणिक्यमुक्तागोमेदकमरकतपुप्यरागवज्रनील-
 प्रवालस्फटिकानि । बीजानि शालियवमुद्गमाषतिलसिद्धार्थगोधूमा इति सप्त ।
 चन्दनवुङ्कुमागरुकर्पूरकुष्ठमांसीकचचोरोशीरण्यष्टौ गन्धाः । वस्त्रीकाग्रगन्ध-
 पर्वताग्रनदीतीरमहानदीसङ्गमबिल्वमूलगजदन्तगोशृङ्गेभ्यो गृहीता मृदो-
 ऽष्टौ । इत्येभिर्द्रव्यैर्मिश्रितैः शङ्खाश्च कलशाश्च तीर्थजलैरापूर्य षोडशस्वरैः
 शङ्खान् क्रमेणापूरयेत् । अष्टवर्गैः कलशान् शङ्खेषु पृथिव्यादिमूर्त्यष्टकमष्ट-
 दिक्षु विदिक्च्छङ्खेषु वामादिशक्त्यष्टकं बहिः कलशाष्टके विद्येश्वराष्टकं च
 सर्वान् समावाह्य संस्थाप्य विधिवदर्चयेत् । मध्ये पद्मकर्णिकायां सुवर्णरजत-
 ताग्रमृन्मथाद्यन्यतमे शक्त्यनुगुणे कुम्भे सर्वौषधीबीजरत्नगन्धपुष्पान्विते स-
 हिरण्ये तीर्थजलेः मन्त्रसंहितया द्वादशान्तामृतं स्मृत्वापूर्य मनोन्मनीं शक्तिं
 साङ्गमूर्तिमूलमन्त्रं सदाशिवमासनादिक्रमेण यथावदावाह्य सर्वत्र कूर्चानि पल्ल-
 वफलानि च निधायाहतवस्त्रैरवेष्टितकण्ठमालाभिरलङ्कृत्य यथावन्नैवेद्यान्तं
 सम्पूज्य, तत्र रत्नादीनां प्रक्षेपमन्त्रा उच्यन्ते । ओं आं ईं ऊं सर्वरत्नेभ्यो
 विश्वात्मकेभ्यो नमः । प्राग्वत् सर्वबीजेभ्य इन्द्रात्मकेभ्यो नमः । प्राग्वत् सर्वौ-
 षधिभ्यः सोमात्मकेभ्यो नमः । सर्वगन्धेभ्यः पार्थिवात्मकेभ्यो नमः, सर्वमृ-
 द्मयः पृथिव्यात्मकेभ्यो नमः इति विन्यसेत् । एवं कलशशङ्खतोरणरत्नादी-
 न्यभिमन्त्र्य सम्पूज्य नियोजयेत् । तदनु शिष्यं कृतोपवासं कृतस्नाननित्य-
 विधिं निर्वर्तितनैत्यकशिवाचमिकार्यं शुक्लाम्बरं प्रक्षालितपाणिपादं मण्डपस्य
 प्रदक्षिणं कारयित्वा प्रागादि शान्तिकलाद्वाराणां तोरणानां च कृतपूजं प्रागादि-
 स्वर्णानुगुणद्वारेण प्रवेश्य शिवकुम्भास्त्राग्नीनां कृतार्चनप्रणामं स्वयं मन्त्रसंहि-

तया एकैकाहुत्या सन्तर्पितशिवाभिमानाय मण्डपाद् दक्षिणतः कृतपद्मे औदु-
म्बरं श्रीपर्णिकं वा भद्रासनं सदृशेन वस्त्रेणास्तीर्णं विन्यस्य तस्मिन् गायत्री-
जपपरं तस्मिन्ननन्तासन उपवेश्य शङ्खपटहादिमङ्गलवाद्यगतिध्वनिभिर्यथा
दिक्षु ब्राह्मणैः पठ्यमानवेदघोषैश्च तिरोहितान्यध्वनिं सवीजदीक्षादीक्षितैः प्रथ-
मवर्णैः षोडशभिरष्टभिर्वा मूर्तिधरैः सहितो गुरुर्वीजशरात्रनित्रमुष्वाञ्जलि-
कारकनागकर्णाभिन्नपुटोलकाभिः शिष्यं निर्मथ्य तदनु पूर्वोक्ताभिः मृद्वि-
स्तन्मन्त्रेण सर्वाङ्गमालिष्य ततः पञ्चगव्यविल्वपद्मकेसरप्रियङ्गुचूर्णैश्चाथाश्व-
त्थोदुम्बरप्लक्षवटविल्वकथितकषायोदकेन पृथक्कलशस्थापितेन प्रथममभिषिच्य
प्रक्षाल्य धूपान्तमभ्यर्च्य सकलीकृत्य विद्येश्वरकलशैस्तत्तन्मन्त्रैरभिषिच्य धूपा-
न्तमभ्यर्च्य ततः षोडशशङ्खैस्तथैवाभिषिच्य धूपान्तमभ्यर्च्य, ततः शिवकल-
शेन मूर्त्यङ्गमूलजपितेनाभिषिञ्चन् सविद्याविद्येश्वरस्य सशक्तिकस्य विन्द्यादिक-
मोत्पद्यमानमूलाङ्गादिसमस्तमन्त्रसहितस्य सर्वज्ञत्वादिगुण(युक्तः ?) सहितस्य
सृष्टिक्रमेण सुपुञ्जया शिष्यहृदये प्रवेशन्यासि च शिवस्य भावेत् ।

ततश्चास्त्रवर्धन्यास्य परितो रक्षां विधाय शिवकुम्भेनापि तद्वदभिषेच-
येत् । ततो निवर्तिताम्बरस्य वर्णसंख्यया यज्ञोपवीतं दत्त्वोष्णीपमकुटहारमु-
कुराङ्गुलीयच्छत्रचामरगजाश्वशिविकाभृङ्गारकपादुकादीनि चिह्नानि दत्त्वा ग-
न्धादिभिरभ्यर्च्य स्वर्णादिपात्रनिहितैर्वज्राद्यायुधपिष्टप्रदीपाभिः कन्याभिर्वधूभि-
श्चोपनीतैरेनं मङ्गलवाद्यघोषैर्निराजयेत् ।

तदनु शिवाभिमुखं नत्वा सदक्षिणं प्रणामं कारयित्वा देवं विज्ञा-
पयेत् —

त्वत्प्रसादेन भगवन् ! एष प्राप्तस्त्वदाज्ञया ।

महाभिषेकमाचार्यो भवत्वद्यप्रभृत्ययम् ॥ ६३ ॥

इति विज्ञाप्य देवेशं शिवेनोक्तस्तथास्त्विति ।

विसृज्य देवमग्निं च कलशान् शङ्खतोरणान् ॥ ६४ ॥

लोकेशांश्च यथाकामं संपूज्य तु बलिं क्षिपेत् ।

विसर्जयेत् ततस्त्वेनान् मूर्तिधारांश्च लिङ्गिनः ॥ ६५ ॥

विप्रांश्च हेमवस्त्रान्नैः दीनानाथांश्च शक्तितः ।
 परितोप्य गुरुं त्वेनं स्वाधिकारे नियोजयेत् ॥ ६६ ॥
 इदं स्थानमिमे धर्माश्चैते पुस्तकसञ्चयाः ।
 दासीदासादयश्चैते परिपाल्या यथा पुरा ॥ ६७ ॥
 अधिकारानुरूप्येण दीक्षाभिर्दीक्षयेज्जनान् ।
 कर्पणादिप्रतिष्ठान्तं कर्मचक्रं प्रवर्तयन् ॥ ६८ ॥
 व्याख्येयानि च शास्त्राणि दीक्षितेभ्यो न चान्यथा ।
 पालयन् समयाचाराननुग्रहपरो भव ॥ ६९ ॥

इति ।

इति सन्दिश्य तं पूर्वो गुरुर्नवगुरुं ततः ।
 शिवमिष्ट्वा विशेषेण मूलमन्त्रायुतं जपेत् ॥ ७० ॥
 अनेनैव विधानेन राज्यकामं तदाप्तये ।
 भ्रष्टैश्चर्यमपुत्रं च स्त्रियं सौभाग्यासिद्धये ॥ ७१ ॥
 अभिषिञ्चेच्छिवे भक्तान् दीक्षयित्वा न चान्यथा ।
 इत्याचार्यमहाभिषेकाधिकारः ।

एवं कर्तुमशक्तस्याप्याचार्यत्वाभिलाषिणः ॥ ७२ ॥
 चीर्णाचार्यव्रतस्यैवमसमर्थस्य तद्भ्रते ।
 दत्तद्विगुणदानस्य युक्त्या शक्त्यानुरूपतः ॥ ७३ ॥
 मण्डपे सर्वतोभद्रं लिखित्वा मण्डलं शुभम् ।
 ऐशान्यां धिकिरक्षेपात् कुम्भास्त्रे च न्यसेद् यजेत् ॥ ७४ ॥
 मध्यपद्मेऽस्य तु शिवं यथावदभिपूजयेत् ।
 मण्डलाद् बाह्यतो दिक्षु स्वस्तिकाद्यैरलङ्कृते ॥ ७५ ॥
 पश्चिमोत्तरयाम्यैन्द्रशिवदिक्षु विधानतः ।
 कलशान् पञ्च विन्यस्य भूम्यम्ब्वग्निमरुद्वियत् ॥ ७६ ॥
 निवृत्त्यादिकलङ्गैश्च सद्याद्यैश्चाभिपूजितान् ।
 सर्वरत्नौषधीबीजमृद्गन्धकुसुमान्वितान् ॥ ७७ ॥

सहेमफलकूर्चोक्तफलपल्लवशोभितान् ।
 सवस्त्रमालाभरणानासनादिक्रमेण तु ॥ ७८ ॥
 परमीकरणान्तेष्वावाह्य तु कलाः क्रमात् ।
 मूर्त्यङ्गान्यभिसम्पूज्य कुण्डे वह्निं च पूर्ववत् ॥ ७९ ॥
 इष्ट्वा पञ्चाहुतीर्हुत्वा पृथ्व्यादीनां स्वनामभिः ।
 कलानामङ्गमूर्तीनां तारहन्मूलपूर्वकम् ॥ ८० ॥
 समिदाज्यचरुन् लाजतिलान् हुत्वा बलिं क्षिपेत् ।
 शिवमग्निं च सन्धाय पूर्णं हुत्वा यथोदिताम् ॥ ८१ ॥
 अनुज्ञाप्य शिवं पश्चान्मण्डलाद् दक्षिणेऽम्बुजे ।
 कृतानित्यविधिं शिष्यं स्वस्तिकाद्यैः सुवर्चिते ॥ ८२ ॥
 भद्रानन्तासने प्राग्वत् सकलीकृत्य पूजयेत् ।
 सिद्धार्थदधिमृद्गस्मदूर्वागोमयगोलकैः ॥ ८३ ॥
 निर्मथ्य गन्धतोयेन प्रक्षाल्याभ्यर्च्य धूपितम् ।
 पृथङ्मूलशतालव्यैस्तैः कुम्भैः स्वस्वमन्त्रतः ॥ ८४ ॥
 अभिषिच्यात्तवसनमनन्तासनगतं पुनः ।
 सकलीकृत्य सम्पूज्य दत्त्वोष्णीषादिसाधनम् ॥ ८५ ॥
 अधिकारं च विज्ञाप्य शिवायास्मै समर्पयेत् ।
 अनुज्ञाप्य शिवं पश्चाद् गत्वा कुण्डान्तिकं पुनः ॥ ८६ ॥
 पञ्च पञ्चाहुतीराज्यं कलानां च जुहोत्यथ ।
 पूर्णं च हुत्वा तद्धस्तं दक्षिणं परिगृह्य तु ॥ ८७ ॥
 दर्भोल्लुकेन पञ्चाङ्गैः कनिष्ठादिषु लाञ्छयेत् ।
 प्राग्वच्छिवं तथैवाग्निं कुम्भास्त्रे च विसर्जयेत् ॥ ८८ ॥
 हेमवस्त्रान्नपानाद्यैः परितोष्याथ तज्जनम् ।
 शिवगुर्वाज्ञया लब्धमधिकारं प्रवर्तयेत् ॥ ८९ ॥

इत्थं दीक्षाः साभिषेका यथावत् प्राधान्येनात्रोदितास्तन्त्रसिद्धाः ।
 याभिर्विश्वक्लेशहानिं च विन्देद् भोगैश्चर्याण्यप्ययत्नेन मोक्षम् ॥ ९० ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापदे
 साधकदीक्षाचार्याभिषेकपटल एकोनविंशः ।

अथ विंशः पटलः ।

अथ प्रमादस्खलितविस्मृतिच्युतजन्मनाम् ।

दोषाणां प्रशमायात्र प्रायश्चित्तं निगद्यते ॥ १ ॥

हस्तान्निपतिते लिङ्गे स्पृष्टेऽन्यैर्वाप्यदीक्षितैः ।

अघोरायुतजापी स्यात् सविशेषार्चनाच्छुचिः ॥ २ ॥

विशेषार्चनशब्देन पञ्चगव्यपञ्चामृतस्नपनमहानैवेद्याभिकार्यान्तमर्च-
येदिति यावत् ।

द्विहस्तात् पतिते लक्षं जपेत् सम्प्रोक्षणात् परम् ।

द्वित्रिलक्षादिजापी स्यादतश्चोच्चात् पतेद् यदि ॥ ३ ॥

भिन्ने लिङ्गेऽथवा पीठे प्रायश्चित्तं न विद्यते ।

तत एवाप्र(मो ? मा)देन रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ ४ ॥

तथा विशीर्णलिङ्गादेर्महापातकशान्तये ।

प्रायश्चित्तं दशगुणं कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ॥ ५ ॥

अत्रिसर्जित एवेशे स्थण्डिलादावुपद्रुते ।

अघोरपञ्चसाहस्रं जपेद्भुत्वा दशांशतः ॥ ६ ॥

नष्टे दग्धेऽथवा भ्रष्टे लिङ्गे चोरादिभिर्हृते ।

लक्षं जपित्वा सम्प्रोक्ष्य लभ्यं चेत् तद् यजेत् पुनः ॥ ७ ॥

तदलामेऽन्यलिङ्गं वा प्रतिष्ठाप्याभिपूजयेत् ।

सन्ध्यालोपे तु नीरोगः सोपवासः शतं जपेत् ॥ ८ ॥

पूजोपकरणे वामौ पादस्पृष्टे च लङ्घिते ।

जपेत् पञ्चसहस्रं तच्छोधयेत् क्षालनेन च ॥ ९ ॥

पुष्पाम्बुगन्धमृत्पात्रक्षीरान्नाज्यं परित्यजेत् ।

एकाहमर्चनालोपे त्रिरात्रोपोषितो जपेत् ॥ १० ॥

सहस्रं द्विदिनाद्यर्चालोपेऽप्येवं समूहयेत् ।

पञ्चाहादधिकभ्रंशे कृत्वास्मादपि षड्गुणम् ॥ ११ ॥

सहस्रं जुहुयाज्जापस्तत्संख्यो ब्रह्मणां स्मृतः ।

अकामात् सङ्कराणां तु ब्रह्मपञ्चशतं जपेत् ॥ १२ ॥

सोपवासः शुचिः पञ्चगव्यं प्राश्य जुहोति च ।

तत्र

निर्माल्यसङ्करे जाते पञ्चब्रह्मशतं जपेत् ॥ १३ ॥

अकामाद् भक्षणे तस्य सार्धसाहस्रकं जपेत् ।

कामादनन्तयागेन दीक्षया च पदाध्वनः ॥ १४ ॥

शुध्येदतस्तु निर्माल्यं नाश्रीयान्न स्पृशेदपि ।

अनन्तयागो नाम अनन्तेशादिविधेश्वरपरिवृतस्य शिवस्य पञ्चब्रह्म-
मण्डलेऽस्मिन्नेव पटले वक्ष्यमाणो यागो निर्दिष्टः ।

निर्माल्यभेदाः कथ्यन्ते षड्विधास्तेऽपि तद् यथा ॥ १५ ॥

देवद्रव्यं च देवस्वं नैवेद्यं च निवेदितम् ।

चण्डद्रव्यं च निर्माल्यं तेषां लक्षणमुच्यते ॥ १६ ॥

वस्त्रभूषणगन्धाद्यं देवद्रव्यमिति स्मृतम् ।

देवस्वं देवसम्बन्धि ग्रामक्षेत्रादि गोधनम् ॥ १७ ॥

देवार्थं कल्पितान्नाद्यं नैवेद्यं नाम तत् पुनः ।

निवेदिताख्यमुत्सृष्टं चण्डद्रव्यं च तद्गतम् ॥ १८ ॥

गर्भागाराद् बहिःक्षिप्तं निर्माल्यं तन्न संस्पृशेत् ।

षड्विधं चापि निर्माल्यं नोपयुज्यात् कदाचन ॥ १९ ॥

अत्र भोजराजः —

“षड्विधमपि निर्माल्यं न जिघ्रेन्न लङ्घयेत् नाद्यान्न विक्रीणीयात्
क्रव्यादो भवति भुक्त्वा मातङ्गो लङ्घनेऽसिद्धिराघ्राणे वृकः स्पर्शने स्त्रीत्वमथ
चण्डालो विक्रये श्वरः” इति ।

शिवनिर्माल्यवत् सौरं चण्डे दत्तं ततोऽधिकम् ।

गुरुपुस्तकवाङ्मयक्षनागयोगीन्द्रगणमातृगौरीषु शिवनिर्माल्यवद् न
भवति । अचरेष्वपि दशस्थानेषु गुरुव्याख्याकाले शिवकुम्भे देवप्रदक्षिणे वि-
सर्जितेऽपि देवे लिङ्गस्था पूजा । चैललिङ्गे अघटितलिङ्गे आस्थाप्यलिङ्गे चित्र-
रत्नजे हेमजे अन्यस्मिन्नपि सद्यः प्रतिष्ठेति चतुर्थीकर्मावधि निर्माल्यं न भव-
तीति भोजराजः ।

पूजायां गन्धधूपादेरवशाघ्राणदर्शने ॥ २० ॥
 नास्ति दोषो नदीवेगादागतस्पर्शनादिषु ।
 दीक्षितः सूतके वाथ शावाशौचे च भुक्तवान् ॥ २१ ॥
 न कामतः सोपवासो वामदेवसहस्रकम् ।
 जपेत् कामकृते तस्मात् त्रिगुणं शुद्धये स्मृतम् ॥ २२ ॥
 आत्मसम्बन्धिकेऽशौचे तं जनं न स्पृशेत् स्वयम् ।
 पृथक् पाकमुपाश्नीयात् स्नानपूजादि कर्म च ॥ २३ ॥
 निर्वाणदीक्षितो ज्ञानी निःशङ्कः प्राग्वदाचारेत् ।
 निर्बीजदीक्षया चापि साम्यया दीक्षितोऽपि वा ॥ २४ ॥
 स्वयं न संस्पृशेद्विष्णुमग्निं चान्येन पूजयेत् ।
 दीक्षितेनैव शिष्येण पुत्राद्यैर्वाथ बन्धुभिः ॥ २५ ॥
 निर्वर्त्य पूजाहोमाद्यं स्नातः संयतवाङ्मनाः ।
 मनसैवोच्चरन् मन्त्रान् सकलीकरणादिकम् ॥ २६ ॥
 कृत्वा पुष्पाञ्जलिक्षेपैः शिवं तु कृतमण्डले ।
 सम्पूज्य मनसा मन्त्रं जपित्वार्घ्यं प्रणम्य च ॥ २७ ॥
 पृथक्पाकेन भुञ्जानः सूतकादिदिनं नयेत् ।
 सम्यग् ज्ञानी न दुष्येत् तु सूताशौचशतैरपि ॥ २८ ॥
 तृणकाष्ठचयच्छन्नो यथा प्रज्वालितोऽनलः ।
 प्रमादात् सूतकाशौचे भुक्तवैकाहमुपेषितः ॥ २९ ॥
 जपेत् सहस्रं कामेन भुक्त्वा तन्निगुणाच्छुचिः ।
 भुक्त्वा तु सूतकाशौचे तत्समो ह्यशुचिर्भवेत् ॥ ३० ॥
 तद्दिनान्ते तु तावन्ति दिनानि निशि यावकम् ।
 अश्वत्थिकालस्त्रयी स्यात् प्रत्यहं त्रिशतं जपेत् ॥ ३१ ॥
 प्रतिषिद्धान्भुक्तावप्ययमेव विधिः स्मृतः ।
 रेतः स्फन्देद् यदि निशि सहस्रं पुरुषं जपेत् ॥ ३२ ॥
 दिवसे द्विगुणं तस्माद् दद्याच्च यवसं गवाम् ।
 वर्णानां ब्राह्मणादीनां जातीशाः पुरुषादयः ॥ ३३ ॥

अत्र स्वयमुच्छिष्टस्य समानजातीयोच्छिष्टस्पर्शे स्नात्वा स्वजातीश्वर-
शतजपाच्छुद्धिर्भवेत् । अदीक्षितोच्छिष्टस्पर्शे द्विशतं जपेत् । स्वस्मादनन्तर-
वर्णोच्छिष्टस्पर्शे त्वेकाहमुपोष्य स्वजातीश्वरं स्पृष्टवर्णेश्वरं चाप्येकीकृत्य शतं
जपेत् । तत्रैकान्तरवर्णोच्छिष्टस्पर्शे त्वेकाहमुपोष्य स्वजातीश्वरं स्पृष्टवर्णेश्वरं
चाप्येकीकृत्य शतं जपेत् । तत्रैकान्तरवर्णोच्छिष्टस्पर्शे द्विरात्रं द्यन्तरे त्रिरात्र-
मुपोष्य प्राग्वज्जपेत् । एतेषामदीक्षितानां स्पर्शे द्विगुणम् । तद्वत् स्वोत्तरवर्णो-
च्छिष्टस्पर्शेऽपि पादहीनमर्धं च जपोपवासौ विधेयौ । उच्छिष्टः स्वयमुच्छि-
ष्टमन्त्यजं स्पृशेद् यदि त्रिरात्रोपोषितः स्नातः स्वजातीश्वरायुतं जपेत् ।

एकोच्छिष्टे तदर्धं स्यादनुलोमे तदर्धकम् ।

अन्त्यजाः प्रतिलोमाः स्युः कर्माररजकादयः ॥ ३४ ॥

चण्डालोच्छिष्टसंस्पर्शे तीर्थे कृच्छ्रं समाप्य तु ।

अधोरस्यायुतजपाच्छक्त्या दत्त्वा च शुध्यति ॥ ३५ ॥

अत्र स्वयमुच्छिष्टः प्रोक्तानामुच्छिष्टानां स्पर्शे यथोक्तात् पादं चरेत् ।
स्वयमुच्छिष्टस्त्वेषामनुच्छिष्टानां स्पर्शे अर्धं प्रायश्चित्तं चरेत् । यद्वा अन्ये-
षामुच्छिष्टं भुक्त्वा पञ्चब्रह्ममण्डले ब्रह्माण्यभिपूज्य जात्युद्धारेण दीक्षयेत् ।
तच्च मण्डलं चतुर्हस्तं चतुर्द्वारं विधेयम् । तस्मिन् यथादिशं पुरुषादीन् सं-
स्थाप्य मध्ये स्वजातीश्वरमीशानं तत्स्थाने यथावदभिपूज्य स्वजातीश्वरम-
न्त्रेण फडन्तेन संशोध्य जातिमुद्धृत्य स्वाहान्तेन तेनैव मण्डलस्थस्वजातीशे
प्रक्षिप्योद्धृत्य संशोध्यात्मनि तथैव संयोजयेत् । एवं जातिमुद्धृत्य सामग्या
दीक्षया गुरुणा दीक्षयेत् । असन्निहितगुरुः स्वयमेवात्मानं दीक्षयेत् । एवं
दीक्षयितुमसामर्थ्ये षडहान्युपोष्य वन्याशनः स्वजातीश्वरलक्षं जपेत् । अत्र स-
जातीयस्योच्छिष्टं मुक्तैकाहमुपोष्य शतं जपेत् । अनन्तरस्य द्व्यहमुपोष्य
सहस्रं जपेत् । एकान्तरस्य त्र्यहं द्विसाहस्रं च । द्यन्तरस्य द्विगुणमयुतं जपः ।
ब्राह्मणः शूद्रोच्छिष्टं भुक्त्वा पञ्चरात्रमुपोष्य जात्युद्धारदीक्षितो लक्षं जपि-
त्वा कृच्छ्रेण शुध्यति । अनुलोमानामप्येवमूह्यं प्रायश्चित्तम् । अन्त्यजोच्छिष्ट-
भोजने प्रायश्चित्ताभावात् पतत्येव । तस्माद् यत्नेन तत् परिहरेत् । एवं
परलिङ्गचक्रभोजने तज्जातीश्वरस्यायुतं जपेत् । ते चार्हतशाक्यपाशुपतकापा-
लिकाः । एतेषां सद्योजातादयः पतयः । तत्र च कापालिकाभोजने कृच्छ्र-
चान्द्रायणे कृत्वा ईशानं लक्षं जपित्वा जातीश्वरमण्डलेऽन्यलिङ्गेश्वरमभिपूज्य

जात्युद्धारदीक्षितः शुध्यति । अन्यलिङ्गिसंस्पृष्टान्नभोजने त्रिलक्षजपं चान्द्रायणं कुर्यात् ।

परायत्तगृहस्थस्य स्वायत्ताद् द्विगुणो जपः ।

स्वायत्तस्यैतदेव स्यादाचार्य(स्यैकः स्येति) सूचितम् ॥ ३६ ॥

अर्धं समयिनः प्रोक्तं त्रिपादं पुत्रकस्य तु ।

अनुक्तानां च पापानामबुद्धिकरणे तु यत् ॥ ३७ ॥

प्रायश्चित्तं बुद्धिपूर्वं ततोऽपि द्विगुणं स्मृतम् ।

तत्रैकभुक्तनक्तान्नायाचितोपवासानां पृथक् पृथक् क्रमेण त्रिगुणानुष्ठानं कृच्छ्रद्वादशरात्रमिति यावत् । चान्द्रायणं च शुक्लप्रतिपदं प्रारभ्य त्रिषवणस्नायी नियतेन्द्रिय एकग्रासात्प्रभृति प्रतिदिवसं ग्रासवृद्ध्या पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासान् भुक्त्वा तद्वदपरपक्षे प्रतिपदं प्रारभ्य प्रत्यहमेकग्रासह्रासदमावास्यायामेकग्रासं भुक्त्वा समाप्य यवमध्यं भवति । एतद्विपरीतेन शुक्लप्रतिपदि पञ्चदश ग्रासान् भुक्त्वा प्रतिदिनं ग्रासह्रासेन पौर्णमास्यामेकग्रासभोजी कृष्णप्रतिपदं प्रारभ्य ग्रासवृद्ध्यामावास्यायां पञ्चदश ग्रासान् भुक्त्वा पिपीलिकमध्यं चान्द्रायणं भवति । सर्वेषां दुष्कृतानामनुक्तानामपि तत्तत्पापशुद्ध्यर्थं व्रतोपवासकृच्छ्रचान्द्रायणजपहुतदानतीर्थसेवाशिवाचर्चनादिप्रायश्चित्तानि तत्तद्दोषगौरवानुगुणं धर्मशास्त्रोक्तानि विधेयानि । तान्यत्र ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यन्ते । प्रायश्चित्तेषु रोगपीडयातिवार्द्धकेन वा स्वयमसमर्थः शिष्यपुत्रभ्रातृमातृपितृभागिनेयादिभिरात्मनोऽर्थमुपवासजपादिकं कारयेत् ।

प्रायश्चित्तं त्वेवमुक्तं तु येषां दोषाणां तच्छुद्ध्ये तान् प्रयत्नात् ।

बुद्ध्या बुद्ध्या वर्जयेदेव विद्वान् पङ्कास्पर्शः क्षालनाद् यद् वरिष्ठः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे

प्रायश्चित्तपटलो विंशः ॥

अथ एकविंशः पटलः ।

सर्वपूजाविधिच्छिद्रच्युतस्खलितपूर्तिदम् ।

पवित्रारोपणं कुर्यात् प्रतिसंवत्सरं बुधः ॥ १ ॥

उपेक्षयाथवाज्ञानाद् यो न कुर्यात् पवित्रकम् ।

स सिद्धभ्रंशमाप्नोति विघ्नैश्च परिभूयते ॥ २ ॥

विघ्नापहारपूर्णादि फलमस्येति देशिकैः ।

साधकैः पुत्रकैश्चान्यैः कर्तव्यं हि पवित्रकम् ॥ ३ ॥

पूजाजपमिकार्यादेश्च्युतस्वलितदोषतः ।

यत् कृतं पावयत्येनं तस्मादुक्तं पवित्रकम् ॥ ४ ॥

अपि मोहात् प्रमादाद् वा पवित्रं न करोति यः ।

स त्रिलक्षं जपेत् कृष्णं दशांशं जुहुयाद् घृतम् ॥ ५ ॥

अत्र मोहशूरोत्तरे —

“पवित्रेण विना पूजा तामसी परिकीर्तिता ।

राजसी च भवेदिन्द्रपरमीकरणं विना ॥

पत्रिकाभिः प्रसूनैर्वा कुशैर्वा परिकल्पयेत् ।

पवित्रं प्रत्यहं शम्भोर्महापुण्यजिगीषया ॥

इति नित्यपवित्रं स्यात् नैमित्तिकमथोच्यते ।

आषाढस्य सिते पक्षे श्रावणस्य सितेऽसिते ॥

सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां कुर्याद् गन्धपवित्रकम् ।

पवित्रमथ भूतायामाषाढे नियतं स्मृतम् ॥

दीक्षादिस्थापनं चैव पवित्रादि शतक्रतोः ।

अधिमासे न कुर्वीत यदीच्छेच्छुभमात्मनः ॥

पर्वत्रयं भवेद् यत्र रविसङ्क्रान्तिवर्जितम् ।

अधिमासः स विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥”

इति ।

सिनीवालीद्वयं यत्र रविसङ्क्रान्तिमध्यतः ।

अधिमासस्तु स ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ६ ॥

अथ पौष्करेऽपि —

“आषाढादित्रिमासेषु श्रेष्ठमध्याधमं क्रमात् ।

पवित्रफलमुद्दिष्टं नान्यदा काल इष्यते ॥”

इति ।

वसन्तेषु यजेतेति यथासौ वैदिको विधिः ।

व्यावृत्तिमन्यकालस्य दर्शयत्येव नान्यदा ॥ ७ ॥

एतस्मादाषाढश्रावणभाद्रपदानां सितासितपक्षेष्वष्टम्यां चतुर्दश्यां वा
शम्भोः पवित्रं करणीयम् । तदपि मुमुक्षुभिः कृष्णपक्षे बुभुक्षुभिः शुक्लपक्षे
विधेयम् । अन्येषामपि देवानां स्वास्वेव तिथिषु पवित्रकं विधेयम् ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं सूत्रमुक्तं कृतादिषु ।

युगेष्वत्र कलौ शस्तं सूत्रं कार्पासजं नवम् ॥ ८ ॥

नातिस्थूलं नातिसूक्ष्मं विकेशं हिमपाण्डरम् ।

कर्तितं द्विजकन्याभिर्मुख्यं सूत्रं पवित्रके ॥ ९ ॥

मध्यं क्षत्रियवैश्याभिः शूद्राभिरधमं स्मृतम् ।

अधमाङ्कितसूत्रं च ग्राह्यं शक्त्यनुकूलतः ॥ १० ॥

दर्भमुज्जादिभिर्वापि सूत्राभावे पवित्रकम् ।

विदधीत पवित्रं तत् सर्वथा न विलोपयेत् ॥ ११ ॥

सूत्रितं गन्धसूत्रे स्यादन्यत्र नवतन्तुकम् ।

सम्पाद्य तद्दिनात् पूर्वं सप्तमे पञ्चमेऽङ्घ्रि वा ॥ १२ ॥

कृत्वाङ्कुरार्पणं सम्यक् तत्सम्भारान् समाहरेत् ।

चतुरश्रं चतुर्द्वारं मण्डपं कारयेच्छुभम् ॥ १३ ॥

बृहतीमुनिहस्तं वा पञ्चहस्तमथाधमम् ।

चतुस्तोरणसंयुक्तमर्धहस्तोच्छ्रितं स्थलम् ॥ १४ ॥

दुकूलपट्टदेवाङ्गैरथवा वसनैः सितैः ।

सवितानं तु तत् कृत्वा मुक्तादामोपशोभितम् ॥ १५ ॥

नानाविधैः फलैः पुष्पैः मालाभिश्चावलम्बितम् ।

विलिप्तं गोमयाम्भोभिर्दर्पणोदरकुट्टिमम् ॥ १६ ॥

अग्न्यगारं च तत्प्राच्यमैन्द्रकुण्डं मनोहरम् ।

दर्भमालावृतं कुर्यात् सुक्लुवौ चोक्तलक्षणौ ॥ १७ ॥

कलशान् करकं कुम्भान् वर्धनी(भः भा)ण्डगड्डुकान् ।

विकेशनववासांसि होमपात्रादिकं च यत् ॥ १८ ॥

चन्दनागरुकपूरगुग्गुलुंश्च घृतं मधु ।

शर्करालाजसिद्धार्थतिलशालीयवादिकम् ॥ १९ ॥

शालिजांस्तण्डुलान् शुक्लान् समित्कुशफलानि च ।

दीपधूपनिवेद्यादावन्यदप्युपयोगि यत् ॥ २० ॥

सम्पाद्य तत्कर्मकरं जनं तत्र नियोजयेत् ।

ततः सूत्रमुपादाय गत्वा भूरि जलं शुचिः ॥ २१ ॥

क्षाराम्बुशोधितं सम्यक् क्षालितं शुचिभिर्द्विजैः ।

गीतवाद्यादिसंयुक्तं पीठे संस्थाप्य पूजयेत् ॥ २२ ॥

सामान्याभ्येण गन्धाद्यैरभ्यर्च्य च गणेश्वरम् ।

सद्येन क्षालयेत् सूत्रमघोरेण विशोषयेत् ॥ २३ ॥

अभ्यर्च्य हेमपात्रादौ वैणवे वा निधाय तत् ।

आरोप्य गजयानादौ छत्रचामरशोभिते ॥ २४ ॥

शङ्खतूर्यादिनिर्घोषैः सङ्गीतध्वनिमङ्गलैः ।

अलङ्कृतनरस्त्रीकमुच्छ्रितध्वजशोभितम् ॥ २५ ॥

ग्रामं वा नगरं वान्यच्छनैः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।

गत्वा यागालयद्वारं ब्राह्मणैः स्वस्ति वाचयेत् ॥ २६ ॥

संस्थाप्य पीठे सूत्रं तु पुण्याहं वाचयेत् ततः ।

सूत्रे तु नवतन्तूनां देवताश्च विभावयेत् ॥ २७ ॥

प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागा गुहो रविः ।

सादेशः सर्वदेवाश्च तन्तूनां नव देवताः ॥ २८ ॥

पृथिव्याद्या मूर्तयोऽष्टौ शिवश्चाप्यधिदेवताः ।

वामाद्याः शक्तयस्त्वेषां ताः शक्तीर्नव संस्मरेत् ॥ २९ ॥

एतेषां नामभिस्तन्तून् नमोनैरभिपूजयेत् ।

कालात्मानं ततः सूत्रे नवभेदं च तन्तुषु ॥ ३० ॥

तुष्टिं लवं निमेषं च काष्ठां चैव कलामपि ।

घटिकां च मुहूर्तं च दिवसं च निशां यजेत् ॥ ३१ ॥

नक्षत्रतिथिवारांश्च पक्षौ मासानृतूनपि ।

संवत्सरं च क्रमशस्तन्तुसंस्थान् प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥

तारद्वयदिभिः स्वनामभिर्नमोनैः पूजयेत् प्रार्थयेच्च ।

तुल्यादिरब्दपर्यन्तः कालात्मा विश्वगो विभुः ।
 अनाद्यन्तश्च यो नित्यस्तस्मै कालात्मने नमः ॥ ३३ ॥
 इति सूत्रे यजेद् देवं कालतत्त्वात्मकं शिवम् ।
 सान्निध्यं तस्य संस्मृत्य यावदारोप्यते शिवे ॥ ३४ ॥

तदनु

शिवहस्तं विधायाग्रे परमीकरणान्वितम् ।
 कुर्यात् पवित्रनिर्माणं वामदेवं स्मरन् जपन् ॥ ३५ ॥
 तत्र गन्धपवित्रं स्यादेकग्रन्थ्यल्पतन्तुकम् ।
 कनिष्ठसंख्यमित्येके त्रिसूत्रेण विनिर्मितम् ॥ ३६ ॥
 हस्तादिनवहस्तान्तलिङ्गानां स्यात् पवित्रकम् ।
 अष्टाविंशतिमारभ्य यावदष्टोत्तरं शतम् ॥ ३७ ॥
 दशवृद्धिकमात् कुर्यात् पवित्रं नवतन्तुभिः ।
 अयं हि पाक्षिकः कल्पो मुख्यपक्षोऽभिधीयते ॥ ३८ ॥
 सर्वेषां स्थिरलिङ्गानामव्यक्तानां विशेषतः ।
 चलानां च यथा सूत्रैरष्टोत्तरशतैः स्मृतः ॥ ३९ ॥
 अथैकाशीतिसंख्यैर्वा पञ्चाशद्विस्तृतः परम् ।
 षट्त्रिंशत्संख्यसूत्रैर्वा श्रेष्ठमध्याधमो विधिः ॥ ४० ॥
 प्रोक्तः कनिष्ठलिङ्गेषु कनिष्ठार्चनशक्तिषु ।
 तस्माच्छक्यनुसारेण विदधीत पवित्रकम् ॥ ४१ ॥
 स्थिराणामिह लिङ्गानां लिङ्गमस्तकमानतः ।
 शिरःपवित्रत्रितयं कुर्यात् तत्त्वत्रयात्मकम् ॥ ४२ ॥
 चतुर्थं सार्वतत्त्वं तु कुर्याद् गङ्गावतारकम् ।
 निदेशेषपिण्डकास्पर्शालम्बितं लिङ्गमस्तकात् ॥ ४३ ॥
 कथ्यते चललिङ्गानां स्थण्डिलानां पवित्रके ।
 उत्तमाद्यर्चनाभेदाद् विस्तारो हि यथा भवेत् ॥ ४४ ॥
 द्वादशाष्टचतुःसंख्यैरङ्गुलैर्विस्तृतानि तु ।
 श्रेष्ठमध्याधमानि स्युः पवित्राणि यथाक्रमम् ॥ ४५ ॥

द्वादशाङ्गुलान्यष्टाङ्गुलानि चतुरङ्गुलानी'ति भोजराजः ।

शिरःपवित्रान्नितयमुत्तमादित्रयं भवेत् ।

एकस्मिन्नेव लिङ्गे तत् प्रयोज्यं मकुटाकृति ॥ ४६ ॥

गङ्गावतारकं तत्र कुर्यात् तत्त्वाङ्गुलैः समम् ।

अत्र पवित्रग्रन्थिपरिमाणे सोमशम्भुः ---

“ग्रन्थयो दश कर्तव्या अथवा तत्त्वसंख्यया ।

अन्तरं वा यथाशोभमेकद्विचतुरङ्गुलम् ।

अधिका वा यथाकामं कर्तव्या ग्रन्थयः समाः ॥”

दशग्रन्थीनां नामधेयानि चाह —

“प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी त्वपराजिता ।

पञ्चमी तु जया षष्ठी अजिता सप्तमी क्रिया ॥

शिवा मनोन्मनी चैव दशमी सर्वतोमुखा ।”

इति ।

गङ्गावतारकस्यापि ग्रन्थयो द्वादशाथवा ॥ ४७ ॥

तत्तन्तुसंख्यया वा स्युर्यथाशोभं च तद् भवेत् ।

कुर्यादव्यक्तलिङ्गानां पवित्राणां चतुष्टयम् ॥ ४८ ॥

तथैव मुखलिङ्गानां व्यक्तेष्वेकैकमेव वा ।

स्वमूर्ती च गणाधीशे गुरुपङ्क्तौ च पुस्तके ॥ ४९ ॥

शिवकुम्भेऽस्त्रवर्धन्यां दिक्पालास्त्रवृषेष्वापि ।

द्वारेशानां तथैकैकं पवित्रं परिकल्पयेत् ॥ ५० ॥

कण्ठादानाभिलम्बीनि तानि व्यक्तेषु कल्पयेत् ।

गौर्याश्चैव महालक्ष्म्या दुर्गायाश्चाष्टमातृषु ॥ ५१ ॥

सरस्वत्याः पवित्राणि त्रीणि त्रीणि प्रकल्पयेत् ।

गङ्गावतारहीनानीति यावत् ।

विष्णुभास्करवह्नीनां चण्डेशस्कन्दबेधसाम् ॥ ५२ ॥

शिवतुल्यं पवित्राणां पृथगुक्तं चतुष्टयम् ।

एवं कृत्वा पवित्राणि तद्गन्थानिथ रक्षयेत् ॥ ५३ ॥

कर्पूरकुङ्कुमनिशारोचनागरुगैरिकैः ।

यथालाभं समं पिष्ट्वा पुरुषेणाभिरञ्जयेत् ॥ ५४ ॥

अथ मृदारुवंशादिपात्रत्रातं पुरातनम् ।

परित्यज्य नवं सर्वं ग्राह्यं पूजोपयोगि यत् ॥ ५५ ॥

“सुक् पुराणाप्यदुष्टैव सुवं कुर्यान्नवं शुभम् ”

इति पौष्करे ।

“विहाय सुक्सुवौ शक्र! त्यजेत् सर्वं पुरातनम् ”

इति मोहशूरोत्तरे ।

तदनु सप्तम्यां त्रयोदश्यां वा सोपवासः कृतस्नानसन्ध्याविधिः स्नानप-
टलोक्तमार्गेण कृतमन्त्रादिविशेषतर्पणो यागधामादिकं सर्वं त्रिवृत्सूत्रेणावेष्ट्य
परिगृहीतभूपदेशे प्राग्भागे सूर्यं यथावदभ्यर्च्य तदनन्तरं नित्यविधिना शिव-
मग्निं च संपूज्य मण्डपस्य प्राग्दक्षिणोत्तरपश्चिमेषु ऋग्यजुःसामाथर्वविदो वि-
शुद्धान् ब्राह्मणान् पवित्रारोपणमङ्गलाङ्गतया भवद्विरध्ययनं कर्तव्यमिति गन्ध-
पुष्पादिभिरभ्यर्च्यार्ध्ययने नियोज्य प्रक्षालितपाणिपादो नैमित्तिकपूजार्थं याग-
मण्डपद्वाराण्यस्त्रेण संप्रोक्ष्य तत्र प्राच्यां शान्तिकलाद्वारं दक्षिणे विद्यां पश्चिमे
निवृत्तिमुत्तरे प्रतिष्ठां च तारहृद्वीजादिकं तत्कलानाम्ना द्वाराय नमोन्तं सं-
पूज्य तत्तच्छास्त्राश्रयौ द्वारपालौ च नन्दीशादिकौ तन्नामभिर्नमोन्तमर्चयेत् ।

नन्दीशं च महाकालं भृङ्गीशं गणनायकम् ।

वृषभं षण्मुखं देवीं चण्डं पूर्वादितो यजेत् ॥ ५६ ॥

ततस्तु पश्चिमे द्वारे नित्योक्तान् द्वारपान् यजेत् ।

नाराचास्त्रं प्रयुज्याथ पार्ष्णिघातत्रयेण च ॥ ५७ ॥

छोटिकातर्जनीभिश्च विघ्नानुत्सार्य दक्षिणाम् ।

शाखामाश्रित्य गेहान्तैः प्रविश्यास्त्रं यथापुरम् ॥ ५८ ॥

विन्यस्य देहलीमध्ये परिक्रामन् प्रदक्षिणम् ।

वास्तुपं वेधसं चेष्टा स्वासनं च यथापुरम् ॥ ५९ ॥

अथ वेदिकायामुदङ्मुख उपविश्य कृतात्मशुद्धिः सकलीकृत्य विशेष-
षार्घ्यमभ्यर्च्य स्वशिरश्च पूजोपकरणान्यर्घ्यजलैरस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य वर्मणावकुण्ठ्य
द्रव्याश्रयमन्त्रशुद्धिं प्राग्वद् विधाय विधृतभस्मत्रिपुण्ड्रचन्दनतिलकसितकुसुमः
सोत्तरीयो गृहीतज्ञानखड्गः सुप्रतिष्ठादिपञ्चकोष्ठेषु दीक्षोक्तमार्गेण विहितप-
ञ्चगव्यो निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणखननावकिरणपूरणसमीकरणसेचननि-
कुट्टनसंमार्जनोपलेपनवज्रीकरणानि हृदयास्त्रवर्ममूलैः क्रमेण विधाय पञ्च-
गव्येन सम्प्रोक्ष्यैवं मण्डपं संस्कृत्य दीक्षोक्तमार्गेण विकिरणक्षेपपूर्वं कुम्भव-
र्धन्यौ चलाचलासनस्थावभिपूज्य तदनु मण्डपान्तर्थादिशं कृतमण्डलधा-
न्योपरि त्रिसूत्रवेष्टितचूतादिपल्लवफलविधानगन्धाक्षतपुष्पकूर्चाढ्येषु सलिलपूर्ण-
कुम्भेषु लोकपालानावाह्याभ्यर्च्य तदस्त्राणि च तेषां शिवाज्ञाः श्रावयेत् ।

भो भो शक्र! त्वया स्वस्यां दिशि विघ्नप्रशान्तये ।

स्थातव्यं सावधानेन ह्यायागान्तं शिवाज्ञया ॥ ६० ॥

इति संश्राव्य लोकेशान् परिभ्रम्यास्त्रकुम्भकौ ।

अस्त्रदुर्गमनुस्मृत्य स्थिरासनगतौ यजेत् ॥ ६१ ॥

संस्मृत्य च तयोयोगं मुद्रया प्रागुपात्तया ।

कुम्भेशे ज्ञानखड्गं तं समर्प्य प्रार्थयेच्छिवम् ॥ ६२ ॥

ओम्

आयागान्तं त्वया शम्भो! स्थातव्यं शिवया सह ।

समुतेन गणैः सार्धं योगाध्यक्षेण शङ्कर ! ॥ ६३ ॥

इति विज्ञाप्य निवेद्यान्तमभ्यर्च्य संनिरोध्य यथास्थानमुपदेश्य लिङ्गशुद्धि-
प्रभृत्यावाहनादिभिश्च पञ्चगव्यपञ्चामृतगन्धजलामिषेकैरुपचारपटलोक्तमा-
र्गेण संस्नाप्य वसनभूषणगन्धादिभिश्च लिङ्गस्थं शिवं निवेद्यान्तमभ्यर्च्यार्थ
मध्ये वैशान्यामुत्तरे वा भद्रकलिङ्गोद्भवाद्यन्यतमे मण्डले च शिवमासनावाह-
नादिभिः स्नपनवर्जं निवेद्यान्तमभिपूज्यामिकार्यपटलोक्तमार्गेण प्राच्यां कुण्डे-
ऽग्निमाधाय शिवमावाह्याभ्यर्च्य यथावत् सन्तर्प्य मण्डलस्थशिवशिखानिर्गत-
ज्योतिषा वह्निस्थशिवनासाम्निनिर्गतज्योतिः स्वनाडीमार्गेणाविच्छिन्नं विद्युल-
तासंस्थानं सञ्चिन्त्य सन्ध्यायामेर्हदये शिवमभिपूज्याथ चरुं श्रपयेत् ।

तद् यथा —

कुण्डात् पश्चिमतश्चुलिं दक्षिणे वोपलिप्य तु ।
 अस्त्रेणोल्लिख्य चावोक्ष्य कवचेनावकुण्ठयेत् ॥ ६४ ॥
 मार्जयित्वोपलिप्याथ चुलिं शक्तिं विभावयेत् ।
 धर्माधर्मभुजामेवं कल्पिताशेषविग्रहाम् ॥ ६५ ॥
 अभ्यर्च्य गन्धधूपाद्यैस्ततोऽग्निं पूर्वमुद्धृतम् ।
 संस्कृतं पञ्चसंस्कारैस्तस्यां चुल्ल्यां नियोजयेत् ॥ ६६ ॥
 शिवमग्निं च तां शक्तिमुभावभ्यर्चयेत् पुनः ।
 औदुम्बरीं मृन्मयीं वा चरुस्थालीं तु निर्त्रणाम् ॥ ६७ ॥
 धौतामस्त्रेण कवचेनावकुण्ठ्य निरीक्षिताम् ।
 सम्प्रोक्ष्याभ्युक्ष्य सन्ताड्य गन्धेनालिप्य धूपयेत् ॥ ६८ ॥
 कुशदाम्ना तु तत्कण्ठे वर्मणावेष्ट्य मण्डले ।
 प्रोक्षितेऽस्त्रेण कवचेनावृतेऽस्त्राभिमन्त्रिते ॥ ६९ ॥
 स्थापयेत् तामधोवक्त्रां षडुत्थे दर्भविष्टरे ।
 तस्यां साङ्गं शिवं चेष्ट्वा प्रोक्तानामाज्यरूपिताम् ॥ ७० ॥
 सद्योदुग्धेन गव्येन शुद्धक्षीरेण पूरयेत् ।
 स्थालीमारोप्य तच्चुल्ल्यां धवलाञ्जालितण्डुलान् ॥ ७१ ॥
 पञ्चप्रसरमात्रांस्तु धौतान् क्षीरे विनिक्षिपेत् ।
 आग्नेय्यामुपविश्याथ चालनोद्धाटनं क्रमात् ॥ ७२ ॥
 दव्यास्त्रेण सकृत् कुर्याद्भस्वप्रासादमुच्चरन् ।
 तं चरुं श्रपयित्वाथ मन्त्रसंहितया चरौ ॥ ७३ ॥
 सुसंस्विन्नो भवेत्युक्त्वा घृतेनैवाभिघारयेत् ।
 तप्ताभिघारं कृत्वैवं मण्डले दर्भविष्टरे ॥ ७४ ॥
 अवतार्य द्वितीये तं चरुं संहितया पुनः ।
 शीतो भवेति आज्येन कृत्वा शीताभिघारणम् ॥ ७५ ॥

मृदम्भोभिर्बहिः स्थालीं संमृज्यास्त्रेण रक्षया ।
 त्रिपुण्ड्राङ्गां विधायैनाममृतीकृत्य मुद्रया ॥ ७६ ॥
 कुण्डस्य पश्चिमे किञ्चिन्मण्डले पूर्ववन्न्यसेत् ।
 हृदाभ्यर्च्य घृतं हुत्वा शिवाङ्गैस्तु सकृत् सकृत् ॥ ७७ ॥
 संपातयेच्चरौ तस्मिन् मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ।
 हुत्वा सम्पात्य तं पश्चात् त्रिभागं विभजेच्चरुम् ॥ ७८ ॥
 शिवाग्न्योर्मधुसर्पिर्भ्यामात्मभागं घृतेन तु ।
 आयोज्य शिवभागं तु हृदा संपूज्य विन्यसेत् ॥ ७९ ॥

तदनु देवसमीपं गत्वाष्टपुष्पिकां दत्त्वा दन्तकाष्ठताम्बूले प्राच्यां पु-
 रुषेण भस्माक्षमालादण्डकौपीनभिक्षापात्राणि दक्षिणेऽधोरेण मृत्कुशाम्बुहोमद्र-
 व्याणि पश्चिमे सद्येन धात्रीफलोचनाकुङ्कुमशलाकाकङ्कतकज्जलान्युत्तरे वा-
 मेन पञ्चगव्यपादुकाछत्रयोगपट्टासनान्यैशान्यामीशानेन विन्यस्यार्चयेत् ।

एतेषां यदसम्पन्नं मनसा तत् प्रकल्पयेत् ।
 देवांशं तु चरुं शस्त्रप्रोक्षितं वर्मरक्षितम् ॥ ८० ॥
 हृदाभ्यर्च्यामृतीकृत्य ब्रह्मभिस्तं निवेदयेत् ।
 ततः पवित्राण्यादाय हेमवेत्रादिपात्रके ॥ ८१ ॥
 कृष्णाजिनदुकूलादिच्छादिते विन्यसेद्धृदा ।
 प्रोक्ष्यास्त्रात् संहितामन्त्रैरालभ्याभ्यर्च्य संस्मरेत् ॥ ८२ ॥
 संवत्सरात्मकं शम्भुं सर्वकृत्यैकसाक्षिणम् ।
 गोप्तारमव्ययं विश्वभोगमोक्षफलप्रदम् ॥ ८३ ॥
 कृताकृतसमुत्सृष्टकृष्टकर्माभिपूरकम् ।
 विभावयेत् पवित्रेषु ततः प्रकृतिसंख्यया ॥ ८४ ॥
 हुत्वाग्नौ तत्र मूलेन तेषु संपातयेद् घृतम् ।
 संपातशोधितान्येवमिष्ट्वा संहितया ततः ॥ ८५ ॥
 प्राक् पूजिताय सूर्याय दद्याद् गन्धपवित्रकम् ।
 सुधूपितं सपुष्पं तन्मूलकुम्भामृतीकृतम् ॥ ८६ ॥

रेचान्तमूलमन्त्रेण तारं सर्वात्मनेन्तकम् ।

उत्तार्यारात्रिकं पश्चादाचान्तः सकलीतनुः ॥ ८७ ॥

त्रिसूच्या वेष्टयेत् सर्वं प्रासादं मण्डपं तथा ।

पूजोपकरणत्रातं सर्वं तारेण वेष्टयेत् ॥ ८८ ॥

नन्दादिद्वारपालेभ्यो वास्तुपन्नक्षणोरपि ।

लोकेशेभ्यस्तदस्त्रेभ्यो दत्त्वा गन्धपवित्रकम् ॥ ८९ ॥

तदनु कुण्डसमीपात् पवित्राणि पात्रस्थान्यादाय शिवकुम्भाग्रे संस्था-
प्य रक्षार्थं कुम्भस्थाय शिवायानेन समर्पयेत् ।

ओं

भगवन्! संस्कृतान्यत्र पवित्राणि यथाविधि ।

समर्पयामि तानीह तुभ्यं रक्षस्व शङ्कर! ॥ ९० ॥

इति समर्पयेत् ।

तदनु तस्माद् गन्धपवित्राणि गृहीत्वा शिवकुम्भास्त्रवर्धनीगणपतिगु-
रुपाङ्गिषु तत्तन्मन्त्रैः सर्वतत्त्वात्मने नमोन्तैरारोप्य पृथगारात्रिकमुत्तार्य कृतम-
ण्डलके देवाभिमुखः स्वयमुपविश्य स्वात्मन्यनेन पवित्रमारोपयेत् ।

ओं

सांवत्सरस्य यागस्य परिपूर्तिकरे व्रते ।

पवित्रके पवित्रात्मा पवित्रं धारयाम्यहम् ॥ ९१ ॥

इत्युक्त्वा तारमूलशिवाय नमोन्तमात्मन्यारोप्याचम्य देवाभिमुख उपविश्य
तदर्थं निर्मितं गन्धपवित्रकं गन्धपङ्कानुरञ्जितं सुधूपितं सदूर्वाक्षतमञ्जलिनादाय
मन्त्रसंहितयामृतीकृत्यानेनाभिमन्त्र्यारोपयेत् ।

ओं समस्तविधिच्छिद्रपूरणेशमघं प्रति ।

प्रभोऽद्यामन्त्रयामि त्वां (त्वम्)दिच्छावासिकारक! ॥ ९२ ॥

तत्सिद्धिमनुजानीहि यजतश्चिदाचित्पते! ।

सर्वथा सर्वदा शम्भो! नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे ॥ ९३ ॥

इति रेचकेणामृतीकृत्य तारमूलं च शिवाय नमोन्तमुत्तार्य भगवते गन्धपवि-
त्रमारोपयेत् । अनन्तरमारात्रिकमुत्तार्यानेन प्रार्थयेत् ।

ओं

आमन्त्रितोऽसि देवेश ! सह देव्या गणेश्वरैः ।

मन्त्रेशैर्लोकपालैश्च सहितः परिवारकैः ॥ ९४ ॥

निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रभाते तु पावित्रकम् ।

नियमं च करिष्यामि परमेश ! तवाज्ञया ॥ ९५ ॥

इति शिवं प्रार्थ्य तथास्त्विति शिवेनानुज्ञातः तदनु विभवानुगुणं विशेषनै-
वेद्यं देवाय निवेद्य ताम्बूलमुखवासान्तं गतिनृत्तादिभिराभिनन्द्य भगवतानु-
ज्ञातः बहिर्निर्गत्याम्रये च मेखलायां गन्धपावित्रमारोप्य चरोरंशमपि हुत्वा
तच्छेषेण तत्समीपे अग्निकार्यबलिं निक्षिप्यानुज्ञाप्य बहिर्निर्गत्य सगन्धकुसुम-
जलधूपदीपं पात्रशेषात्नेन संहितामन्त्रैर्दशदिक्षु बलिं दद्यात् ।

ओमिन्द्राय प्रतिगृह्य नम इत्यादिभिः । पुनश्च,

ओं पूर्वादिदिग्वासिभ्यो दिगीश्वरभूतमातृगणरुद्रक्षेत्रपालादिकेभ्यः स्वा-
हेति दशदिक्षु बलिं विकीर्य समाचम्यच्छिद्रपूरणकप्रायश्चित्तमङ्गैस्त्रिष्वङ्गुलैः मू-
र्तिभिः पञ्चकृत्वो मूलेन दशकृत्वोऽघोरेणाष्टोत्तरशतं तिलसिद्धार्थलाजघृतैर्हुत्वा
पूर्णां चाथ व्याहृतीभिश्चाग्रये सोमायाम्नीषोमाभ्यामग्रये स्विष्टकृते चेति हुत्वा-
भ्यर्च्य बहिःस्थशिवं संहितया नाडीमार्गेण मण्डलस्थशिवे संयोज्य देवमभि-
पूज्य सिद्धान्तपुस्तकाधिष्ठिते विद्यापीठे शिववद् विद्यानामभिरभ्यर्चिते दशा-
क्षरीवागीश्वर्या प्रणवहृदयमूलविद्यातत्त्वात्मने नमोन्तं गन्धपावित्रमारोप्यारा-
त्रिकमुत्तार्याथास्त्रवर्मसंपुटे पात्रे महापावित्राणि संस्थाप्य मन्त्रसंहितयाभिम-
न्यास्त्रवर्मभ्यां संरक्ष्यामिपूज्य कुम्भस्थाय रक्षां विज्ञाप्य भगवन्तं प्रणम्य
क्रियां समर्प्य निश्छिद्रं कर्म मेऽस्त्वदमिति भगवतानुज्ञातो बहिर्निर्गत्य प्राची-
नेषु त्रिषु मण्डलेषु दीक्षोक्तमार्गेण पञ्चगव्यं चरुं दन्तधावनं च भजेत् ।

तत्रोपवासस्य नियतत्वाच्चरोः शेषभक्षणस्य प्राप्तत्वाच्च प्राणाहुतिपञ्च-
कमात्रमेव प्राप्नीयात् ।

अत्र पौष्करे —

“उपवासे तु नियते सम्प्राप्ते शेषभक्षणे ।

प्राणामिहोत्रमात्राशी सोपवासो न दुष्यति ॥”

इति ।

अन्यत्रापि श्राद्धप्रकरणे —

“उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥”

इति । अथाचम्य दर्भशय्यायां प्राचीनमस्तको बुभुक्षुः मुमुक्षुर्भस्मशय्यायामु-
पविशेत् ।

अत्र सोमशम्भुः —

“आचान्तो मन्त्रसन्नद्धः कृतसङ्गीतजागरः ।

आसीतानुस्मरन्नीशं बुभुक्षुर्दर्भसंस्तरे ॥

अनेनैव प्रकारेण मुमुक्षुरपि संविशेत् ।

केवलं भस्मशय्यायां सोपवासः समाहितः ॥”

इति । कृतसङ्गीतजागर इत्युक्तत्वात् स्वापो न कर्तव्यः ।

मोहशूरोत्तरे च —

“क्रियासमर्पणं कृत्वा शिवाग्रे क्षपयेन्निशाम् ।

जपध्यानरतो भूत्वा स्तुतिगीतपरोऽथवा ॥”

इति । एतस्माद् दर्भविष्टरस्थेन देवाग्रे सोपवासेन जागरिणा भवितव्यम् ।

अथ सूर्योदयात् पूर्वं स्नातः सन्ध्यां समाप्य च ।

सामान्यार्घ्येण सम्पूज्य गन्धसूत्राण्यनुक्रमात् ॥ ९१ ॥

अविसर्जित एवेशे ऐशान्यां मण्डले न्यसेत् ।

देवं विमृज्य सापेक्षं निर्माह्यमपनीय च ॥ ९७ ॥

समाचम्य यथापूर्वं कृत्वात्मादिविशोधनम् ।

इष्ट्वा सूर्यं ततो द्वारलोकेशास्त्रार्चनादनु ॥ ९८ ॥

पञ्चगव्यादिभिर्देवं यजेन्नित्यविधानतः ।

कुम्भास्त्रमण्डलेशामीनिष्ट्वा पूर्णं बलिं तथा ॥ ९९ ॥

कृत्वा नित्यं समाप्यैवं नैमित्तिकमुपक्रमेत् ।

तत्राविसर्जित एव देवे अग्नौ च निर्माल्यमपनीय चरुवर्जं दन्तकाष्ठा-
दिकं च यथास्थानं विन्यस्य यन्त्रलिङ्गहेमगोलकपट्टसगन्धादिभिर्यथाविभवं
देवमलङ्कृत्याघोराष्टशतं प्रायश्चित्तं हुत्वा पूर्णं चाथ सूर्याय स्वमन्त्रेण महा-
पवित्राणि धूपितान्यारोप्यारात्रिकमुत्तार्याचम्य प्राग्वद् द्वारेशवास्तुपद्मलोके-
शास्त्रगणपतिगुरुणां स्वस्वमन्त्रैः प्राग्वदारोप्यात्मनि च पूर्ववन्मन्त्रेण पवित्रमा-
रोप्याचम्य स्वयं सदाशिवात्मा देवाभिमुखमुपविश्यार्घ्यं दत्त्वाष्टपुष्पिकयाभ्य-
र्च्य कालात्मानं त्रुटिलवनिमेषकाष्ठाघटिकामुहूर्ताहोरात्रपक्षमासर्त्तयनसंवत्सर-
विग्रहं सर्वशरीरेन्द्रियार्थव्यवहारकारणं

कृताकृतसमुत्सृष्टक्लिष्टकर्मैकसाक्षिणम् ॥ १०० ॥

क्षेत्रगोप्तारमीशानं शरण्यं शुद्धमानसः ।

एवम्भूतं शिवमनुस्मरन् शिरःपवित्रं प्रथममादाय धूपयित्वा सपुष्पा-
क्षतदूर्वाग्रं किञ्चित् कुम्भाभिमुखशिवमनेन विज्ञाप्यारोपयेत् ।

ओम्

कालात्मना त्वया देव ! यद् दृष्टं मामके विधौ ॥ १०१ ॥

कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं धृतं गुप्तं च मत्कृतम् ।

तदस्तु क्लिष्टमक्लिष्टं कृतं पुष्टं सुसत्कृतम् ॥ १०२ ॥

सर्वात्मनामुना शम्भो ! पवित्रेण त्वदिच्छया ।

ओम् पूरय पूरय मघव्रतनियमेश्वराय स्वाहा । तारमूलं शिवतत्त्वा-
याधिपतये शिवाय नमः इत्यनेनैकं पवित्रमारोप्यान्यत् पवित्रद्वयमप्येवं विद्या-
तत्त्वात्मतत्त्वाधिपतये नमः इत्यारोपयेत् ।

शिवतत्त्वे शिवान्ते तु रुद्रकारणपालिते ॥ १०३ ॥

मूलं शिवान्तमुच्चार्य पवित्रमधिरोपयेत् ।

विद्यातत्त्वे तु विद्यान्ते विष्णुकारणपालिते ॥ १०४ ॥

ईश्वरान्तं समुच्चार्य द्वितीयमधिरोपयेत् ।

आत्मतत्त्वे प्रकृत्यन्ते ब्रह्मकारणपालिते ॥ १०५ ॥

मूलं सदाशिवान्तं स्यात् तृतीयं चाधिरोपयेत् ।

सर्वतत्त्वाधिपान्तं तत् सर्वकारणपालितम् ॥ १०६ ॥

णारोप्यासति स्थण्डिले समावाह्याभ्यर्च्य तन्निर्मोल्यादिकमशेषं चण्डनाथाय समर्पयेत् ।

“अथवा स्थण्डिले चण्डं पीठस्थं + + पूजयेत् ।”

इति सोमशम्भुः ।

ओम्,

यत् किञ्चिद् वार्षिकं कर्म कृतं न्यूनाधिकं मया ॥ १२२ ॥

सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं चण्डनाथ ! तवाज्ञया ।

इति तं प्रार्थयेत् पश्चाद् गन्धाद्यैरर्चयेदपि ॥ १२३ ॥

पायसं च निवेद्यास्मै नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् ।

तन्निर्मोल्यादिकं सर्वमन्धकूपेऽथवाग्भसि ॥ १२४ ॥

प्रभूते निक्षिपेत् तन्तूञ्जप्त्वा छित्त्वा विशेषतः ।

अथ संशोध्य भूमिं तु सलिलैर्गोमयाप्लुतैः ॥ १२५ ॥

ततस्त्वष्ट्रोत्तरशतैः कलशैर्बाथ शक्तितः ।

नवकेनाथवा देवं स्नपयेदुक्तमार्गतः ॥ १२६ ॥

सविशेषं च सम्पूज्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ।

पवित्रमेवं प्रतिवत्सरं तु यः करोति भक्त्या स्खलिताभिपूरणम् ।

अवाप्य पूजादिफलं स चाखिलं प्रयाति शम्भोः पदमव्ययं शिवम् ॥ १२७ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे
पवित्रारोपणपटल एकविंशः ॥

अथ द्वार्विंशः पटलः ।

अथोच्यते दामनकी तु पूजा वासन्तिकी तुष्टिकरीन्दुमौलेः ।

यदाश्रमं हैमवतं तु देवो देव्या विहीनश्चिरमध्युवास ॥ १ ॥

नन्दीश्वराद्यैः सहितो गणेशैरुपास्यमानश्च मुनीन्द्रवृन्दैः ।

स्वात्मानमात्मन्यवलोक्य शश्वत् सबीजयोगं प्रथयन् समाधिम् ॥ २ ॥

कालेऽथ तस्मिन् किल तारकाख्यो जित्वा सुरेन्द्रं सह देववृन्दैः

सन्तापयामास नितान्तमुग्रः कल्पान्तसूर्यप्रतिमोऽसुरेन्द्रः ॥ ३ ॥

अथेन्द्रमुख्यैश्च सुरैर्मुनीन्द्रैरभ्यर्थितस्तच्छमनाय वेधाः ।
 प्रोवाच देवान् गिरिशाय गौरीं यतात्मने रोचयितुं यतध्वम् ॥ ४ ॥
 नान्योऽस्ति लोके शिवयोः प्रभावाद् दैत्येन्द्रतेजःप्रशमैऽभ्युपायः ।
 एतद्धि कार्यं महदेवमुक्तैर्देवैस्तथा तत् प्रतिपन्नमासीत् ॥ ५ ॥
 तत्रेन्द्रमुख्यैरखिलैर्मरुद्भिस्तत्कर्म सम्पादयितुं नियुक्तः ।
 सख्या वसन्तेन सहैव कामः स्थाण्वाश्रमं हैमवतं जगाम ॥ ६ ॥
 समाधिभङ्गाय कृतप्रयत्ने कामे वसन्तोऽपि सहायकृत्यम् ।
 समर्थयामास वनैः प्रकुलैः पङ्केरुहाणां पवनैश्च मन्दैः ॥ ७ ॥
 गौरीसमक्षं गिरिशोऽपि किञ्चिद् वितर्कयंश्चिच्चविकारहेतुम् ।
 स्मरस्य तस्याविनयं विदित्वा कोपं प्रवृत्तं न नियन्तुमैच्छत् ॥ ८ ॥
 अथास्य नेत्रान्निर्गात् तृतीयादग्निः प्रचण्डः स च भैरवोऽभूत् ।
 त्रिलोचनः शूलकपालपाणिर्भस्मावशेषं स चकार कामम् ॥ ९ ॥
 तद् भैरवं कर्म च भैरवस्य भीमाट्टहासं रवतो विलोक्य ।
 भीता विषेदुः सहसैव सर्वे दान्ताः सदेवासुरसिद्धयक्षाः ॥ १० ॥
 तं भैरवं देववरोऽपि रुद्रः प्रेक्ष्य प्रसन्नोऽभ्यवदत् त्वयाद्य ।
 दान्तास्त्रिलोका दहतैव कामं यस्मात् त्वमस्माद् दमनोऽसि नान्ता ॥ ११ ॥
 अथात्र गौरीपरिचर्ययागताः स्मरस्य पत्न्या सह देवयोषितः ।
 रतिः स्वपत्युर्विलयं विजजुषी पपात कृत्ता कदलीव विह्वला ॥ १२ ॥
 तथागतां तत्र रतिं च मन्मथं क्षणादनङ्गं समवेक्ष्य पर्वती ।
 शशाप कोपान्मनसैव भैरवं चिराय वीरुद् भव भूमिगोचरः ॥ १३ ॥
 तथा स शशोऽम्बिकया तथाभवत् क्षणेन वीरुद्धमनाह्वयस्तदा ।
 स्मराङ्गभस्मन्यभिरामसौरभः सुकोमलाङ्गै रतिबाष्पसेकजः ॥ १४ ॥
 शिवस्तदामोदमतीव मोदनं विभाव्य देव्या विहितानुमोदनम् ।
 स्मयन् स तस्याः शमयन् रुषं ददौ वरं वरेण्यो दमनाय वीरुषे ॥ १५ ॥
 वसन्तकाले सवसन्तमन्मथं यजन्ति येऽद्यप्रभृतीह मां जनाः ।
 त्वदङ्गभूतैर्दमनच्छदादिभिर्भजन्तु कामानभिवाञ्छितांश्च ते ॥ १६ ॥

त्वयार्चितेनाङ्ग सहोमया मया वरं द्वितीयं तव दीयते पुनः ।
 तथा हरिर्ब्रह्ममुखाश्च देवतास्त्वयार्चिताः सन्त्वभिवाञ्छितप्रदाः ॥ १७ ॥
 न कुर्वते येऽपि च पर्व दामनं नरा वसन्ते मम शासनातिगाः ।
 तदर्चनापुण्यफलं वसन्तजं गृहाण सर्वं मदनुग्रहार्पितम् ॥ १८ ॥
 इत्थं वृषाङ्को दमनाय दत्त्वा वरं ततोऽस्मिन् विदधे विधानम् ।
 स्वच्छन्दतन्त्रे तदपि प्रसिद्धं ततस्तु शैवैरपरैश्च दृष्टम् ॥ १९ ॥

अत्र सोमशम्भुः —

“स्वच्छन्दभैरवे तन्त्रे यद्यपीत्थमुदाहृतम् ।
 तथापीह समासत्वात् सिद्धान्तेऽप्युपदिश्यते ॥”

इति । तद्यथा —

अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां मधुमाधवमासयोः ।
 शम्भोर्दामनकं पूर्वपक्षयोर्मुक्तिमुक्तिदम् ॥ २० ॥
 तत्पूर्वमेव सप्ताहात् पञ्चाहाद् वाङ्कुरार्पणम् ।
 कुर्याच्चोदितसम्भारान् मण्डपादींश्च सम्भृतान् ॥ २१ ॥
 सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां कृतनित्यार्चनाविधिः ।
 भूषयेद् यागगेहं तं वितानस्त्रवफलादिभिः ॥ २२ ॥
 ततो दमनकाराममशोकतरुमण्डितम् ।
 गत्वाशोकतरोर्मूलं रमणीयमलङ्कृतम् ॥ २३ ॥
 तद्भावेऽर्चनागारे कृतकारामकेऽपि वा ।
 कुर्याद् वासन्तिकीं पूजां मन्त्रैरेभिरनुक्रमात् ॥ २४ ॥
 नैर्ऋत्यां गणपतिमैशान्यां गुरुं चावाह्याभ्यर्च्य तदनु ॐ
 अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन ! ।
 शोकार्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ॥ २५ ॥

इत्यनेनाशोकतरुं गन्धादिभिः दीपान्तं संपूज्य

ब्रुव्यादियुगपर्यन्तः कालरूपोऽव्ययो विभुः ।
 कलते चैव योऽनादिस्तस्मै कालात्मने नमः ॥ २६ ॥

इति कालात्मानमशोकमूले समावाह्याभ्यर्च्य तत्रैव दक्षिणोत्तरकृतमण्डलयो-
 र्धान्योपरिसूत्रितौ धूपितौ कुम्भौ गन्धजलादिपूर्णौ सहिरण्यकूर्चकुसुमौ फलव-
 सनमाल्याक्षतालङ्कृतौ संस्थाप्य तयोर्दक्षिणे कुम्भे वसन्तम् उत्तरे कामं चाधा-
 रशक्त्यनन्तासनधर्मादिपीठरजस्तमस्तत्त्वमयपद्मविष्टरे तत्तन्नामभिरभ्यर्च्य ओं
 वसन्ताय नमः इति तन्मूलमन्त्रः । ओं वां हृदयाय नमः इत्यादिभिः दीर्घ-
 स्वरैः पञ्चाङ्गानि जातियुक्तानि परिकल्प्य अस्त्रशुद्धकर्योर्ज्येष्ठादिकनिष्ठान्तं
 हृदयाद्यङ्गानि विन्यस्य, शिरोवक्त्रहृदुद्वपादेषु हृदयादिस्वस्थानेषु चाङ्गानि
 विन्यस्य मूलेन कुम्भे पूजितासने पुष्पाञ्जलिना पद्मद्वयवरदाभयकरं हेमवर्णं
 रक्तवसनगन्धमाल्यहेमकिरीटकुण्डलहारारङ्गदादिभिः समलङ्कृतं युवानं वसन्तं
 ध्यात्वा स्वहृदयादावाह्य स्थापनसान्निध्यादिकं विधाय तस्य दक्षिणतः पद्मावतीं
 वामतः कुसुमावतीं च रक्तशुक्लवर्णे समलङ्कृते देव्यौ चावाह्याध्यादिभिर्ग-
 न्धादिभिश्च निवेद्यान्तं मूलमन्त्रेणाभ्यर्च्य
 ओं

वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताप्रिय ! ।

सहसमुखसंवाह! कामबन्धो! नमोऽस्तु ते ॥ २७ ॥

इत्यनेन पुष्पाञ्जलित्रयेण देवीभ्यां सहितं वसन्तमभिपूज्य तत्पद्मदलाग्रेषु
 तच्छक्तीर्वनदेवताः पूजयेत् ।

आह्लादिनीं गन्धवतीं सुरभीं चैव मालिनीम् ।

मदिरां मदयन्तीं च रमां पुष्पवतीं तथा ॥ २८ ॥

वासन्तीं चापि नवमीं स्वनाम्नाभ्यर्चयेत् क्रमात् ।

सर्वाः सुवेषाभरणा ललिताङ्गयः स्मिताननाः ॥ २९ ॥

तदनु आरामस्थं दमनकमर्चयेत् । तत्र भैरवं शूलकपालहस्तं रक्तवर्णं
 रक्तगन्धमाल्याम्बरालङ्कृतं सद्यःकृतसद्भटमुण्डमालाधरं शिञ्जन्नूपुरकिङ्कि-
 णीकमाक्रान्तकान्तपादुकं खड्गशूलडमरुकपाशहस्तं विरूढप्रभूतदमनकाङ्कि-
 तशिरसं ध्यात्वानेनाध्यादिभिर्गन्धादिभिश्चाचरेत् ।

ओं

कामभस्मसमुद्भूत ! रतिबाष्पजलाप्लुत ! ।

ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहन ! नमोऽस्तु ते ॥ ३० ॥

ओं दं दमनकाय नमः इति दमनकमभ्यर्च्य ततः कामकुम्भे शक्त्या-
दिसत्त्वान्तं पद्मासनमभ्यर्च्य ओं क्लीं कामाय नमः इति मूलमन्त्रः । ओं क्लीं
हृदयाय नमः इत्यादिभिर्दीर्घस्वरैः जातियुक्तान्यङ्गानि प्राग्वत् करशास्वासु
देहे च स्वेषु स्थानेषु चाङ्गानि विन्यस्य पुष्पाञ्जलिना कामासनाय नमः इति
कामासनमभ्यर्च्य दलाग्रस्थास्तच्छक्तीः पूजयेत् ।

सौभाग्यां ह्लादिनीं हर्षां धृतिं प्रीतिं तथोन्मदाम् ।

सङ्गमां चैव निर्वाणां नवमीं मध्यगां रतिम् ॥ ३१ ॥

ओं क्लीं मन्मथाय विद्महे कामदेवाय धीमहि तन्नो गन्धर्वः प्रचोदयात् ।
इत्यनङ्गायत्री । अथ पुष्पाञ्जलावनङ्गं ध्यात्वावाहयेत् ।

रक्तं रक्ताम्बरधरं युवानं मृष्टकुण्डलम् ।

हारकेयूरकटकमौलिकुण्डलनूपुरैः ॥ ३२ ॥

अन्यैश्च दिव्याभरणैर्माल्यैर्गन्धैश्च भूषितम् ।

पुष्पचापशरांश्चाथ दधतं पाशमङ्कुशम् ॥ ३३ ॥

वामाङ्कारोपितरतिं युवतीगणमध्यगम् ।

रूपलावण्यसौन्दर्यसौकुमार्यविभूषितम् ॥ ३४ ॥

एवं ध्यात्वा रचयेत् काममर्घ्यगन्धादिभिः क्रमात् ।

मूलेन चैव गायत्र्या निवेद्यान्तं यथाविधि ॥ ३५ ॥

तदनु ओं

नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे ।

मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रदाय ते ॥ ३६ ॥

अनेन पुष्पाञ्जलिभिस्त्रिधा तं प्रार्थयेत् पुनः ।

वसन्तकामाशोकानां बाह्ये लोकाधिपान् यजेत् ॥ ३७ ॥

तदस्त्राणि च तद्दिक्षु पूजेयं सर्वकामदा ।

ततो दमनमादाय वसन्ताशोकमन्मथान् ॥ ३८ ॥

प्रोक्तैरावरणैरिष्टा मन्त्रयेद् दमनं ततः ।

ओं

हरमसादसम्भूत! त्वमात्रवाहितो मया ॥ ३९ ॥

नैतव्यं कुरु सान्निध्यं शिवार्चायां शिवाङ्गया ।

एवं दमनकमामन्त्र्य

ओं

वसन्तकौसुमीसम्पत्सम्पादितजगत्प्रिय! ॥ ४० ॥

त्वया स्मरसहायेन सेव्यो देवः सहोमया ।

ओं वं क्लीं वसन्तकामाभ्यां नमः इति सहितौ तावामन्त्र्यानुज्ञाप्य
तत्र रक्षां विधाय स्वभवनं गत्वा भुञ्जीत ।

इति वसन्तपूजाधिकारः ।

अथ प्रातः समुत्थाय कृत्वा नित्यक्रियां ततः ॥ ४१ ॥

सायद्धे यागवस्तूनि समाहृत्योचितानि तु ।

गत्वा दमनकारामं गृहीयाद् दमनं बहु ॥ ४२ ॥

समूलं किञ्चिदुद्धृत्य पात्रेष्वधाय चाखिलम् ।

वसन्तस्मरकुम्भौ चाप्यविसर्जितदैवतौ ॥ ४३ ॥

उत्थाप्यारोपयेच्चैव गजयानादिकेऽखिलम् ।

सनृत्तगीतवादित्रमङ्गलच्छत्रचामरम् ॥ ४४ ॥

अलङ्कृत्य पथा यायात् पुरग्रामालयादिकम् ।

वाचयित्वा द्विजैः स्वस्ति मण्डपान्तः प्रवेश्य तु ॥ ४५ ॥

देवस्योभयतः कुम्भौ संस्थाप्याभ्यर्च्य पूर्ववत् ।

स्नात्वाथ तर्पणं प्राग्वत् समाप्याभ्यर्च्य भास्करम् ॥ ४६ ॥

शान्तिं विद्यां निवृत्तिं च प्रतिष्ठां द्वारवद् यजेत् ।

नित्योक्ताः पश्चिमद्वारे सम्पूज्य द्वारदेवताः ॥ ४७ ॥

पार्ष्णिघातादिपुष्पास्त्रक्षैर्नन्तः प्रविश्य तु ।

अस्त्रं विन्यस्य देहल्यामिष्ट्वा वास्त्वीशवेधसौ ॥ ४८ ॥

विन्यस्य दिक्षु लोकेशानिष्ट्वा विघ्नं गुरुं तथा ।

विकिरक्षेत्पूर्वं तु कृत्वा कुम्भास्त्रपूजनम् ॥ ४९ ॥

तत्परिभ्रमणादूर्ध्वं ताविष्टा ज्ञानखड्गधृक् ।

कुण्डे च मण्डले लिङ्गे शिवमिष्ट्वा विशेषतः ॥ १० ॥

प्राग्बच्च नाडीसन्धानं कुर्याच्चाथाधिवासनम् ।

तद्यथा —

दमनमूलं मृदा सहितं पश्चिमे सद्येन तन्नालं गन्धामलकं चोत्तरे वामेन
तत्पत्रं भस्म च दक्षिणेऽघोरेण तत्पुष्पं दन्तधावनं च प्राच्यां पुरुषेण तत्फलं
गन्धपिष्टं चैशान्याम् ईशानेनान्यदपि सर्वं यागद्रव्यं यथावकाशं विन्यस्य दम-
नपञ्चाङ्गैरञ्जलिमापूर्य भगवन्तं प्रार्थ्यानेन तारमूलशिवायनमोन्तेनरोपयेत् ।

ओम्

आमन्त्रितोऽसि देवेश ! प्रातःकाले मया विभो ! ॥ ५१ ॥

कर्तव्यं दामनं (पू ! प) र्व पूर्णं शक्त्या तवाज्ञया ।

अथारात्रिकमुत्तार्य नैवेद्यान्तं यजेत् ततः ॥ ५२ ॥

पावित्रकविधानेन हुत्वा सम्पातयेद् घृतम् ।

दमनापूरिते पात्रे सम्पूज्यास्त्राभिरक्षिते ॥ ५३ ॥

वर्मावकुण्ठितं कृत्वा कुम्भेशाग्रे निवेश्य तु ।

भक्ष्यं च विनिवेद्यास्मै हुत्वाघोरशताहुतीः ॥ ५४ ॥

बालं विकीर्य बाह्ये चाप्यविसर्जितदैवतः ।

भुञ्जीताथ हविर्भुक्त्यै मुक्त्यै चोपवसेदपि ॥ ५५ ॥

ध्यायन् जपन् वा सङ्गीतैः कुर्याज्जागरणं निशि ।

ततः प्रत्युषसि स्नात्वा सूर्यद्वारार्चनादनु ॥ ५६ ॥

शम्भुं विसृज्य सापेक्षं पञ्चशुद्धिपुरःसरम् ।

कुम्भाग्निलिङ्गविम्बेषु नित्यवत् पूजयेच्छिवम् ॥ ५७ ॥

अपनीय तु निर्माल्यमविसर्जितदैवतः ।

विभवानुगुणं शम्भोः कृत्वा वैशेषिकार्चनम् ॥ ५८ ॥

सूर्ये दमनमारोप्य स्वमूलेनेश्वरान्तकम् ।

द्वारेऽशत्रुहन्तृवास्त्वीशकुम्भास्त्रगणनायकान् ॥ ५९ ॥

गुरुंश्च दमनेनेष्ट्वा स्वमूलेरीश्वरान्तकैः ।

आरात्रिकं तथोत्तार्य देवाग्रे मण्डले स्वयम् ॥ ६० ॥

सकलीकृत्य दमनं स्वशिरस्यधिरोपयेत् ।

निर्गत्य बहिराचम्य प्रविश्याथोपदिश्य तु ॥ ६१ ॥

आसनादिक्रमाच्छम्भुं यजेद् दमनकाङ्कुरैः ।

तत्पञ्चाङ्गैस्तु सद्यादिक्रमेणारोपयेच्छिवे ॥ ६२ ॥

पञ्चाङ्गैः पिण्डितैः पश्चात् पञ्चब्रह्मभिरर्चयेत् ।

पुनर्दमनपञ्चाङ्गैर्गन्धदूर्वाक्षतान्वितम् ॥ ६३ ॥

अञ्जलिं सम्यगापूर्य ध्यायेद् देवं सदाशिवम् ।

शिवविद्यात्मतत्त्वैस्तु पवित्रकविधानवत् ॥ ६४ ॥

क्रमादारोपयेच्छम्भोर्दमनस्याञ्जलित्रयम् ।

पुनश्चतुर्थं चापूर्य साक्षतं दमनाञ्जलिम् ॥ ६५ ॥

ओं मखेश्वराय मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः ।

अस्यान्ते प्रणवमूलाभ्यां सर्वतत्त्वाधिपतये शिवाय नमः इत्यारोपयेत् ।

अथारात्रिकमुत्तार्य महानिवेद्यं दत्त्वाग्रौ हविर्हुत्वा दमनकेन परिधिष्विष्टरगता-
नाराध्यामावपि शिववत् सुचा दमनकमारोप्य विद्यापीठे च स्वमन्त्रेण तदनु
स्वगुरौ सति वसनविभूषणादिभिर्दमनकेन च तमाराध्य दाक्षितलिङ्गिद्विजब-
न्धुजनानां दमनकं दत्त्वा यथायोग्यं भोजयित्वा दाक्षिणाभिर्दानेन च सर्वम-
र्थिजनं परितोष्यानेन दमनकाञ्जलिर्देवं प्रार्थयेत् ।

ओम्

देवदेव ! जगन्नाथ ! वाञ्छितार्थप्रदेश्वर ! ।

हृदिस्थान् पूरयेः कामान् मम कामेश्वरीप्रिया ॥ ६६ ॥

प्रणवमूलयुतं सौम्याय शिवाय नमः इति काम्याञ्जलिं शिवपादयोः

पादाम्बुजेष्वारोप्य (?) दामनकपूजाफलं च निवेद्य पुनरेवं प्रार्थयेत् ।

भगवन्नतिरिक्तं वा हीनं वा यन्मया कृतम् ।

सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं दामनं पर्व ते विभो ! ॥ ६७ ॥

इति विज्ञाप्य देवेशमभिस्थं मण्डले शिवे ।

संयोज्य तं च लिङ्गस्थे कुम्भस्थं च सदाशिवम् ॥ ६८ ॥

आयोज्य वह्निहृत्पद्मे नत्वा स्तुत्वा महेश्वरम् ।

प्रणिपत्य क्षमस्वेति यथापूर्वं विसर्जयेत् ॥ ६९ ॥

अस्त्रादिद्वारलोकेशान् स्वेषु स्थानेषु योजयेत् ।
एतद् दामनकं पर्वं कृत्वा चण्डं च पूजयेत् ॥ ७० ॥
गोमयाम्बुविलिप्तायां क्षितौ नित्यं यजेच्छिवम् ।

इत्थं वसन्तविहितं सवसन्तयागं
प्रोक्तं तदन्तमिह दामनकं हि पर्व ।
यद्वद् वसन्ततिलकं सुमनोभिरामं
तद्वन्मनोभिलपितान् फलतीह कामान् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे
क्रियापादे दामनकपर्वविधिपटलो द्वाविंशः ॥

अथ त्रयोविंशः पटलः ।

अथ भूः सर्ववर्णानामुपजीव्या तथार्थ्या ।
प्रतिष्ठादिक्रियाचक्रं यतो यस्यां प्रवर्तते ॥ १ ॥
तस्मात् तल्लक्षणं सम्यक् संक्षेपादिह कथ्यते ।
पुण्यक्षेत्रनदीतीर्थपर्वताद्यन्विता मही ॥ २ ॥
प्रयच्छत्यधिकां सिद्धिं यतस्तामाश्रयेद् तुवः ।
स्वतः कृष्णमृगैर्युक्ता कुशकाशैरलङ्कृता ॥ ३ ॥
वेदविद्विद्विजैर्जुष्टा यज्ञियैस्तरुभिर्वृता ।
प्रागुदक्प्रवणा रम्या प्रभूतसलिलाशया ॥ ४ ॥
नीरन्ध्रा चैव सुसिन्ध्वा समित्पुष्पफलान्विता ।
स्वारामगोकुलकुला भूः सामान्या प्रशस्यते ॥ ५ ॥
पूर्णा सुपद्मा भद्रा च धूम्रा चेति चतुर्विधा ।
भूमिः स्यादानुपूर्व्येण तासां लक्षणमुच्यते ॥ ६ ॥
अङ्गोलाशोकवकुलशिशपानिम्बर्किशुकैः ।
माधवीगुल्मनिष्पावैः संयुक्तालपजलाशया ॥ ७ ॥
पूर्णा(स्यात्) पुष्टिदा भूमिः पर्वतानूपशायिनी ।
चन्दनागरुकर्पूरकदम्बार्जुनकेसरैः ॥ ८ ॥

तिलकैः केतकीकुन्दैः पद्माब्जैश्च जलाशयैः ।
 कौबेर्यामन्विता भूमिः सुपद्मा प्राक्प्लवा भवेत् ॥ ९ ॥
 अब्धेः समीपे वा नद्याः सुतीर्थसलिलाशया ।
 यज्ञियैः फलवृक्षैश्च पश्चिमस्यैरलङ्कृता ॥ १० ॥
 क्षेत्रैर्दक्षिणसंस्थैश्च भद्रा भूमिः सुखप्रदा ।
 खुहिश्लेष्मातकैरकैः पीलुवेणुविभीतकैः ॥ ११ ॥
 अन्विता सोषरा रूक्षा परुषा शर्करोपलैः ।
 श्येनगृध्रवराहर्क्षकाकगोमायुसंकुला ॥ १२ ॥
 धूम्रा नाम मही निन्धा शोकदुःखभयावहा ।
 न तत्र स्थापयेल्लिङ्गं न मन्त्रं साधयेदपि ॥ १३ ॥
 चातुर्वर्ण्यजनस्तत्र न वासमभिरोचयेत् ।
 भुजङ्गवक्त्रा शूलाभा मध्यनिम्ना त्रिकोणका ॥ १४ ॥
 शूर्पाभा कूर्मपृष्ठाभा षडश्रा निर्जलाथवा ।
 यमबहिमरुद्रक्षोदिकप्लवा नित्यकर्दमा ॥ १५ ॥
 चण्डवाताहता नित्यं वामावर्तजला च या ।
 दुर्गन्धा केशकीटास्थिभस्मवल्मीकदूषिता ॥ १६ ॥
 सङ्कीर्णा नाम सा भूमिः सर्ववर्णैर्विगर्हिता ।
 विप्रादिवर्णभेदेन चतुर्धा भूरथोच्यते ॥ १७ ॥
 श्वेताज्यगन्धा मधुरा कुशकाशैरलङ्कृता ।
 सौम्येशानप्लवैः स्निग्धा पलाशौदुम्बरान्विता ॥ १८ ॥
 चतुरश्राकृतिः प्रोक्ता विप्रभूमिस्तु शान्तिदा ।
 रक्ता रुधिरगन्धा या कषाया प्राक्प्लवा मही ॥ १९ ॥
 साश्वत्था क्षत्रिया प्रोक्ता व्यासाष्टांशाधिकायता ।
 पीता गोमूत्रगन्धाढ्या तित्तावाम्लरसा च या ॥ २० ॥
 प्राक्प्लवा प्लक्षवृक्षाढ्या षडंशाधिकमायता ।
 वैश्यभूमिः समुद्दिष्टा नानासस्यविभूषिता ॥ २१ ॥

कृष्णा या मधुगन्धा भूः कटुका प्राक्प्लवोदका ।
 शूद्रजातिरिति ज्ञेया ह्यथवा पश्चिमप्लवा ॥ २२ ॥
 गोवीर्या प्राक्प्लवा भूमिरग्निनिम्ना तथानला ।
 याम्या यमप्लवा ज्ञेया नागवीर्यिस्तु नैर्ऋते ॥ २३ ॥
 पश्चात्प्लवा वारुणी स्यात् भूतवीर्यिर्मरुतप्लवा ।
 धनर्वाधिः सौम्यनिम्ना धान्यवीधिः शिवप्लवा ॥ २४ ॥
 विप्रादीनां च देवानां प्रागैशान्योत्तरप्लवाः ।
 शस्ताः स्युर्वीथयः शेषा वर्ज्याः स्युरशुभा यतः ॥ २५ ॥
 इत्थं भूमेस्तु लक्ष्मोक्तं सामान्येनाथ कथ्यते ।
 कुशशैलविशिष्टाद्वैतार्थिक्षेत्रवनाश्रया ॥ २६ ॥
 न्यायेनैवार्जिता शरत्प्लवा वर्णसमा समा ।
 अलाभे धवला रम्या सर्ववर्णहितावहा ॥ २७ ॥
 अर्गहनूपरा सर्पवल्गुकान्त्यजवर्जिता ।
 श्मशानाङ्गाररहिता सुस्वादुसलिलान्विता ॥ २८ ॥
 न्यग्रोधोदुम्बराश्चत्थप्लक्षाः पूर्वादिगाः शुभाः ।
 सर्वत्र केसराश्चूताः पुन्नागा नागडाडिमाः ॥ २९ ॥
 पनसाश्चम्पकाः पूगा नालिकेराश्च शोभनाः ।
 प्राच्यां निषिद्धो हि गिरिस्तच्छाया ह्रुदये रवेः ॥ ३० ॥
 यत्रापतति तत्रापि ग्रामाद्यं न प्रशस्यते ।
 अभः कुम्भगतं श्रेष्ठं मध्यमं मीनमेषयोः ॥ ३१ ॥
 मकरे च तृषे नोचं ग्रामादेरालयस्य वा ।
 धान्यपूर्णमकुम्भं तु निघायेष्ट्वास्य चोपरि ॥ ३२ ॥
 आमे शरावे कुडुबं गव्यमाज्यं विनिक्षिपेत् ।
 चतुर्दिक्षु क्षिपेद् वर्तीः शुद्धाः कर्पासवज्जजाः ॥ ३३ ॥
 सितरक्तपोतकृष्णाश्चतस्रः समवर्तिताः ।
 ऐन्द्रदक्षिणसाम्याप्यवर्त्यो विप्रादिकाः क्रमात् ॥ ३४ ॥

पुरुषाद्यैस्तु जातीयैर्युक्तास्तन्मन्त्रमन्त्रिताः ।
 सङ्कल्प्य ज्वालयेद् दीपान् गन्धाद्यैः पूजयेदपि ॥ ३९ ॥
 याममात्रावधिं कृत्वा सुलिप्ते भूतले न्यसेत् ।
 यस्य वर्णस्य या वर्ती सा ज्वलन्ती सुखावहा ॥ ३६ ॥
 निर्वापिता चेद् वर्ज्या स्याद् विमानकरणादिषु ।
 ज्वलन्ति यदि सर्वास्ताः सर्ववर्णसुखावहाः ॥ ३७ ॥
 हस्तमात्रं समं खातं तन्मृदा पूरयेत् पुनः ।
 मृत्स्नयाधिकया श्रेष्ठा समया मध्यमा हि भूः ॥ ३८ ॥
 न्यूनया त्वधमा त्याज्या त्रिधैवं परिकल्पयेत् ।
 तत्खातं वा जलापूर्णं कृत्वा पदशतं व्रजेत् ॥ ३९ ॥
 पुनरागच्छतः प्राग्वत् पूर्णं चेद् भूमिरुत्तमा ।
 यवन्यूना मध्यमा स्यात् त्याज्या न्यूना ततोऽधिकम् ॥ ४० ॥

एवं विचार्य रहितां कथितैश्च देवैः

शस्तैर्गुणैश्च सहितां धरणीं सुरम्याम् ।

तस्यामभीष्टफलसिद्धिकरं विदध्याद्

यागं शिवस्य भवनं च यथोक्तमार्गात् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ मिद्धान्तसारे उग्रभागे

क्रियापादे भूलक्षणपटलत्रयोविंशः ।

अथ चतुर्विंशः पटलः ।

अथोत्तरायणस्थेऽर्के प्रशस्ते दिवसोदये ।

गृहीतवास्तुं खात्वा तु शल्यमुद्धृत्य शोधयेत् ॥ १ ॥

सर्वतः सुसमं कृत्वा स्थलं दर्पणसन्निभम् ।

तन्मध्ये दण्डमात्रं वा जलावस्थानतः समम् ॥ २ ॥

तद्यथा —

सच्छिद्रमध्यं तु घटं भाराम्बुपरिपूरितम् ।

यन्त्रिकाधारगं कृत्वा स्थलमध्ये समं न्यसेत् ॥ ३ ॥

ततः परिलुताम्भोभिः समं सिक्ते तु भूतले ।

अन्यूनाधिकसंस्थानं यथा ज्ञेयं तदम्भसाम् ॥ ४ ॥

बिन्दुं कृत्वा स्थलं मध्ये तस्मिन् शङ्कुं समं न्यसेत् ।

तद्यथोक्तं चान्यैः —

“अमविरचितवृत्तस्तुल्यमूलाग्रभागो द्विरददशनजन्मा सारदारूद्धवो वा ।

सममृजुरवलम्बादव्रणः षट्कवृत्तः समतल इह शस्तः शङ्कुरकार्जुलोच्चः ॥”

इति ।

शङ्कोः पुच्छाग्रयोर्मध्ये यवस्थूलायते समे ॥ ५ ॥

लोहजे घटयेत् सूच्यौ तच्छायामध्यसिद्धये ।

शङ्कुमानायतं सूत्रं बिन्दौ तस्मिन् निधाय तु ॥ ६ ॥

अमथेत् पारेतस्तेन बिन्दौ स्थित्वा सुवर्तुलम् ।

तन्मध्यबिन्दौ तं शङ्कुं स्थापयेदुदये रवेः ॥ ७ ॥

तद्विम्बवृत्तरेखायां शङ्कुच्छायाशिरो यदा ।

हासाद् विंशतिपूर्वाह्णे तत्र च्छायाग्रमङ्कयेत् ॥ ८ ॥

तथापराह्णे च्छायायां निर्गच्छन्त्यां तु मण्डलात् ।

संसृष्टशन्त्यां तु तद्रेखां प्राग्वत् तत्रापि लाञ्छयेत् ॥ ९ ॥

तयोरास्फालयेत् सूत्रमृजुं पूर्वापराङ्कयोः ।

दिशौ प्रावपश्चिमे स्यातां ब्राह्मी प्राची स्मृता हि सा ॥ १० ॥

पाश्चात्याङ्कस्थितं सूत्रमर्धरक्षोन्नमानतः ।

प्रागङ्काद् दक्षिणेऽस्य सा दिगैन्द्रोते कथ्यते ॥ ११ ॥

प्रागङ्कादुत्तरे तद्वैशी काष्ठा तु सा भवेत् ।

शिवालयादिकरणेष्वैशः प्राचीति केचन ॥ १२ ॥

विप्राद्यावासकरणे स्यादैन्द्रीत्यपरे जगुः ।

ब्राह्मी दिगेव सर्वेषां नैकतन्त्रनिदर्शनात् ॥ १३ ॥

निरक्षदेशे लङ्कादौ स्यादयं दिग्विनिर्णयः ।

इत्याहुः केचिदित्यस्मात् साक्षदेशस्य कथ्यते ॥ १४ ॥

विशेषः साक्षदेशानामस्त्येवार्कपसर्पणात् ।

उक्तं चान्यैः —

“याति भानुरपमण्डलवृत्त्या दक्षिणोत्तरदिशोरनुवेलम् ।

तेन सा दिगनृजुः प्रतिभाति स्यादृजुः पुनरपक्रममौर्व्या ॥”

इति । उत्तरगोलस्थ उत्तरां दिशमपक्रममण्डलेन गच्छति । दक्षिणगोलस्थो दक्षिणां दिशमपक्रममण्डलेन चरति । तस्मात् सा दिगनृजुः प्रतिभाति । तस्मादिदानीमपक्रमज्यया दिगार्जवं प्रतिपादयन्नाह —

“छायानिर्गमनप्रवेशसमयार्कक्रान्तिजीवान्तरं

क्षुण्णं सश्रवणेन लम्बकहृतं स्यादङ्गुलाद्यं फलम् ।

पश्चाद् विन्दुरनेन रव्ययनतः सञ्चालयेद् व्यत्ययात्

स्पष्टा प्राच्यपराथवायनवशात् प्राग्बिन्दुमुत्सारयेत् ॥”

इति । यावतीभिर्वृत्ताभिर्घटिकाभिर्वृत्तरेखां स्पृशति शङ्कुच्छाया यावतीभिः वृत्तान्निर्गच्छति स खलु च्छायानिर्गमनप्रवेशसमयः । तयोः कालयोरर्कक्रान्तिजीवान्तरं नामार्कघटिकामानमित्यर्थः । तत् स्वश्रवणेन प्रवेशनिर्गमनकालच्छायायाः कर्णेन गुणितं लम्बकहृतं लम्बज्यया हृतमङ्गुलाभ्यां फलं भवति । तेन फलेन पश्चाद् विन्दुं प्राप्ताङ्गुलप्रमाणेन रवेरयनस्य व्यत्ययात् सञ्चालयेत् । अयनव्यत्ययश्चोत्तलयणे दक्षिणेन दक्षिणायने तूत्तरेण सञ्चालयेदित्यर्थः । तथास्फालितं सूत्रं साक्षदेशे स्पृष्टा प्राची भवति । अथार्कवलम्बकैर्विनापि प्रकारान्तरेण दिक्परिज्ञानार्थमुच्यते —

छायात्रयाग्रोद्भववृत्तमध्यस्पृवसूत्रयोर्यत्र युतिः प्रदेशे ।

याम्योत्तरा शङ्कुदिशा ककुप् स्यात् क्रमेण सौम्येतरगोलयोः स्यात् ॥ १५ ॥

पूर्वकपाले वापरकपाले च्छायात्रयाग्रं दृष्ट्वा तैर्वृत्तत्रये लिखिते यन्मस्यद्वयमुत्पद्यते तयोर्मुखपुच्छानुसारिसूत्रद्वयं यस्मिन् प्रदेशे संयुक्तं तिष्ठति तत् आरभ्य शङ्कुमूलपर्यन्तं सूत्रमास्फालयेत् । सा दक्षिणोत्तरा दिग् भवति । रवावुत्तरगोलस्थे शङ्कुमूलाद् दक्षिणा भवति । दक्षिणगोलस्थे शङ्कुमूलादुत्तरा भवति । अत्र पुनः स्पष्टमुच्यते । तद् यथा — नलसमीकृते स्थले

प्रोक्तप्रमाणं शङ्कुं विन्यस्य पूर्वाह्ने वापराह्ने छायात्रेष्वाभिनिविष्टेषु त्रिषु त्रयो बिन्दवः कार्याः । तत एकं बिन्दुं मध्ये कृत्वेष्टप्रमाणेन वृत्तमालिखेत् । तावतैव द्वितीयं बिन्दुमवलम्ब्य द्वितीयं वृत्तं तद्वत् तृतीयं बिन्दुं मध्ये कृत्वा तृतीयं वृत्तमालिखेत् । ततस्तावत्प्रमाणमेव वृत्तम् । तथाचालिखेद् यथा मध्यबिन्दुवृत्तं पार्श्वद्वयबिन्दुवृत्तद्वयस्य खण्डमुत्पादयति । तथाकृते मत्स्यद्वयमुत्पद्यते । तयोश्च यस्यां दिशि महदन्तरं ते मुखे भवतः । तयोर्यस्यां दिशि सन्निकर्षस्ते पुच्छे भवतः । मुखयोः सूक्ष्मकालकौ विन्यस्य तयोः सूत्रे बद्ध्वा पुच्छमध्यगो निःसार्य स्वगत्यैकैकं नयेत् । तयोः सूत्रयोर्मुखपुच्छगत्यनुसारेण यत्र सन्निपातः सा दक्षिणा दिग् भवति शङ्कुतला(न्यु ? दु)त्तरगोलस्थेऽर्के ततो दक्षिणगोलस्थे सवितरि । तथा मध्यगतसूत्रयोर्युति बिन्दुः शङ्कुमूलादेवोत्तरा दिग् भवति । एवं शङ्कुमूलयुति बिन्दुवगाहि सूत्रं प्रसार्य रेखां कुर्यात् सा दक्षिणोत्तरा दिग् भवति । तत एकैकं बिन्दुं मध्ये कृत्वा वृत्तद्वयेन मत्स्यमुत्पादयेत् । तस्य मुखपुच्छावगाहेसूत्रं पूर्वापरा दिग् भवति । एवं साक्षदेशे दिक्साधनमुक्तम् । निरक्षदेशे तु पूर्वोक्तैव पूर्वापरा दिग् भवति । तत्सूत्रस्य मध्यबिन्दौ स्थित्वा दशाङ्गुलमानेन सूत्रमध्ये पूर्वापरादङ्कौ कृत्वा तयोरङ्कयोरन्तरसमानसूत्रमङ्कयोरनिधाय दक्षिणोत्तरयोः परिस्रम्योत्पन्नयोर्मत्स्ययोः सूत्रमास्फाल्य दक्षिणोत्तरा दिग् भवतीत्यलम् । अर्धच

नरच्छायानुसारेण कल्प्यं चार्कापसर्पणम् ॥ १६ ॥

गणयित्वा धनुर्ज्याविद् ज्ञेयं स्यादर्कमार्गयोः ।

अर्धाङ्गुलमपच्छाया वृषयुग्माङ्गनासु च ॥ १७ ॥

तुलालिचापेष्टृद्धा स्याद्भाना कर्कमृगादिषु ।

तच्च प्रतिदिनमिति यावत् ।

द्वयमेकं न नैकं द्वे नेत्राभिश्चुतिसंख्यया ॥ १८ ॥

वेदाभिद्वयमानेन द्वयमेकं न किञ्चन ।

नैकनेत्राब्धिरामाक्षियुगबाणतुसंख्यया ॥ १९ ॥

षट्सप्ताष्टकमानेन चाष्टर्विरससंख्यया ।

ऋतुबाणश्रुतिसमं वेदान्यक्षिमितं क्रमात् ॥ २० ॥

अर्धार्धपादमानेन मेषादिद्वादशस्वपि ।

दशके दशके त्वद्वां नरच्छायामिति त्यजेत् ॥ २१ ॥

अत्र

समीक्ष्य भानोर्गमनं सराशिकं त्यजेत् पुरोक्ताङ्गुलमत्र युक्तितः ।

ततस्तु काष्ठामुपगृह्य तद्वशाद् विसृज्य सूत्रं विदधीत वस्त्वलम् ॥ २२ ॥

स्थलं समं जलवशालम्बसूत्रात् स्थितार्जवम् ।

भुजासमत्वं स्यात् कर्णैस्त्रिनरात् तिर्यगार्जवम् ॥ २३ ॥

प्राचीसूत्रात् प्रसिद्धयन्ति दिशोऽन्याश्चतुरश्रगाः ।

शङ्कुच्छायाधिकारः ।

परमाणुरजोरोमलिक्षायूकायवाष्टकैः ॥ २४ ॥

क्रमान्मानाङ्गुलं ज्ञेयं वितस्तिद्वादशाङ्गुलम् ।

मानाङ्गुलद्वादशकं वितस्तिर्वितस्तिर्युग्मं खलु सीकण्डंश्च ।

हस्तो भवेद्धस्तचतुष्टयं स्याद्वनुश्च दण्डोऽपि स एव नाम्ना ॥ २५ ॥

दण्डपञ्चाशतायामो गव्यूत्यर्धं निगद्यते ॥ २६ ॥

द्विगुणं तत् तु गव्यूतिस्तद्वयं क्रोश उच्यते ।

योजनं तु चतुष्क्रोशं द्विष्क्रोशं चार्धयोजनम् ॥ २७ ॥

अत्रार्यभट्टः —

“हस्तोऽङ्गुलविंशत्या चतुरुत्तरया चतुष्करो दण्डः ।

तद्विसहस्रं क्रोशो योजनमेकं चतुष्क्रोशम् ॥”

इति ।

प्राजापत्याख्यहस्तः स्यात् पञ्चविंशतिकाङ्गुलः ।

षट्सप्ताधिकविंशत्या धनुर्मुष्टिधनुर्ग्रहौ ॥ २८ ॥

आ सन्धेर्बद्धमुष्टिस्तु रत्निः कर उदाहृतः ।

स एवारत्निरुद्दिष्टा सृष्टा चेत् तत्कानिष्ठिका ॥ २९ ॥

प्रादेशतालगोकर्णवितस्त्यः स्युर्यथाक्रमम् ।

तर्जन्यादिकनिष्ठान्तमाङ्गुष्ठाग्रात् प्रसारिता ॥ ३० ॥

यन्मध्यमामध्यमपर्वदैर्ध्यान्मानेन मात्राङ्गुलमायतं स्यात् ।
 तत्पर्वमानेन तदेव तिर्यङ्मात्राङ्गुलं तच्च तताभिधानम् ॥ ३१ ॥
 देहोपलब्धाङ्गुलमिष्यते यत् तन्मानयुक्त्या प्रतिमासु विधात् ।
 दण्डानामष्टकं रज्जुः सा च सीमादिषु स्मृता ।
 किष्कुहस्तेन यानादिशयनीयादिसाधनम् ॥ ३२ ॥

अत्राह मयः —

“याने च शयने किष्कुः प्राजापत्यं विमानके ।
 वास्तूनां तु धनुर्मुष्टिर्ग्रामादीनां धनुर्महः ॥
 सर्वेषामपि वास्तूनां किष्कुर्हस्तोऽथवा भवेत् ।”

इति ।

दण्डेन तु ग्रामनिवेशनायं पुराणि खेटं निगमं च कुर्यात् ।
 हस्तेन वेशमादिषु मानमुक्तं स्वल्पेन चैवाङ्गुलैर्कर्यवैर्वा ॥ ३३ ॥
 देवालयगृहादीनि कुर्यान्मात्राङ्गुलेन हि ॥ ३४ ॥
 कुण्डादिकानामपि मण्डलानां सर्वत्र मात्राङ्गुलमानतः स्यात् ।
 निर्माणमित्यत्र यथावदुक्ता तत्तत्क्रियाभेदविशेषसिद्धिः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे
 क्रियापादे शङ्कुच्छायाङ्गुलादिविधिर्नाम
 चतुर्विंशः पटलः ॥

अथ पञ्चविंशः पटलः ।

अथातः पदविन्यासः कथ्यते वस्तुसिद्धये ।
 सकलं पेचकं पीठं महापीठोपपीठके ॥ १ ॥
 उग्रपीठं स्थण्डिलं च मण्डूकं परशायिकम् ।
 आसनं चेति दशधा ग्रामादिन्यासचण्डितम् ॥ २ ॥
 प्रान्तसूत्रचतुष्कान्तरेकं स्यात् सकलं पदम् ।
 प्राच्योदीच्यैकसूत्रादिवृद्ध्या तत् स्याच्चतुष्पदम् ॥ ३ ॥
 एवं प्रागुत्तरपदपङ्क्तिवृद्धिं क्रमान्नयेत् ।
 चतुष्पदं पेचकं स्यात् पीठं नवपदं स्मृतम् ॥ ४ ॥

महापीठं षोडशभिः पञ्चविंशतिभिः पदैः ।
 उपपीठं तु षट्त्रिंशत्पदैः स्यादुग्रपीठकम् ॥ ५ ॥
 स्थण्डिलं ब्रूयन्पञ्चाशन्मण्डूकं चाष्टकाष्टकैः ।
 एकाशीतिपदैः ख्यातं क्षेत्रं परमशायिकम् ॥ ६ ॥
 आसनं शतकोष्ठैः स्याद् ग्रामाद्यं त्वेषु सिद्धयति ।
 चतुरश्राष्टदण्डा भूः काकणी तच्चतुर्गुणः ॥ ७ ॥
 माषो वेदगुणं तस्माद् भवेद् वर्तनकाह्वयम् ।
 तत्पञ्चगुणिता वाटी कुडुवं तच्चतुर्गुणम् ॥ ८ ॥
 भूमानमेवं कथितं दण्डमानं तु कथ्यते ।
 महाग्रामस्योत्तमस्य पर्यन्तो लक्षदण्डवान् ॥ ९ ॥
 तस्माद् विंशतिसाहस्रदण्डहासात् क्रमेण तु ।
 ग्रामाणां पञ्चधा मानं मुख्यं त्वेवमुदीरितम् ॥ १० ॥
 दण्डविंशतिसाहस्राद् दण्डपञ्चशतस्य तु ।
 क्रमहासाद् ग्राममानान्या पञ्चशतदण्डतः ॥ ११ ॥
 चत्वारिंशत्प्रभेदानि मध्यमाने भवन्ति हि ।
 ग्रामाधिवासक्षेत्रादेः सीमामानमिदं स्मृतम् ॥ १२ ॥
 प्राकारान्तरथावाससीमामानमिहोच्यते ।
 ग्रामश्च खेटकश्चाथ खर्वटं दुर्गमेव च ॥ १३ ॥
 नगरं राजधानी च पत्तनं द्रोणिकामुखम् ।
 शिविरं स्कन्धवारश्च स्थानीयं च विडम्बकम् ॥ १४ ॥
 निगमश्चाथ निर्दिष्टः स्याच्छाखानगरं ततः ।
 एषां चतुर्दशानां च लक्षणं पृथगुच्यते ॥ १५ ॥
 अष्टाष्टदण्डविस्तारो ग्रामः स्यादध्रमाधमः ।
 द्विगुणत्रिगुणौ तस्माद् ग्रामौ मध्योत्तमौ स्मृतौ ॥ १६ ॥
 षट्पञ्चाशच्च द्विशतं दण्डाः खेटेऽधमे स्मृताः ।
 विंशत्या त्रिशतैर्दण्डैर्मध्यश्चतुरशीतिभिः ॥ १७ ॥

त्रिभिः शतैश्चोत्तमः स्यात् खेटस्त्वेवं त्रिधा स्मृतः ।
 अष्टौ च चत्वारिंशच्च दण्डास्तद्वच्चतुःशतम् ॥ १८ ॥
 हीने तु खर्वटे ज्ञेया मध्ये पञ्चशताधिकम् ।
 द्वादशैवोत्तमे षड्भिः सप्तत्या पञ्चभिः शतैः ॥ १९ ॥
 हीनदुर्गं षट्शतैश्च चत्वारिंशद्विरन्वितम् ।
 चतुर्दण्डोत्तरैः सप्तशतैर्दुर्गं तु मध्यमम् ॥ २० ॥
 अष्टषष्टियुतैः सप्तशतैर्दुर्गमिहोत्तमम् ।
 सद्वात्रिंशद्वचमुशतैः पणवत्याष्टभिः शतैः ॥ २१ ॥
 षडुत्तरैर्नवशतैर्नीचत्रिनगराणि वै ।
 सहस्रेण च सार्धेन द्विसहस्रेण च क्रमात् ॥ २२ ॥
 नीचं मध्यं तथा श्रेष्ठं नगरं मध्यमत्रये ।
 त्रिचतुष्पञ्चसाहस्रैर्नगराण्युत्तमत्रये ॥ २३ ॥
 षट्सप्ताष्टसहस्रैस्तु दण्डैः स्युश्चोत्तमोत्तमे ।
 नगराणां त्रये तानि नगराणि यथाक्रमम् ॥ २४ ॥
 विकारदण्डवृद्ध्या तु प्रत्येकं नवधा पुनः ।
 ग्रामादीनां प्रमाणानि प्रोक्तादूर्ध्वं भवन्ति हि ॥ २५ ॥
 राजधान्यादिकानां तु मानं नगरवद् भवेत् ।
 एतावन्मानुषेणैव मानं ग्रामादिषु स्मृतम् ॥ २६ ॥
 देवासुरपुरादीनां मानं न ज्ञायते नरैः ।
 विस्तारात् पादमर्धं वा त्रिपादद्विगुणं तु वा ॥ २७ ॥
 मुखायामो भवेदेषां ग्रामादिनगरान्तकम् ।
 एतेषां विपुलायामावयुगैरेव दण्डकैः ॥ २८ ॥
 विधातव्यावतः शेषं वाटीसञ्चारभूमिका ।
 नद्यादेर्दक्षिणाद्ये तु तीरे ग्रामान् निवेशयेत् ॥ २९ ॥
 ग्रामयोरन्तरे खेटं राष्ट्रमध्ये तु खर्वटम् ।
 पर्वतान्तर्वने वाढ्यौ दुर्गं स्याद् वा जलावृतम् ॥ ३० ॥

दुर्गं तु पार्वतं वन्यमौदकं चौरिणं तथा ।
 दैविकं धान्वनं चैव कृतकं चेति सप्तधा ॥ ३१ ॥
 राष्ट्रस्य मध्ये नद्या वा समीपे नगरं स्मृतम् ।
 तदेव शङ्कुपङ्काद्यैः परिखाभिर्दुरासदम् ॥ ३२ ॥
 उच्चप्राकारकाट्टालगोपुरक्षेपणीहुलैः ।
 शतग्रीभिश्च परितः परिस्तीर्णोच्छ्रिताट्टकम् ॥ ३३ ॥
 एकद्वित्रिचतुर्द्वारं राजधानीति कथ्यते ।
 नानापण्यधनाकीर्णं सागरानूपसंश्रितम् ॥ ३४ ॥
 सांयानिकवणिग्जुष्टं पत्तनं परिचक्षते ।
 तदेवाब्धेश्च नद्याश्च सङ्गमागतपोतकम् ॥ ३५ ॥
 द्वीपान्तरवणिग्जुष्टं विदुर्द्रोणिमुखं बुधाः ।
 परराष्ट्रे स्वदेशे वा चतुर्विधबलान्वितम् ॥ ३६ ॥
 विजिगीषोः सन्निवेशं शिबिरं तत् प्रचक्षते ।
 नातिदूरे तदेव स्यान्नृपयोर्युध्यतोर्मिथः ॥ ३७ ॥
 सेनानिवेशस्तु पृथक् स्कन्धावार इति स्मृतः ।
 पर्वतस्याथवा नद्याः पार्श्वे राजबलान्वितम् ॥ ३८ ॥
 राष्ट्रान्ते सान्तपालं यत् तत् स्थानीयं विदुर्बुधाः ।
 कृषीवलादिकावासो ग्रामोपान्ते विडम्बकम् ॥ ३९ ॥
 चातुर्वर्णैः कर्मकारैर्नानाकर्मोपजीविभिः ।
 पण्यैश्च धनधान्याद्यैर्युक्तस्तु निगमः स्मृतः ॥ ४० ॥
 वने वा नगरोपान्ते नागरैस्तु जनैर्वृतम् ।
 क्षेत्रारामाकरोपेतं शाखानगरमिष्यते ॥ ४१ ॥
 सहस्रैर्जगतीपङ्क्तिवसुसंख्यैर्द्विजन्मनाम् ।
 श्रेष्ठोत्तमः श्रेष्ठमध्यो ग्रामः श्रेष्ठधमस्तथा ॥ ४२ ॥
 सप्तषट्पञ्चसाहस्रैर्ग्रामा मध्योत्तमादयः ।
 चतुस्त्रिद्विसहस्रैस्तु ग्रामाः स्युरधमे त्रयः ॥ ४३ ॥

विप्राणां दशसप्तेषुशतैर्नीचोत्तमादयः ।

ग्रामा भवन्त्यथ क्षुद्रास्तेऽप्येकादशधा स्मृताः ॥ ४४ ॥

चतुस्त्रिंशत्तैरष्टशतैश्चतुरशीतिकैः ।

सचतुष्पष्टिपञ्चाशद्व्यतिंशत्त्र्यष्टकैरपि ॥ ४५ ॥

विकारादित्यसंख्यैश्च ब्राह्मणैस्तु निवेशितैः ।

एकद्विजाद्यादशान्तास्त्वेकभोगादिका दश ॥ ४६ ॥

सकलाद्यासनान्ते तु ग्रामादिन्यासचण्डिते ।

युग्मे सूत्रे तु वीथयः स्थुरयुग्मे पदपङ्क्तिषु ॥ ४८ ॥

द्वयोर्न सङ्करं कुर्यात् सङ्करश्चेद् विनाशकृत् ।

दण्डकः स्वस्तिकश्चैव प्रस्तरश्च प्रकीर्णकः ॥ ४८ ॥

नन्द्यावर्तः परागश्च पद्माख्यः श्रीप्रतिष्ठितः ।

ग्रामादीनां तु सामान्याद् विन्यासास्त्वेवमष्टधा ॥ ४९ ॥

ग्रामपर्यन्तवीथिस्तु ख्याता मङ्गलवीथिका ।

नगरे जनवीथी स्याद् रथ्याख्या खेटकादिषु ॥ ५० ॥

एकद्वित्रिचतुष्पञ्चदण्डैः स्याद् वीथिविस्तृतिः ।

प्रागुत्तराभ्यां वीथीभ्यां ककरीबद्धमध्यमम् ॥ ५१ ॥

सचतुर्द्वारपर्यन्तवप्राढ्यो दण्डकाह्वयः ।

यस्मिन्नेकैव वीथी स्यात् प्राचीना सोऽपि दण्डकः ॥ ५२ ॥

पदानां पञ्चविंशत्या ग्रामे तन्मध्यकोष्ठकात् ।

प्रागादिषु चतुर्दिक्षु पृथग् लुम्पेत् पदद्वयम् ॥ ५३ ॥

तस्मात् पदद्वयं बाह्ये प्रागाद्यं तु प्रदक्षिणम् ।

विलोप्य स्वस्तिकाकारो विन्यासः सिद्ध्यति स्फुटम् ॥ ५४ ॥

प्राक्प्रत्यगायतास्तिस्रः सौम्यास्तिस्रोऽथ वीथयः ।

चतस्रः पञ्च वा षड् वा सप्त वा प्रस्तरे स्मृताः ॥ ५५ ॥

चतस्रो वीथयः प्राच्याः सौम्या द्वादश वीथयः ।

रुद्रदिङ्मन्दवसुभिर्मिताः स्युर्वा प्रकीर्णके ॥ ५६ ॥

प्राक् प्रत्यग्वीथयः पञ्च सौम्याश्च स्युस्त्रयोदश ।
 शक्या चातिशक्या चाष्टद्यात्यष्ट्या च सम्मिताः ॥ ५७ ॥
 नन्धावर्ते तु विन्यासे ग्रामादेः प्रभवन्ति हि ।
 प्राच्याः षड् वीथयो यस्मिन् सौम्या धृत्यादिसंख्यया ॥ ५८ ॥
 आकृत्यन्तं समा यत्र परागः सोऽभिधीयते ।
 प्राचीना वीथयः सप्त त्रयोविंशदितः क्रमात् ॥ ५९ ॥
 ओ सप्तविंशतेः सौम्या विन्यासे पञ्चके स्मृताः ।
 प्राचीना वीथयोऽष्टौ स्युरष्टाविंशतिमादितः ॥ ६० ॥
 आद्वात्रिंशमुदीच्याः स्युर्विन्यासे श्रीप्रतिष्ठिते ।
 महेन्द्रे गृहरक्षे च भल्लाटे पुष्पदन्तके ॥ ६१ ॥
 महाद्वाराणि चैव स्युरुपद्वाराणि सन्ति चेत् ।
 भृशे पूषणि भृङ्गाख्ये दौवारे शोषनागयोः ॥ ६२ ॥
 दितावपि च पर्जन्ये जलमार्गास्त्वथैन्द्रतः ।
 ईशार्गलान्तं शस्ताः स्युः प्रागुदीचीप्लवो यथा ॥ ६३ ॥
 सूर्ये सूर्यो भृशे विष्णुरग्नौ काली यमे गुहः ।
 विष्णोर्मध्ये च वरुणे सुग्रीवे सुगतालयः ॥ ६४ ॥
 भृङ्गे जिनस्य ज्येष्ठाया वायौ चण्ड्यास्तु मुख्यके ।
 कुबेरस्य महाकाल्या मातृणां च निशाकरे ॥ ६५ ॥
 अदितौ वास्तुचामुण्ड्याः शस्त ऐशे शिवालयः ।
 निर्ऋतौ वा जयन्ते वा विघ्नेशस्य गृहं भवेत् ॥ ६६ ॥
 अथवा देवतानां तु विन्यासमपरे जगुः ।
 तद्ग्रामपुरराष्ट्राणां स्यान्मध्ये ब्रह्मणो गृहम् ॥ ६७ ॥
 प्राच्यां वा पश्चिमे विष्णोर्ग्रामादीनां च सम्मुखम् ।
 पराङ्मुखं स्यादैशान्यां मानुषं शिवमन्दिरम् ॥ ६८ ॥
 स्वयम्भुदैविकं चार्षं यत्र तत्र स्थितं तु वा ।
 न दोषाय भवेत् तस्याप्यग्रं वर्ज्यं शुभार्थिभिः ॥ ६९ ॥

प्राच्यामैशेऽथवा मध्ये गौर्याः सूर्यस्य च श्रियः ।
 मातृणां दक्षिणे धाम शास्तुः काल्याश्च नैर्ऋते ॥ ७० ॥
 षण्मुखस्य तु वारुण्यां ज्येष्ठायास्तदनन्तरम् ।
 वायौ सौम्ये च दुर्गाया लोकेशानां स्वगोचरे ॥ ७१ ॥
 इन्द्रेशसोममध्ये वा क्षेत्रपालनिकेतनम् ।
 देशग्रामपुरादीनामेवमृद्धिकरं भवेत् ॥ ७२ ॥
 गोशाला दक्षिणे प्राच्या वापी त्वैशे तथोत्तरे ।
 सर्वत्र वा जलं शस्तमुत्तरे पुष्पवाटिका ॥ ७३ ॥
 दक्षिणे गणिकावाटः परितः शूद्रजन्मनाम् ।
 वैश्यानां वणिजां प्राच्यां मध्ये राजापणो भवेत् ॥ ७४ ॥
 प्रागुदीच्योः कुलालानां नापितानां च तत्र हि ।
 जालिकानां च वायव्ये सूनानां पश्चिमे गृहम् ॥ ७५ ॥
 तैलविक्रयिणां सौम्ये तक्षणां वाप्यनिलेऽनले ।
 वायव्ये कारुकादीनां कुविन्दानां तु पश्चिमे ॥ ७६ ॥
 क्रोशद्वये वा क्रोशे वा बहिश्चण्डालपक्कणम् ।
 प्रागुत्तरेण तु क्रोशाद् बहिः पितृवनं भवेत् ॥ ७७ ॥
 अनुक्तानां तथान्येषां युक्त्या वासं प्रकल्पयेत् ।
 राजधान्यां नृपावासो ब्रह्मांशादपरांशके ॥ ७८ ॥
 तस्य प्राच्यां तु बाह्यालिर्निद्रकोशसभान्वितः ।
 पाकशालान्तरिक्षेऽमौ शयनं गृहरक्षके ॥ ७९ ॥
 अस्त्रशाला च निर्ऋतौ वरुणे भोजनालयः ।
 विहारशाला वायौ स्याद् भल्लाटे कोशसञ्चयः ॥ ८० ॥
 कोष्ठागारं तथा सौम्ये व्यायामोऽप्यर्गले स्मृतः ।
 पर्जन्ये स्नानभवनमैशे होमार्चनागृहे ॥ ८१ ॥
 नृत्तशाला तु गान्धर्वे गजशाला तु पूषणि ।
 दित्यदित्योस्तुरङ्गाणां स्त्रीणां सौम्ये च पश्चिमे ॥ ८२ ॥

मध्ये प्रपां मण्डपं वा युक्त्यान्यच्चापि कारयेत् ।
 ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां धनिनामपि ॥ ८३ ॥
 वक्ष्यमाणास्तु ये जातिप्रासादाः सम्पदां पदम् ।
 अशक्तानां तु शालाः स्युस्तत्तद्युक्त्या विनिर्मिताः ॥ ८४ ॥
 इत्थं ग्रामपुरादिमानमखिलं प्रोक्तं तथा लक्षणं
 ब्रह्मागस्त्यपुरन्दरैरपि यथा त्वष्ट्रा मयेनोदितम् ।
 यद् विज्ञाय निवेशितेषु विधिना धामस्वशेषामरैः
 सम्पूज्यो मुनिभिस्तथैव मनुजैर्देवो मृडानीपतिः ॥ ८५ ॥
 इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे
 क्रियापादे पदविन्यासग्रामपुरलक्षणं नाम
 षड्विंशः पटलः ।

अथ षड्विंशः पटलः ।

अथ लिङ्गप्रतिष्ठायै प्रासादकरणं प्रति ।
 कर्षणादिक्रियाचक्रं ज्ञेयं तल्लिख्यतेऽधुना ॥ १ ॥
 गुणवद्देशकालाप्तिरवेक्ष्यास्मिन् विशेषतः ।
 सुक्षेत्रे चोदिते काले बीजमुप्तं हि रोहति ॥ २ ॥
 जलसेकादिभिः कृत्यैरभीष्टफलदं च तत् ।
 कर्षणादिक्रियासिद्धे प्रासादे लक्षणान्विते ॥ ३ ॥
 विशिष्टदेशे काले च विधिनैव प्रतिष्ठिते ।
 लिङ्गे करोति सान्निध्यं शिवः कर्तुंश्च भूतये ॥ ४ ॥
 अत्रोत्तरायणः कालो नियतः कर्षणादिके ।
 मासाश्चानधिकाः पक्षः शुक्लस्तु तिथयः शुभाः ॥ ५ ॥
 पर्वरिक्ताष्टमीविष्टिप्रतिपद्वर्जितास्तु याः ।
 करणानि विना विष्टिं शकुनिं च चतुष्पदम् ॥ ६ ॥
 नागकिंस्तुन्नकौ हित्वा शस्तानि सुखदानि च ।
 चन्द्रज्ञगुरुशुक्राणां वारद्रेक्काणकांशकाः ॥ ७ ॥

शस्ता गुरुशकाव्यानां होराश्चोदयदृष्टयः ।

पापानामंशदिवसद्रेकाणोदयदृष्टयः ॥ ८ ॥

होराश्चाशोभनाः सर्वे ग्रहा(स्त्वो?स्त्वा)य गताः शुभाः ।

त्रिषष्टायगताः पापाः शस्ता नेष्टास्ततोऽन्यतः ॥ ९ ॥

षट्सप्तदशगः शुक्रो नेष्टोऽन्यत्र शुभावहः ।

सर्वेऽप्यष्टमगा नेष्टाः शुक्रस्तत्रापि शोभनः ॥ १० ॥

द्वितीयपञ्चगश्चन्द्रो ज्ञः सप्तनवपञ्चगः ।

द्विसप्तपञ्चनवमे गुरुश्चैते शुभावहाः ॥ ११ ॥

सौम्यादित्याश्वितिष्याणि हस्तपौष्णे त्रिरुत्तराः ।

रोहिणी श्रवणं स्वाती मैत्रं चेष्टानि भानि वै ॥ १२ ॥

ग्रहमुक्तं ग्रहयुतं ग्रहेणाकाङ्क्षितं त्यजेत् ।

तद्यथा —

उल्कापातं सूर्याद् दशमे नक्षत्रे भूकम्पः । सप्तमे ब्रह्मदण्डः । पञ्च-
दशे मोघम् । एकविंशतिके शुक्रात् सप्तमे नक्षत्रे मृत्युः राहोरेकादशमे च ।
शनैश्चरयुक्तनक्षत्राद् दशमषष्ठविंशति(खा?भा)नि च खण्डनक्षत्राणि वज्र्यानि ।
बुधादष्टममष्टादशकं चतुर्विंशे त्रिकं च महाकण्टकाख्यानि । भौमात् पञ्च-
मसप्तमनवमचतुर्दशत्रिकभानि ज्वालाभिगुरोर्नवमं रोगारूढं च वज्र्यम् ।

अपिच

अश्वे चित्रे च रोहिण्यां धनिष्ठायां तथोत्तरे ॥ १३ ॥

अर्कादियोगो दग्धारूयो ज्येष्ठायां चापि पूषमे ।

द्वादश्येकादशी तद्वत् पञ्चमी च द्वितीयया ॥ १४ ॥

षष्ठ्यष्टमी च नवमी दग्धाः सूर्यादिभिर्युताः ।

अनूराधा वैश्वदेवं शतभाश्चीन्दुसर्पभम् ॥ १५ ॥

हस्तं चार्कादिसंयोगान्मृत्युयोगा भवन्ति हि ।

मखा विशाखाषाढा च मूला शतभिषक् तथा ॥ १६ ॥

रोहिणी चोत्तराषाढा विषयोगास्त्विनादिभिः ।

अर्केऽभिपञ्चमीयोगः सोमे चित्राद्वितीयया ॥ १७ ॥

भौमे च रोहिणी पूर्णा बुधे याम्येन सप्तमी ।
 गुरौ ज्येष्ठा प्रतिपदं शुके षष्ठी च वैष्णवम् ॥ १८ ॥
 शनौ पौष्णाष्टमीयोगो मृतयोगस्स्थजेदिमान् ।
 प्राजापत्यं तृतीयायां सौम्यं षष्ठ्यां तु तिष्यभम् ॥ १९ ॥
 दशम्यां द्वादशी मैत्रं पञ्चम्यां श्रवणं तथा ।
 सप्तम्यां पौष्ण(भा?भं) याम्यमष्टम्यां चोग्रसंज्ञिताः ॥ २० ॥
 चित्रा विशाखा चाग्रेयमजैकपदवैष्णवे ।
 शतोदुम्बराहिर्बुध्न्यमश्विना भरणी तथा ॥ २१ ॥
 रोहिण्यार्द्राद्वितीशानि शून्यान्यृक्षाण्यजादिषु ।
 मासेष्वेतानि वर्ज्यानि क्रमाद् द्वादश भान्यपि ॥ २२ ॥
 विष्कम्भशूलगण्डाश्चाप्यतिगण्डोऽथ वज्रकम् ।
 व्याघातश्चैषु योगेषु त्रिपञ्चतुरसैर्मितम् ॥ २३ ॥
 नवापि नव हित्वैषां षटिकाः शुभदाः पराः ।
 विष्कम्भशूलयोरदौ मध्ये गण्डातिगण्डयोः ॥ २४ ॥
 व्याघातवज्रयोरन्ते त्यजेदुक्तास्तु नाडिकाः ।
 व्यतीपातं च परिधं वैधृतिं चाखिलं त्यजेत् ॥ २५ ॥
 यावदर्कारयोर्मूलं मूलात् तत्संख्यतारकम् ।
 दग्धं च कण्टकं स्थूणं प्रतिष्ठादिषु वर्जयेत् ॥ २६ ॥
 सर्पाश्विपित्र्यपौष्णानि ज्येष्ठा मूलं परस्परम् ।
 याम्यहिर्बुध्निमैत्राणि पुष्यपूर्वाप्यभान्यपि ॥ २७ ॥
 श्रोणाप्रवेशशतभट्टस्तार्द्रास्वातयो मिथः ।
 पादभं पादभाबिद्धमर्धक्षं चार्धभाहतम् ॥ २८ ॥
 ग्रहैरेषु स्थितैरेषां वेधं ज्ञात्वा विवर्जयेत् ।
 नाना(रा? यो)गे यथासंख्यं पक्षयोस्तिथियोजिते ॥ २९ ॥
 मुनिसंख्याविभक्तेऽस्मिन् ज्ञेयाः श्रीदिवसादयः ।
 श्रीदिवसः कलिदिवसो नान्दीदिवसश्च कालकर्णौ च ।
 जयदिवसो वधदिवसो धनार्णवश्चैव सप्तैते ॥ ३० ॥

कालिश्च कालकर्णी च वधसंज्ञश्च वर्जितः ॥ ३१ ॥

यमो नागः सनः पारं खलश्चेति प्रसंख्यया ।

नन्दादिषु क्रमान्नाडीस्तिथिरूपाह्वयास्त्यजेत् ॥ ३२ ॥

हारी सानुर्मयो नेत्रं सूनुर्मौनी कपिः पटुः ।

हरो हारी नरः संज्ञा मान्यो मृत्युः पटुर्नरिः ॥ ३३ ॥

मग्ना सेनामयास्थेयं योग्या संज्ञार्थिनां मृदः ।

दूरे जरामुनिश्चेति ऋक्षरूपांश्च वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

अश्विन्यादिषु नक्षत्रेषु वाक्यैः संख्यघटिकान्ते घटिकाद्वयं वर्ज्यम् ।

घटिकाद्वयमृक्षान्ते दिनान्ते पञ्च नाडिकाः ।

मासान्ते द्विदिनं त्याज्यमयनान्ते दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥

पक्षं संवत्सरान्ते च प्रतिष्ठादिषु वर्जयेत् ।

नागो नाभिर्वरः कोपो नीलो नीरं नगो नगः ॥ ३६ ॥

अरं दया खरः क्रूरः पापो भूयो नयो भयम् ।

नारी प्रिया नरो नीप्रं नारं देयं द्वयो हयः ॥ ३७ ॥

वारं दिशा वरश्चेति प्रोक्ताः स्युर्विषं नाडिकाः ।

कृत्तिकादिषु वाक्यान्ते चतस्रो नाडिकास्त्यजेत् ॥ ३८ ॥

अर्धप्रहारमपि वेसरमन्दगतैः शम्भुर्गुरुः पथि जनैर्यमकण्ठकं च ।

साक्षाच्छिवं गुरुपदैर्गुलिकं च विधात् सूर्यादिवारदिवसाष्टमभागयुक्त्या ॥

ब्रह्माण्याद्यास्तु योगिन्यः पार्थरम्भाम्बुशान्तिदैः ।

वेद्याः प्रागादिरभ्यादिवाह्निदुर्गादिकं तिथौ ॥ ४० ॥

भूपरिग्रहयात्रादौ शिलास्वीकरणादिषु ।

योगिन्यभिमुखं यात्रां परिहृत्य व्रजेत् सदा ॥ ४१ ॥

अमावास्यादिकानां तु तिथीनां दशकत्रिके ।

तिथयो नन्ददिवसंख्यास्त्वाकाशं च रसातलम् ॥ ४२ ॥

आकाशे चापि पाताले शुभकर्म न कारयेत् ।

दोषानेतांस्तथान्यांश्च ज्योतिःशास्त्रविनिश्चितान् ॥ ४३ ॥

पञ्च दोषांश्च चकार्षं षडशीतिमुखं तथा ।
 ग्रहणे विषुवे तद्वत् संक्रान्तीश्चायने त्यजेत् ॥ ४४ ॥
 सर्वदोषवियुक्तं तु स्वतो न सुलभं दिनम् ।
 लभं वातो बहुगुणं स्वल्पदोषं समाश्रयेत् ॥ ४५ ॥
 दोषाणां शतसाहस्रं लग्नस्थः शमयेद् गुरुः ।
 शुक्रः पञ्चसहस्राणि बुधः पञ्चशतानि च ॥ ४६ ॥
 तस्माच्छुभे बलवति लग्नस्थे कर्षणादिकम् ।
 कुर्यात् स्थानविवृद्धयर्थं कर्तुः कारयितुस्तथा ॥ ४७ ॥
 सम्भवे शुभयोगानां कुर्वीत स्थापनादिकम् ।

तपथा —

मूलं द्वितीया चार्केण श्रोणा प्रतिपदिन्दुना ॥ ४८ ॥
 कुजे तृतीयाहिर्बुध्न्यं कृत्तिकासु बुधेऽष्टमी ।
 गुरावदितिपञ्चम्यौ चतुर्थ्या भृगुफल्गुनी ॥ ४९ ॥
 शनिः स्वातिश्च सप्तम्यां योगाः स्युरमृताः शुभाः ।
 हस्तसौम्याश्विमैत्राणि पुष्यं पौष्णं च रोहिणी ॥ ५० ॥
 सूर्यादिवारसंयुक्ताः सिद्धयोगाः शुभाः स्मृताः ।

उक्तं चान्यैः —

“ज्वलनपवनचित्रारेवतीवारुणानां
 फणिहरनिर्ऋतीनामेकमेकं क्रमेण ।
 यदि रविकुजयोर्वा योगमभ्येति नन्दा
 स भवति परयोगः कर्मणां सिद्धिहेतुः ॥”

इति । तस्माच्चोदितमासपक्षतिथिकरणनक्षत्रवारादिवसयोगशुभग्रहांशकहोराद्रे-
 क्काणानिरीक्षणोदयानां समस्तानां व्यस्तानां वा यथासम्भवं गुणवति काले क-
 र्षणादीनि प्रतिष्ठान्तं कर्माणि विदध्यात् ।

इति देशकालाधिकारः ।

लिङ्गप्रतिष्ठामन्त्रिच्छन् यजमानो गुणान्वितः ॥ ५१ ॥

न्यायोपार्जनसंशुद्धधनधान्यादिसाधनः ।
 विशुद्धाशयमाचार्यं प्रोक्तलक्षणभूषणम् ॥ ५२ ॥
 सम्पूज्य हेमवसनैर्गन्धैर्माल्यैः फलैरपि ।
 वरयेत् तं प्रतिष्ठार्थं स्वानुकूलदिनोदये ॥ ५३ ॥
 देवागारेऽथवा रम्ये नदीतीरे निवेद्य तम् ।
 साधकैर्दीक्षितैर्वापि श्रेष्ठलक्षणलक्षितैः ॥ ५४ ॥
 अष्टसंख्यैर्मूर्तिधरैः शुद्धैर्विभैः समन्वितम् ।
 पाद्यादिभिस्तु धूपान्तं मन्त्रैरेभिस्तु पूजयेत् ॥ ५५ ॥

अत्र मन्त्रयो —

“तानष्टमूर्तीनथ मूर्तिपांश्च सङ्कल्प्य सम्पूज्य यथाक्रमेण ।
 मन्त्रैरमीभिः प्रणिपातपूर्वं सन्तोषयेदंशुकभूषणाद्यैः ॥”

इति ।

ओं

पृथ्वी धारयते लोकान् लोकाः पृथ्वीमयाः स्मृताः ।
 सर्वगं पृथिवीरूपं पृथ्वीमूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ५६ ॥

ओम्

अग्निर्धारयते लोकान् लोकाः अग्निमयाः स्मृताः ।
 सर्वगं चाग्निरूपं ते अग्निमूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥

ओम्

आत्मा यजति वै यज्ञैर्लोका यज्ञमयाः स्मृताः ।
 सर्वगं यज्ञरूपं ते यज्ञमूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥

ओं

सूर्यो धारयते लोकान् लोकाः सूर्यमयाः स्मृताः ।
 सर्वगं सूर्यरूपं ते सूर्यमूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ५९ ॥

ओं

जलं धारयते लोकान् लोकाः जलमयाः स्मृताः ।
 सर्वगं जलरूपं ते जलमूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ६० ॥

ओं

वायुर्धारयते लोकान् लोका वायुमयाः स्मृताः ।
सर्वगं वायुरूपं ते वायुमूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ६१ ॥

ओं

सोमो धारयते लोकान् लोकाः सोममयाः स्मृताः ।
सर्वगं सोमरूपं ते सोममूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ६२ ॥

ओं

व्योम धारयते लोकान् लोका व्योममयाः स्मृताः ।
सर्वगं व्योमरूपं ते व्योममूर्ते ! नमोऽस्तु ते ॥ ६३ ॥
एवं क्षमाग्न्यात्मसूर्याम्बुवाय्विन्दुव्योमसंज्ञिताः ।
मूर्तयोऽष्टौ शिवस्योक्ता जगद्यन्त्रप्रवर्तिकाः ॥ ६४ ॥
शर्वो रुद्रः पशुपतिरीशानश्च तथा भवः ।
उग्रश्चैव महादेवो भीमश्चेत्यष्ट मूर्तिपाः ॥ ६५ ॥
एवं क्षित्यादिशर्वादिमूर्तिमूर्तीश्वरात्मकान् ।
अभ्यर्च्य ब्राह्मणानष्टौ गन्धपुष्पाम्बरादिभिः ॥ ६६ ॥
आचार्यं च विशेषेण सम्पूज्याभिप्रणम्य च ।
ततस्तु वरयेदेतान् यजमानः प्रसन्नधीः ॥ ६७ ॥
शिवलिङ्गप्रतिष्ठार्थमाचार्यं त्वामहं वृणे ।
एभिर्मूर्तिधरैः सार्धं प्रसादं कुरु मे विभो ! ॥ ६८ ॥
इत्युक्त्वा यजमानस्तान् प्रणम्य वरयेच्च ते ।
आचार्यसहिता ब्रूयुर्यजमानं तथास्त्विति ॥ ६९ ॥
ततः सङ्कल्पिते देशे स्वानुकूलदिनादिके ।
भूमेः प्राकारसीमान्तं ज्ञात्वा कुर्यात् परिग्रहम् ॥ ७० ॥

तथा —

चतुरश्रं चतुर्हस्तं चतुःस्तम्भं तु मण्डपम् ।
प्रासादगर्भादैशान्यां कृत्वा कुण्डं च शोभनम् ॥ ७१ ॥
द्वाराणीष्ट्वा प्रविश्यान्तः कुण्डे त्वाधाय पावकम् ।
हुत्वाज्यं संहितामन्त्रैर्लोकेशास्त्राद्यैरपि ॥ ७२ ॥

अधोरास्त्रेण च पुनः सहस्रं शतमेव वा ।

अथ मण्डपमध्ये पञ्चकोष्ठेषु मध्ये पद्मं दिक्षु स्वस्तिकचतुष्टयं चालिष्य तेपु पञ्च कुम्भान् सप्तधान्योपरि संस्थाप्य यथाविधि तीर्थजलैरापूर्य तेषु हिरण्यरत्नगन्धपुष्पाक्षतप्रशस्तौषधीर्निक्षिप्य बिम्बाश्वत्थादिपञ्चपल्लवकुशकूर्चफलवदनान् सवसनमाल्यालङ्कृतकण्ठान् साङ्गमूलासनादिक्रमेणावाहितशिवान् यथावदभिपूज्य तेषामैशान्यां कृतमण्डलपीठपङ्कजे सप्तधान्योपरि शिवकुम्भं विधिवत् प्रतिष्ठाप्यापूर्यालङ्कृत्य तस्मिन्नपि साङ्गं शिवं चलाचलासनमावाह्याभ्यर्च्य वह्निस्थं शिवं साङ्गं कुम्भजलेष्वायोज्य प्रासादगर्भमध्ये कुम्भजलैरीशानेनाप्लाव्य पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरप्रासादसीमासु पूर्वादिकुम्भजलैः पुरुषादिभिराप्लाव्य स्वीकृतवास्तोरभिपदस्थानमुदङ्मुखेन शिल्पिना कुन्दालेन खानयित्वा तन्मृदं वेणुवेत्रादिपिटकेनोद्धृत्य नैऋतपदे सप्तकृत्वः प्रक्षिप्य कुम्भावशिष्टाम्भसा स्वातमापूर्य शिष्टजलेन खनित्रादिकं संस्त्राप्य स्नातस्याहताम्बरस्य विप्रस्य शिरसि स्कन्धे वा शिवकुम्भमुद्धृत्य निधायानेकजनसाक्षिकं गीतवाद्यवेदघोषपुरस्सरं प्राकारपूर्वसीमान्तं कुम्भं नीत्वा तत्र क्षणमात्रं स्थित्वा तस्मादाग्नेयादिदिक्षु प्रदक्षिणवृत्त्या क्रमादीशान्तं कुम्भं परिभ्रम्य सीमाकोणचतुष्टये शङ्खचतुष्टयं संस्थाप्य रात्रौ भूतक्रूरेण भूतभ्यो बलिं दिक्षु विकीर्याचार्यस्तत्रैस्थानि भूतान्यन्यत्रै निवासायानेन प्रस्थापयेत् ।

ओं भूतराक्षसा यक्षाः पिशाचा ब्रह्मराक्षसाः ॥ ७३ ॥

ये चान्येऽत्रावतिष्ठन्ते सर्वे तेऽन्यत्र यान्त्वतः ।

अद्यप्रभृति यत् स्थानमिदं देवस्य शूलिनः ॥ ७४ ॥

ओं हः हुं फड् इति भूतवर्गं प्रस्थाप्य प्रतिष्ठमानानां तेषां बलिं पुनर्विकीर्य प्रभातायां रजन्यां सुमुहूर्ते कर्षणं विदध्यात् । तद्यथा —

कपिलैर्वा वृषैः शुक्लैर्बलिभिर्लक्षणान्वितैः ।

क्षीरवृक्षयुगैर्युक्तैः खदिरासनलाङ्गलैः ॥ ७५ ॥

स्नातैर्नवाम्बरैः पुंभिस्तैश्च सर्वैरलङ्कृतैः ।

गुरुस्तल्लाङ्गलं स्पृष्ट्वा त्वजातेनाभिमन्त्रयेत् ॥ ७६ ॥

ततः प्राचीनरेखाभिः कर्षणं तैः प्रवर्तयेत् ।

जपित्वा वामदेवेन सप्त धान्यानि वापयेत् ॥ ७७ ॥

जलैरघोरेणासिच्य रक्षामीशेन कल्पयेत् ।

तानि सस्यानि पक्वानि गोभिर्वक्त्रेण घासयेत् ॥ ७८ ॥

अथात्र मञ्जर्या —

“भूयस्तत्र निधाय गोनिवसनं नीत्वा च संवत्सरं

मुद्गादीनि पुनश्च तत्र निवपेद्धान्यानि पूर्वक्रमात् ।

भूयस्तान्यथ भक्षयेच्च पशुभिः शुद्धे मुहूर्ते ततः

खात्वा शल्यविमोचितामतिदृढां भूयो विदध्यान्महीम् ॥”

इति ।

कर्षणाधिकारः ।

यावत् प्रासादसीमान्तं तावत् कृत्वा समं भुवम् ।

दर्पणोदरसंकाशां विलिप्तां गोमयाम्बुभिः ॥ ७९ ॥

शङ्कुना दिक्परिच्छेदं विधायात्रोदितक्रमात् ।

शङ्कुन् पुन्नागनागादिदृढशस्ततरुद्भवान् ॥ ८० ॥

हस्तायतांश्चतुर्थांशपरिणाहान् सुवर्तुलान् ।

नवसंख्यांस्तु गन्धार्धैः पूजितान् मध्यमादितः ॥ ८१ ॥

न्यसेदैनद्रादिदिक्ष्वष्टावग्न्यादिष्विति केचन ।

शङ्कुन् प्रासादसीमासु विन्यस्य प्रथमं गुरुः ॥ ८२ ॥

ताडयेल्लोहकूटेन मुद्गरेणाथवा समम् ।

नाश्मना न च काष्ठेन ताडयेद् दोषकृद् यतः ॥ ८३ ॥

अष्टमङ्गलसंसिद्धयै प्राङ्मुखोऽष्टैव ताडयेत् ।

ततः शिल्पी यथेष्टं तु शङ्कुन् कूटेन ताडयेत् ॥ ८४ ॥

सहसा प्रविशेच्छङ्कुर्न विशेद् वात्र विघ्नकृत् ।

शनैर्विशेद्वज्रः शङ्कुः कर्मसिद्धिं तदा वदेत् ॥ ८५ ॥

भिन्ने शीर्णेऽथवा रुग्णे तस्य पुत्रस्य वा मृतिः ।

पूर्वादिदिक्षु प्रणते घनं चाग्निभयं मृतिम् ॥ ८६ ॥

घनक्षयं भयं रोगमृद्धिं सौख्यं च निर्दिशेत् ।

अविशीर्णोच्छिन्नशिखे स्थानवृद्धिं समादिशेत् ॥ ८७ ॥

कार्पाससूत्ररज्जुः स्यात् प्रशस्ता सुदृढा समा ।

शाणी कौश्यथवा मौञ्जी तथा सूत्रं प्रसारयेत् ॥ ८८ ॥

रेखा सूत्रानुगा कार्या स्फुटं हेमशलाकया ।

राजत्याप्यथवा दध्नाप्यक्षतैर्वा यथादिशम् ॥ ८९ ॥

नियुक्तः सूत्रपाते यो यजमानोऽथवा परः ।

निर्विकारौ यदा स्यातां निःशल्यां भुवमादिशेत् ॥ ९० ॥

कण्डूयनादिविकृतौ शल्यमस्तीति निर्दिशेत् ।

श्वसृगालाजगोश्वादीन् सहसैव तदागतान् ॥ ९१ ॥

यदि पश्येदधस्तत्र शल्यमस्तीति निर्दिशेत् ।

तद्यथा —

शिरःकण्डूयने शिरसोऽस्थि तालद्वयखाते, मुखस्पर्शे काष्ठं कपालं वा द्विहस्ते, ग्रीवायां लोहशृङ्खला करत्रये, अस्योर्बाह्वोर्वा सार्धहस्तद्वये तदस्थि, प्रकोष्ठयोर्जानुमात्रे खट्वापादः कपालमस्थि वा, कटिमात्रे कटिस्पर्शे लोहम्, ऊर्वोरस्थि दारु वा तन्मात्रे, उरोहृदयाभ्यां तावति तदस्थि, जान्वोर्हस्तमात्रे स्तम्भः, जङ्घयोर्नापितोपस्करं जङ्घास्थि वा, पद्भ्यां कुञ्जरास्थि, अङ्गुष्ठे घटिका रीतिका वा, अङ्गुलिष्वश्वपादः सार्धताले कांस्यं वा, मिश्रत्रेष्ठाभिः शल्यमपि विमिश्रं ब्रूयात् । मार्जारलङ्घने रभसास्थि(?) तत्प्रमाणे, शुना गवास्थि, अजेनाजं शौनं वास्थि, अश्वेन माहिषं, माहिषेण जाम्बुकं, जाम्बुकेन वाराहं, वाराहेण वैयाघ्रं, वैयाघ्रेणैभम्, इमेन नारं, नारेण गार्दभं, गार्दभेनाजं, सूत्रलङ्घनेन क्षेत्रप्रवेशेन वा दर्शनेन तत्कीर्तनेन चाप्येवं ब्रूयात् । भस्मतुषाङ्गारादीनि पक्षिणां प्रवेशान्निर्दिशेत् ।

एवमादिशल्येष्वनुद्धृतेष्वेव देवालयगृहादिकं यदि कुर्यात् तत्र देव-
तायाः सान्निध्यहानिः कर्तुंश्च तद्वंश्यानामनभ्युदयात्ययरोगप्रवासनैर्धान्यविना-
शपरिक्लेशादयो दोषा भवन्ति । तानि ग्रन्थगौरवभयान्न विविच्योच्यन्ते ।
अथ शोभनानि च शल्यानि भवन्ति । अत्र यथा ब्रह्मशम्भुः —

“जीवन्मत्स्यस्तु धान्याक्षिं कूर्मो योगं प्रवर्तयेत् ।

नित्यं श्रियं च मण्डूको मूषिको धर्मशीलताम् ॥”

अपिच,

मत्स्यमण्डककूर्माश्च सुवर्णं पारतं मणीन् ।

खातान्नाभ्युद्धरेत् तस्मादुद्धरेच्चेदनर्थकृत् ॥ ९२ ॥

इति शल्योद्धाराधिकारः ।

अथात्र शल्यमुद्धृत्य वास्तुपूजां प्रवर्तयेत् ॥ ९३ ॥

अत्र ब्रह्मशम्भुः —

“वास्तुर्वस्तुतनुदैत्यः कोपजो दैत्यमन्त्रिणः ।

श्रूयते वास्तुविद्यासु तथापि च शिवागमे ॥”

इति ।

पुरा सुरासुरे युद्धे पुरन्दरमुखैः सुरैः ।

विष्णोः प्रभावभूम्नैव भग्ना नेशुः पुरामुराः ॥ ९४ ॥

गुरुर्भृगुसुतस्तेषां संरम्भाद् भृशकोपनः ।

जुहाव हव्यं हव्याशे छागं चैकं सलक्षणम् ॥ ९५ ॥

स्वेदाम्भो जुह्वतस्तस्य यन् पपात हविर्भुजि ।

तत्तेजसा स तु च्छागश्छागवक्त्रोऽसुरोऽभवत् ॥ ९६ ॥

भूमिं दिवं च सञ्छाद्य भैरवाभोगवर्ष्मणा ।

उदतिष्ठन्मुनिश्रेष्ठं किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ ९७ ॥

तमावभापे भृगुजो जृम्भमाणं भयानकम् ।

विबुधानबुधप्रज्ञान् भ्रंशयेथास्त्रिविष्टपात् ॥ ९८ ॥

इत्युक्तस्तर्जयन् नादैर्निर्गच्छन् स्वमुखानलैः ।

भर्जयन्निव लोकांस्त्रीन् निर्जरानभ्यधावत ॥ ९९ ॥

ऋ(षभो ? भवो)ऽपि भयात् तस्य विभावैर्भ्रंशितैः स्वकैः ।

अभिजग्मुर्विभुं शम्भुमभयं भूतिभूषणम् ॥ १०० ॥

भवोऽप्यभयदस्तेषां मार्गवाभिभवाद् भृशम् ।

भग्नानां भूतयेऽथाक्षस्तृतीयादग्निमुत्थितम् ॥ १०१ ॥

आदिशद् भूतरूपं तद् भग्नीकृत्य भृगोः सुतम् ।

ततश्छागासुरं क्रूरं प्रवृद्धं दग्धुमर्हसि ॥ १०२ ॥

इत्युक्तः काप्यसक्तोऽग्निरभिदुद्राव मार्गवम् ।

विप्रदुतो भयात् सोऽपि बभ्राम सुवनत्रयम् ॥ १०३ ॥

न लेभेऽभयदं कञ्चिद्दृते भासितभूषणात् ।
 ततस्तनीयसीं कृत्वा तनुं स्वां योगशक्तितः ॥ १०४ ॥
 विवेश शर्मणे शम्भोः श्रवणेन शिवां तनुम् ।
 स तस्योदरमाविश्य शङ्करस्य शिवङ्करम् ॥ १०५ ॥
 ददृशे च जगद्विश्वं विश्वस्तं च समाश्वसत् ।
 देवोऽपि दिव्यदर्शी तं निशम्य शरणागतम् ॥ १०६ ॥
 अविस्मयः स्मयन्नाहायुगाक्षस्तु योगिनम् ।
 मा भैर्भर्गव ! तुष्टोऽहं नयबुद्धयानया तव ॥ १०७ ॥
 अग्नोषितोऽसि पुत्रो मे निर्गच्छ स्वेच्छया ह्यतः ।
 अग्र्यं ग्रहपदं दत्तं तदैश्वर्यं महत् तव ॥ १०८ ॥
 नयानयौ तथा वर्षमवर्षं च जगत्रये ।
 प्रवर्तयेथाः सततमित्युक्त्वा तं त्रिलोचनः ॥ १०९ ॥
 असृजच्छुक्लमार्गेण शुक्रोऽभून्नामतस्ततः ।
 अथ शुक्रः प्रणम्येशं विज्ञायेष्टं व्यजिज्ञपत् ॥ ११० ॥
 कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि धन्यः कोऽन्यतरो मया ।
 यदेवं देवदेवेन प्रसादादभिनन्दितः ॥ १११ ॥
 इत्युक्त्वा प्रणतं प्रीतः शुक्रं वकेन्दुशेखरः ।
 वरमन्यं वृणीष्वेति सोऽब्रवीद् ब्राह्मणं विभुः ॥ ११२ ॥
 सोऽपि वने वरं तत्र त्रस्तं छागासुरं पुरा ।
 पुरारेः पातयन् पञ्चामभयं तस्य भूतये ॥ ११३ ॥
 अथाधोवदनं दैत्यं दण्डवत् पतितं क्षितौ ।
 प्राह प्रसन्नः सन्नतेऽभयं दाप्ति वरं च यत् ॥ ११४ ॥
 वाञ्छितं छाग ! तत् तुभ्यमित्युक्तः शम्भुनासुरः ।
 व्यजिज्ञपद् यदज्ञानान्मयेश ! दुरनुष्ठितम् ॥ ११५ ॥
 क्षन्तुमर्हसि तत् क्षमायां वसेयं त्वत्प्रसादतः ।
 अविरोधेन देवानां वरमेतत् प्रयच्छ मे ॥ ११६ ॥

मयि ब्रह्मादयो देवा वसन्तः सन्तु पूजिताः ।
 श्रुत्वैतच्छूलहस्तोऽपि प्राह वस्तुं वरं त्वया ॥ ११७ ॥
 वृतोऽहं यत् ततो नाम्ना वास्तुपोऽसि तथास्तु ते ।
 वसेर्धातोर्निवासार्यादाबस त्वं वसुन्धराम् ॥ ११८ ॥
 वसन्तु च त्वयि प्रीताः शतानन्दादिदेवताः ।
 अद्यप्रभृति भूलोके दैवं वान्यच्च मानुषम् ॥ ११९ ॥
 कुर्वते वास्तु वासार्थं प्रथमं त्वां यजन्तु ते ।
 पुष्पैश्च धूपदीपैश्च बलिभिश्च विलक्षणैः ॥ १२० ॥
 त्वं च त्वद्देहसंस्थाश्च पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ।
 एवं मयैव विहितं कुर्वतां वास्तुपूजनम् ॥ १२१ ॥
 तदायतनवेश्मादौ वसतां सन्तु सम्पदः ।
 अकृत्वा वास्तुयजनं प्रासादभवनादिकम् ॥ १२२ ॥
 कृतं तदासुरं सर्वं भूयात् तत्र च यत् कृतम् ।
 इति दत्त्वा वरं देवः शुक्रवास्तुपयोः पृथक् ॥ १२३ ॥
 वस्तुं देवान् नियुज्यास्मिंस्तत्रैवान्तरधीयत ।
 यद्देशदिङ्मुखं शम्भोः प्रणतः पातितोऽसुरः ॥ १२४ ॥
 शुकेण देवैरुषितं तदैवाभूद् विभोर्वरात् ।
 तथैवाधोमुखोऽद्यापि वास्तुरीशानदिकिञ्चराः ॥ १२५ ॥
 प्रसार्य पादौ नैर्ऋत्यामधिशेते स्म काश्यपीम् ।

इत्थं हि वास्तोष्पतिना पुरेशाल्लब्धं वरं तद् यदभूदभीष्टम् ।
 इष्टो विमानादिविधावतस्तद्यज्ञः सुराणामपि मानवानाम् ॥ १२६ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे

देशकालकर्षणशल्योद्धारवास्तूपस्यविधि-

पटलः षड्विंशः ।

अथ सप्तविंशः पटलः ।

अत्रास्य पूजां विदधीत वास्तौ वास्तोष्पतेस्तद्वतदेवतानाम् ।
तन्नामभिश्चाप्यथ वक्ष्यमाणैर्द्रव्यैर्यथावच्च बलिं विकीर्य ॥ १ ॥
उद्दिष्टदेशे नवगोमयाम्भस्सेकोपलिप्ते चतुरश्रमादौ ।
कृत्वाष्टधा तद् विभजेदथैवमुक्तं चतुष्पष्टिपदं तु तत् स्यात् ॥ २ ॥
तस्मिन् विभक्ते नवधा तु सूत्राण्यास्फाल्य शालीयकपिष्टमिश्रम् ।
एकोत्तराशीतिपदं तदुक्तं देवालयानामपि भूमिपानाम् ॥ ३ ॥
कृत्वा चतुष्पष्टिपदं तु तस्य कोणेषु सूत्रे विनिवेश्य तस्मिन् ।
मध्ये पदानां हि चतुष्टये स्याद् ब्रह्माभिपूज्यस्तदनन्तरं च ॥ ४ ॥
प्राक् कोष्ठयुग्मे स मरीचिनामा याम्ये विवस्वान् वरुणे च मित्रः ।
महीधरः सौम्यपदद्वयस्थः कोणार्धयुग्मेषु वदामि देवान् ॥ ५ ॥
सावित्रः सविता च वह्निहरिति स्यातां पदार्धे गता-
विन्द्रश्चेन्द्रजयश्च राक्षसदिशि ख्यातावथो मारुते ।
रुद्रो रुद्रजयस्तथेशदिशि चाप्यापापवत्साह्वयौ
बाह्ये कोणचतुष्टयेऽपि च पुनर्वक्ष्यामि देवाष्टकम् ॥ ६ ॥
शर्वः स्कन्दोऽर्यमाहश्च जम्भकः पिलिपिञ्जकः ।
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी ॥ ७ ॥
अथ प्रान्तचतुष्पादीद्वात्रिंशत्कोष्ठदेवताः ।
प्रागादिक्रमशो ज्ञेयाश्चतुर्धैव चतुर्दिशम् ॥ ८ ॥
प्राच्यामीशानपर्जन्यजयन्तेन्द्रार्कसत्यकाः ।
भृशान्तरिक्षावित्यष्टौ देवताः स्युः प्रदक्षिणम् ॥ ९ ॥
अग्निः पूषाथ वितथो यमश्च गृहरक्षकः ।
गन्धर्वभृङ्गराजौ च मृगास्त्योऽपि च दक्षिणे ॥ १० ॥
निर्ऋतिर्दैवारिकश्च सुग्रीववरुणावपि ।
पुष्पदन्तासुरौ शोषः पापयक्ष्मा च पश्चिमे ॥ ११ ॥
मारुतो नागमुख्यौ च भल्लाटश्च निशाकरः ।
अर्गलश्च दितिस्तद्वददितिश्चोत्तरस्थिताः ॥ १२ ॥

ईशानेऽस्य शिरो निवेशितमभूद् वास्तोष्पतेर्मूर्ते
 वदौ चापि करद्वयं पदयुगं नक्तञ्चरे स्थापितम् ।
 पर्जन्यो नयनेऽदितिश्च वदनेऽस्यापापवत्सौ गले
 कर्णे चापि दितिर्जयन्तसहिताविन्द्रागलावंसयोः ॥ १३ ॥

सूर्यश्चापि निशाकरश्च भुजयोर्भल्लाटसत्यादिभिः
 सावित्रश्च तथैव रुद्रसहितस्तत्पार्श्वयोः संस्थितौ ।
 नाभौ स्थाञ्चतुराननोऽस्य कुचयोर्भूभृन्मरीचिस्तथा
 मित्रश्चापि विवस्वता तदुदरे गुह्येन्द्रकश्चापरः ॥ १४ ॥

ऊर्वोरस्य तु जङ्घयोश्च निहिता गन्धर्वपूर्वास्त्रयो
 दौवारः सुगलस्तथैव वरुणः शिष्टास्तु पार्श्वस्थिताः ।

एतस्माद् गर्भविन्यासं वास्त्वङ्गेषु न कारयेत् ।
 अज्ञानाद् वा यदा कुर्यात् तदा सर्वविनाशकृत् ॥ १५ ॥

ईशानपूजा तु घृताक्षताद्विः पर्जन्यकस्योत्पलगन्धतोयैः ।
 पीता जयन्तस्य भवेत् पताका रक्तान्नदीपैश्च यजेन्महेन्द्रम् ॥ १६ ॥

सूर्यस्य पीतान्नवितानकाभ्यां सत्यस्य साज्येन तथौदनेन ।
 गोधूमकान्नेन भृशस्य पूजा कर्त्यान्तरिक्षस्य तु मांसमापैः ॥ १७ ॥

अग्निं सुचाभ्यर्च्य तथैव लाजैः पूषाख्यमिष्ट्वा वितथं च हेम्ना ।
 मध्वोदनाभ्यां गृहरक्षकाष्ट्यं मांसौदनाभ्यां यममर्चयेच्च ॥ १८ ॥

गन्धर्वमिष्ट्वा कुसुमैः सगन्धैः स्यात् पक्षिजिह्वा त्वथ भृङ्गराजे ।
 पूजा मृगस्यापि तिलैर्यवैर्वा सिद्धं निर्ऋत्यै कृसरं यथावत् ॥ १९ ॥

दौवारिकं शोभनदन्तकाष्ठैः सुग्रीवमिष्ट्वा तु यवैः सधूपैः ।
 स्तम्भैः कुशानामपि पुष्पदन्तं तद्वज्जलेशं सितपुण्डरीकैः ॥ २० ॥

मध्वक्षताभ्यामसुराय पूजा शोषाय चान्नं घृतमिश्रितं स्यात् ।
 नीवारकान्नं त्वथ पापयक्षमण्याज्येन वायोरपि मण्डकाः स्युः ॥ २१ ॥

नागप्रसूनैरपि नागपूजां कुर्यात् तु मुख्याय तु मोदकैश्च ।
 भल्लाटसंज्ञस्य समुद्रमन्नं सोमाय राज्ञे मधुपायसाज्यम् ॥ २२ ॥

शाल्यक्षतैरर्गलमर्चयित्वा संरक्तशाल्यन्नघृतैर्दितिं च ।
 माषान्नभक्ष्यैरदितिं यथावद् द्वात्रिंशदित्थं क्रमशोऽर्चयित्वा ॥ २३ ॥
 आपस्तु दुग्धेन तथाप्रवत्सः पूज्यस्तु दध्ना घृतलड्डुकैश्च ।
 सावित्रमिष्टा तु कुशैर्गुलान्नैस्तथा सवित्रे यजनं विदध्यात् ॥ २४ ॥
 हारिद्रमन्नं सघृतं तथेन्द्रे शुद्धान्नमेवेन्द्रजयाय शस्तम् ।
 रुद्राय मांसं विहितं तु पक्वं मांसं तथा रुद्रजये त्वपक्वम् ॥ २५ ॥
 अथाभिपूज्याः समरीचिकाद्यास्ते लड्डुकालोहितशुक्लभक्तैः ।
 तथैव माषैः सघृतैर्यथावत् स्वस्वप्रदेशे विधिवत् क्रमेण ॥ २६ ॥
 ब्रह्माणमाज्याक्षतपञ्चगव्यैः पुष्पैः सगन्धैश्चरुणा तिलैश्च ।
 सम्पूज्य तु प्राग् घृतपायसेन शर्वाह्वयं स्कन्दमथो यजेत ॥ २७ ॥

याम्येऽर्यम्णे समांसाज्यं ततः पीतस्रगामिषे ।
 जम्भकाय तु वारुण्यां पिलिपिञ्जाय चोत्तरे ॥ २८ ॥
 सान्द्रलोहितपुष्पान्नैर्बलिमिस्थं प्रदापयेत् ।
 मांसौदनघृतापूपैरैशान्यां चरकीबलिः ॥ २९ ॥
 बाह्ये पित्तेन मांसेन विदार्यै वह्निदिग्बलिः ।
 पूतनायास्तु राक्षस्यां दधिरक्तोदनैर्दिशि ॥ ३० ॥
 क्षीरपित्तास्थिरक्तान्नैर्वायव्यां प्राप्य राक्षसीम् ।
 यजेत् सर्वान् स्वनाम्नैव नमोन्तं सोपचारकम् ॥ ३१ ॥
 बाह्ये त्वष्टविधेभ्योऽथ भूतेभ्यो बलिमाहरेत् ।
 प्रत्येकमुक्तद्रव्याणामलभे कुसुमाक्षतैः ॥ ३२ ॥
 सुगन्धधूपदीपैश्च शुद्धान्नेन स्मृतो बलिः ।
 स्वैर्नामभिस्तु प्रणवादिद्युक्तैर्नमोन्तकैरर्चनमेषु कृत्वा ।
 पञ्चोपचारैर्निशि शुक्लवासा विशुद्धभावस्तु बलिं प्रदद्यात् ॥ ३३ ॥
 इत्थं वास्तुशरीरस्था देवताः सम्यगर्चिताः ॥ ३४ ॥
 तत्तत्कर्मसु संसिद्धिं प्रयच्छन्ति च शान्तिकम् ।
 एकाशीतिपदेषु पूर्ववदमुं विन्यस्य वास्तोष्पतिं
 मध्ये तस्य तु वेधसं नवपदेष्वभ्यर्च्य तद्वाह्यतः ।

कोणेष्वत्र पदद्वयेष्वधिगताः सावित्रपूर्वाः सुरा-
 स्तन्मध्ये समरीचपूर्वकसुराश्चत्वार उक्ताः क्रमात् ॥ ३५ ॥
 पूर्वाद्यासु दिशासु बाह्यवृत्तिका एकैककोष्ठास्थिता
 द्वात्रिंशत् पृथग्दिशिपूर्वकसुराः पूज्याः पुरोवत् क्रमात् ।
 बाह्येऽन्याः पदवर्जितास्तु चरकी चैशे विदार्यानिले
 कोणे रक्षसि पूतनाथ पवनस्याशागता राक्षसी ॥ ३६ ॥
 शर्वस्कन्दादिचत्वारः पदवर्ज्यैर्जैर्बहिःस्थिताः ॥ ३७ ॥
 प्राग्यम्यवरुणाशासु कौबेर्या च क्रमाद् यजेत् ।
 अनयोर्मार्गयोरेकमाश्रित्यावाह्य वास्तुपम् ॥ ३८ ॥
 तदङ्गपदगाश्चापि देवताः क्रमशोऽर्चयेत् ।
 वास्तुपूजाधिकारः ।

इत्थं सम्पूज्य वास्त्वीशं ब्राह्मणांस्तत्र भोजयेत् ॥ ३९ ॥
 लिङ्गिनश्च यथाशक्ति शिल्पिकर्मकरानपि ।
 ततः प्रासादसमिन्तं स्थलं यत् तदशेषतः ॥ ४० ॥
 उद्धाहुनरमात्रं तु खात्वोद्धृत्य त्यजेन्मृदम् ।
 जलान्तं शर्करान्तं वा खानयेदिति केचन ॥ ४१ ॥

अत्र प्रतिष्ठापद्धतौ —

“शर्करान्तं जलान्तं वा खानयेद् देवसन्निधि ।
 पुरुषार्थं गृहे वाथ यावद् भूमिर्विशुद्ध्यति ॥”

इति ।

खातं सम्प्रोक्ष्य चालेण पूर्वमष्टाङ्गुलं मृदा ।
 लोष्टाद्यदुष्टयापूर्य शुद्धया चाविवर्णया ॥ ४२ ॥
 ततस्तु वृत्तपाषाणैर्मृज्जलान्तरितं क्रमात् ।
 हस्तप्रमाणमास्तीर्य सिकताभिर्मृदा पुनः ॥ ४३ ॥
 आप्लाव्य सलिलेनाथ गजैराक्रामयेत् स्थलम् ।
 प्रशस्ततरुसम्भूतैर्हस्तिपादैर्दृढैः समम् ॥ ४४ ॥

आकोट्याघर्षयेच्चैव सुदृढं चिनुयात् स्थलम् ।
 वेदांशशेषिते खाते स्थापयेत् प्रथमेष्टकाम् ॥ ४५ ॥
 प्रासादादुत्तरे कृत्वा मण्डपं चतुरश्रकम् ।
 चतुर्द्वारं चतुस्तम्भं चतुस्तारेणभूषितम् ॥ ४६ ॥
 कृतनित्यक्रियः स्नातो गुरुर्मूर्तिधरैर्युतः ।
 सामान्यार्घ्यकरः पश्चाद् द्वारे द्वाराधिपान् यजेत् ॥ ४७ ॥
 अस्त्रं क्षिप्त्वा प्रविश्यान्तः पुण्याहं तत्र वाचयेत् ।
 शुद्धात्मस्थानमन्त्रस्तु ज्ञानखड्गधरो गुरुः ॥ ४८ ॥
 पञ्चगव्यविशेषार्घ्यप्रोक्षितद्वारमण्डपः ।
 वास्त्वीशपद्मजौ मध्ये प्राच्यां लक्ष्मीं गणेश्वरम् ॥ ४९ ॥
 दक्षिणे पश्चिमे दुर्गां क्षेत्रेशं चोत्तरे यजेत् ।
 विकिरक्षेपपूर्वं तु कुम्भास्त्रयजनादनु ॥ ५० ॥
 कुम्भेषु लोकपालांश्च ध्वजेष्वस्त्राणि च न्यसेत् ।
 शिवाज्ञां श्रावयेत् तेषां भोभोःशक्रादिमन्त्रतः ॥ ५१ ॥
 अस्त्रकुम्भभ्रमादूर्ध्वं स्थिरे कुम्भास्त्रके यजेत् ।
 संस्पृश्य मुद्रया कुम्भे ज्ञानखड्गं समर्पयेत् ॥ ५२ ॥
 प्राच्यां वेदाश्रकुण्डेऽग्रावावाहितशिवे घृतम् ।
 हुत्वा तु संहितामन्त्रैरिध्मं पञ्चाक्षरेण च ॥ ५३ ॥
 तारादाधाराज्यभागौ पुनः पञ्चाक्षरैः पृथक् ।
 स्वाहान्तैस्तारपूर्वैस्तु हुत्वाज्यं त्रिस्त्रिराहुतीः ॥ ५४ ॥
 समिदाज्यचरुल्लङ्गान् ब्रह्मभिः पञ्चभिः पृथक् ।
 शतं शतं पृथग्घुत्वा शतं व्याहृतिभिर्घृतम् ॥ ५५ ॥
 लोकपालास्त्रमन्त्रैश्च प्रत्येकं त्वाहुतिद्वयम् ।
 नक्षत्रेभ्योऽथ भूतेभ्यो नागेभ्योऽपि सकृत् सकृत् ॥ ५६ ॥
 विश्वेभ्यश्चापि सर्वाभ्यो दैक्ताभ्यः स्वनामभिः ।
 नमःस्वाहान्तकं हुत्वा पुनः पञ्चाक्षरेण तु ॥ ५७ ॥

हुत्वा व्याहृतिभिः पूर्णां स्विष्टकृत्पूर्विकां धृतम् ।

हुत्वा बलिं विकीर्यात्र जपेदेकादशात्मकम् ॥ ५८ ॥

पञ्चाक्षरं च तत्संख्यं ततः प्रासादभूतले ।

चतुरश्रे चतुष्कोष्ठे कोणसूत्रे प्रसार्य तु ॥ ५९ ॥

एकाशीतिपदं तत्र कृत्वा मर्माणि कल्पयेत् ।

सिराश्च वास्तोरङ्गानि तेषु न स्थापयेच्छिलाः ॥ ६० ॥

स्तम्भं प्राथमिकं वापि मर्मादिषु न विन्यसेत् ।

प्राक्सूत्रमूर्ध्ववंशाख्यं वंशाः स्युः कोणरज्जवः ॥ ६१ ॥

पार्श्ववंश उदक्सूत्रं सूत्राण्यस्य सिरा मताः ।

सन्ध्यस्तत्र मर्माणि पूर्वोक्तैर्वाङ्गकल्पना ॥ ६२ ॥

प्रथमेष्टकादिविन्यासे तानि परिहरणीयानीत्यतोऽङ्गानि वास्वीशस्य पुनरप्युच्यन्ते । तद्यथा — ईशाने शिरः पाणिद्वयमग्निमारुतयोः पर्जन्यदिती नयने मुखमापे आपवत्से कण्ठः कर्णयोरदितिः जयन्तार्गलयोरसौ सूर्यसोमादयो भुजौ रुद्रः पृष्ठे सावित्रसवितारौ रोगशोषौ च प्रकोष्ठयोः ब्रह्मा नाभौ स्तनयोर्भृदर्यमणौ मित्रविवस्वन्ताबुदरे इन्द्रेन्द्रजयौ गुह्ये पादद्वयं निर्ऋताविलेतस्माद् वास्तुपुरुषस्याङ्गभूतानेतान् देवांश्च सिरा मर्माणि च परिहृत्य प्रथमेष्टकाः स्थापयेत् । तद्वत् प्रथमस्तम्भं मण्डपगृहादिषु स्थापयेत् ।

अत्र विश्वकर्माये —

“यद्यज्ञानात् प्रमादाद् वा वास्त्वङ्गे स्थापयेच्छिलाम् ।

स्थाननाशो भवेत् कर्तुर्दुःखं मरणमेव वा ॥”

इति ।

द्वाराद् दक्षिणतस्तस्मादन्तरा भुजवंशयोः ।

पादावशिष्टे स्वाते तु स्थापयेत् प्रथमेष्टकाः ॥ ६३ ॥

शिरःपृष्ठविभक्ताङ्गयो निर्दोषाः शुभलक्षणाः ।
 करायतास्तदर्धं च विस्तृताष्टाङ्गुलोच्छ्रिताः ॥ १४ ॥
 सुपक्वा लोहितरुचः खण्डस्फोटादिवर्जिताः ।
 नवसंख्यास्तु वा पञ्च कार्याः स्युः प्रथमेष्टकाः ॥ ६५ ॥
 उत्तमोत्तमलिङ्गस्य प्रासादे चोत्तमोत्तमे ।
 षेष्टकोऽयं विधिः प्रोक्त उत्तमादिष्वथोच्यते ॥ ६६ ॥
 अङ्गुलैः संख्यया दीर्घाः जगतीपङ्क्त्यनुष्ठुभाम् ।
 क्रमात् तदर्धविस्तारा विस्तारार्धसमुच्छ्रयाः ॥ १७ ॥
 उत्तमादिविमानानां निर्दिष्टाः प्रथमेष्टकाः ।
 स्थूलमूलेष्टका स्त्री स्यादग्रस्थूला नपुंसकम् ॥ १८ ॥
 सर्वत्र समविस्तारस्थौल्या स्यात् पुरुषेष्टका ।
 पुंसां पुमिष्टका शस्ता स्त्री स्त्रीणामिति केचन ॥ ६९ ॥
 पुमिष्टकैव सर्वेषां सर्वाभिप्रायसिद्धिदा ।
 शैले देवालये वा स्युः शैलेयाः प्रथमेष्टकाः ॥ ७० ॥
 अथ मण्डपमध्ये तु स्थण्डिले शालिभिः कृते ।
 दर्भैस्तारासने क्लृप्ते विन्यसेदिष्टकास्तु ताः ॥ ७१ ॥

तत्र सामान्याध्यैणेष्टकाः संप्रोक्ष्यास्त्रेण सन्ताड्य कवचेनोल्लिख्य मृद्धिः
 प्रक्षाल्य गोमयगोमूत्रपञ्चगव्यपञ्चामृतसुवर्णरत्नफलगन्धान्बुभिर्जलधूपान्तरितैः
 संस्नाप्य गन्धैर्विलिप्य प्रत्येकं हेमकौतुकसूत्राभ्यां बद्ध्वा अहतवज्रैराच्छाद्य
 प्रोक्तस्थण्डिले यथादिशं संस्थाप्य त्रिखण्डं तासु भावयेत् । तत्र बुद्ध्यादि-
 गन्धान्तं पुर्यष्टकं च पृथिव्यादिव्योमान्तं मूर्त्यष्टकं च शर्वादिभीमान्तं मूर्तिपा-
 ष्टकं च शिवविद्यात्मतत्त्वैश्च रुद्रविष्णुब्रह्मकारणेश्वरैः क्रमेण सहितं तत्तन्नामभिः
 प्रत्येकं प्रणवादिनमोनैः स्वनामभिः सचतुर्थिकैरिष्टकास्वष्टासु मूलमध्याग्नेष्वा-
 वाह्य विभाव्यार्चयेद् ओं बुद्धये नम इत्यादिगन्धान्तम् । ओं शिवतत्त्वाय नमः
 ओं शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः इति प्रथमखण्डमूलेषु ओं पृथिवीमूर्तये
 नमः इत्यादि व्योमान्तमष्टौ ओं विद्यातत्त्वाय नमः विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे
 नम इति मध्येषु ओं पृथिवीमूर्त्यधिपतये शर्वाय नम इति भीमान्तम् ओम्

आत्मतत्त्वाय नमः ओम् आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नम इत्यग्रेषु एवमिष्ट-
कामूलमध्याग्राणि कुशास्त्रेण स्पृष्ट्वाथ मध्येष्टकायां सर्वतत्त्वसर्वमूर्तिमूर्तिधरत्रि-
तत्त्वाधिपाय शिवाय नम इति विन्यस्यार्चयेत् ।

रक्षादर्भतिलैः परितो रक्षां विधायाथ कुण्डाग्र उपविश्य बुद्ध्यादिपृथि-
व्यादिशर्वादितत्त्वत्रयं तत्रेश्वरान् स्वनामभिस्तारादिसचतुर्थिकस्वाहान्तैराज्येन
प्रत्याहुतित्रयेण सन्तर्प्य तच्छेषं पात्रे सम्पात्य इष्टकासु त्रिखण्डे तु सम्पातयेत् ।

अथ सान्निध्यार्थं तत्त्वसन्धानं कुर्यात् । ओम् आम् ईम् आत्मतत्त्व-
विद्यातत्त्वाभ्यां नमः । ओम् ईम् ऊम् विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नम इति
सन्धायाथेष्टकासंख्यातुल्यान् नव वा पञ्च वा ताम्रमयान् निधिकुम्भांस्त्रिमधुरापू-
र्णान् नवपक्षे सुभद्रविभद्रसुनन्दपुष्पदन्तजयविजयजयन्तपूर्णसंज्ञेष्वाष्टसु कुम्भेषु
पद्ममहापद्मकरकच्छपमुकुन्दानन्तनीलशङ्खाख्यानष्टौ निर्धनावाह्य मध्येऽनन्त-
कुम्भे शक्तिनिधियुक्ते लवणारूढमूलेनाधोऽनन्तमुपरि ब्रह्माणं चार्चयेत् । एतेषु
निधिषु अष्टौ लोकपालानिन्द्रादीनावाह्याभ्यर्चयेत् । अथ पञ्चपक्षे धर्मज्ञान-
वैराग्यैश्वर्यसर्वसिद्धिसंज्ञकुम्भेषु नन्दाभद्राजयारिक्तापूर्णाख्यतिथिमत्सु पद्म-
हापद्ममकरशङ्खसमुद्रसंज्ञपञ्चनिर्धनावाह्य ब्रह्मादिपञ्चकारणेशान् पञ्चनिधि-
प्वावाह्य सम्यगभ्यर्च्य सर्वेष्वपि कुम्भेषु नवरत्नानि नववसुपञ्चरत्नानि च प-
ञ्चपक्षे प्रक्षिप्य यथादिशं गर्तेष्वामुखात् प्रतिष्ठाप्यार्घ्यादिभिर्निर्धींश्च लोक-
पालान् वा कारणेशान् वाचयेत् ।

अथेष्टकाः स्थण्डिलगताः क्रमादानीयोद्दिष्टमुहूर्ते निधिकुम्भानां मुखेषु
तत्तन्निधिलोकपालनामभिस्तारादिनमोन्तैः पूर्वाग्रमुत्तराग्रं च संस्थापयेत् ।
प्रादक्षिण्येन पूर्वादीशान्तं मध्ये च पञ्चपक्षे पूर्वादुत्तरान्तं मध्ये च सर्वाश्च
निम्नोन्नतविवर्जिताः सुसमाश्रिनुयात् । असमासु राष्ट्रभयं कर्तुः स्थानस्य च
दुःखमावहेत् । इत्येतस्मात् सममेव संस्थाप्य शिवकुम्भाम्भसा ताः संस्थाप्य
गन्धोदकेन गर्तमापूर्य प्रणवेनैकं पुष्पं प्रक्षिप्य तत् पश्येत् । प्रादक्षिणावर्तं
चेच्छोभनं वामावर्तं होमजपदानैः शान्तिं कुर्यात् । अथ यथोद्दिष्टं शिलाभिः
इष्टकाभिर्वा स्थलस्य चयनमुद्दिष्टहस्तान्तमुच्छ्रितं कृत्वा समतलं विधायाचा-
र्यमूर्तिधरशिल्पिनः सम्पूज्य निशि दर्भशय्यायां स्वप्नं दृष्ट्वाशुभस्वप्ने शान्तिं
कुर्यात् । शुभस्वप्ने पुनश्च वास्तुयागं कृत्वा गर्भन्यासं कुर्यात् ।

इति प्रथमेष्टकाधिकारः ।

अथ गर्भस्य विन्वासं कुर्यादाद्यतनादिषु ।

बीजभूतो हि यस्तस्य प्रकृतिश्च समृद्धिदः ॥ ७२ ॥

इन्द्रपावकयोर्मध्ये द्वाराद् दक्षिणतो भुवि ।

कुर्वीरन् गर्भविन्यासं सर्वे वर्णाः समृद्धये ॥ ७३ ॥

प्रतेरुपरि विप्राणामुपानोपरि भूभुजाम् ।

विशां चाथ चतुर्थानां भूमावित्यपि केचन ॥ ७४ ॥

दृढां ताम्रमयीं फेलां कुर्याद् गर्भस्य भाजनम् ।

अत्र मञ्जयाम् —

“अष्टाङ्गलं चार्धसमुच्छ्रयं तत्पादोनमूर्ध्वे विहितोच्छ्रयं च ।

हस्तायतं पात्रमथोत्तमं स्यात् त्रैराशिकेनोच्छ्रयमत्र कल्प्यम् ॥”

इति ।

सपिधानं तु तत् कुर्याद् घनं विंशतिभागतः ॥ ७५ ॥

विस्तारोऽस्य चतुर्थीशादुच्छ्रयः कोष्ठभित्तिषु ।

अथायामसमोत्सेधमुत्तमं त्विति केचन ॥ ७६ ॥

त्रिपादहीनं मध्यं स्यादधमं चार्धमुच्छ्रितम् ।

तृतीयांशं पिधानं स्यात् सर्वत्र च समं दृढम् ॥ ७७ ॥

प्रक्षाल्य पञ्चगव्येन पात्रं तत्रावटं हृदा ।

गोमयेनोपलिप्याथ पुण्याहमपि वाचयेत् ॥ ७८ ॥

अनन्तनागमालिख्य पिष्टेनास्य फणोपरि ।

विन्यस्य गर्भपात्रं तद् बाह्यतश्चतुरङ्गुलम् ॥ ७९ ॥

शालिभिः स्थण्डिलं कृत्वा तस्मिन् सागरमृत्स्नया ।

सप्तद्वीपार्णववतीं लिखेद् भूमिं सपर्वताम् ॥ ८० ॥

गर्भपात्रस्य मूलेऽन्तःकलसाभिकृतिकोष्ठके ।

मध्यकोष्ठे स्थितो ब्रह्मा वसुकोष्ठेषु तद्वहिः ॥ ८१ ॥

समरीचकसावित्रविवस्वच्छक्रमित्रकाः ।

रुद्रपृथ्वीधरौ तद्वदापवत्सश्च कोष्ठगाः ॥ ८२ ॥

तद्वाद्ये स्वरकोष्ठेषु स्थिताः षोडश देवताः ।

ते च —

ईशानश्च जयन्तश्च प्राच्यां सूर्यो भृशस्तथा ॥ ८३ ॥

अग्निर्वितथकीनाशभृङ्गराजाश्च दक्षिणे ।

पश्चान्निर्ऋतिसुग्रीववरुणाः शोष एव च ॥ ८४ ॥

वायुर्मुख्यश्च सोमश्चाप्यदितिश्चोत्तरे स्थिताः ।

वज्रमैत्तिकवैडूर्यशङ्खान् मरतकं तथा ॥ ८५ ॥

स्फटिकं च महानीलं प्रवालं च न्यसेत् क्रमात् ।

समरीचादिकेष्वष्टौ माणिक्यं ब्रह्मणि न्यसेत् ॥ ८६ ॥

यवान् मनःशिलां शालीहरिताले च पूर्वतः ।

नीवारमञ्जनं चैव तुवरं च प्रियङ्गुभिः ॥ ८७ ॥

दक्षिणे न्यसेदिति यावत् ।

श्यामाकं सीसकं माषान् सौराष्ट्रं पश्चिमे न्यसेत् ।

कुलस्थं रोचनां सौम्ये निष्पावं गैरिकं न्यसेत् ॥ ८८ ॥

सुवर्णं तारताम्रायस्त्रपुकूर्माम्बुजानि च ।

शूलं च दिक्षु कोणेषु तथाष्टौ विन्यसेत् क्रमात् ॥ ८९ ॥

खट्वाङ्गार्धेन्दुवृषभपिनाकाब्जपरश्वधान् ।

सौवर्णान् हरिणं चक्रं ब्रह्मस्थाने क्रमान्यसेत् ॥ ९० ॥

गिरितीर्थनदीनां च मृदस्तद्वद्भद्रदस्य च ।

पूर्वादिदिक्षु विन्यस्य ततः कार्कटकाद् विलात् ॥ ९१ ॥

वलमीकादम्बुधेः पौराद् वृषशृङ्गाच्च मृत्तिकाः ।

गजदन्ताच्च वह्म्यादिकोणेषु विनिधाय तु ॥ ९२ ॥

वृषशृङ्गेभदन्तोत्थे मृदौ मध्ये तु विन्यसेत् ।

सरोजनीलोत्पलयोः कुमुदस्योत्पलस्य च ॥ ९३ ॥

तगरस्य च मूलानि दिक्षु मध्ये च विन्यसेत् ।

अथ सद्यादिभिर्दिक्षु समिदाज्यचरुंस्तिलान् ॥ ९४ ॥

मूर्तिपा जुहुयुर्द्वौ द्वौ जपेयुश्च विभागशः ।
 मण्डपाद् दक्षिणे कुण्डे त्वावाहितशिवेऽनले ॥ ९५ ॥
 मन्त्रसंहितयाचार्यो हुत्वाज्यं त्रिखिराहुतीः ।
 समिदाज्यचरुल्लैजान् पृथगेकादशाहुतीः ॥ ९६ ॥
 हुत्वा पञ्चाक्षरेणापि व्योमव्यापिदशाक्षरात् ।
 अष्टात्रिंशत्कलाभिश्च ब्रह्माभिश्च सकृत् सकृत् ॥ ९७ ॥
 हुत्वाज्यमथ रत्नानां बीजानां च सकृत् सकृत् ।
 ओषधीनां च धातूनां मूलानां च मृदामपि ॥ ९८ ॥
 लोकेशानां तथास्त्राणां द्वीपाब्धीनां दिशामपि ।
 पातालानां च नागानां सर्वशब्दपुरःसरम् ॥ ९९ ॥
 ताराद्यैर्नामभिः स्वैः स्वैः स्वाहान्तैः सचतुर्थिकैः ।
 सर्वाहुतीनां शेषाज्यं पात्रे सम्पात्य तद् घृतम् ॥ १०० ॥
 तारेण गर्भे प्रक्षिप्य तं ध्यात्वा पृथिवीमयम् ।
 गन्धादिभिरथाभ्यर्च्य स्पृष्ट्वा पञ्चाक्षरं जपेत् ॥ १०१ ॥
 रात्रावखण्डनक्षत्रे स्थिरराशौ गुणान्विते ।
 तां फेलां पृथिवीं देवीं सप्तद्वीपार्णवान्विताम् ॥ १०२ ॥
 चतुर्विधैर्भूतवर्गैर्जङ्गमाजङ्गमैर्युताम् ।
 उद्दिष्टायतनादेस्तु बीजगर्भात्मिकां स्मरेत् ॥ १०३ ॥

ओं हां ह्रां पृथिव्यै सर्वभूतधारिण्यै नमः ।

अनेनावाह्य सद्येन स्थापयेत् सोत्तरेण तु ।

साधोरेण निरुध्यैनां सवक्त्रेणाभिपूज्य तु ॥ १०४ ॥

सेशानेनावगुण्ठ्याथ गन्धाद्यैः पुनर्चयेत् ।

ओं

सर्वभूतधरे ! कान्ते ! पर्वतस्तनमाण्डिते ! ॥ १०५ ॥

समुद्रवसने ! देवि ! वसुधे ! गर्भमाश्रय ।

अनेन पूर्वोक्तमन्त्रान्तेन पृथिवीं स्थिरां फेलगतामभिमन्त्रयेत् । अत्र

मङ्गर्याम् —

“उच्चार्यैवमिमं च मन्त्रमसकृद् ध्यात्वा महीमण्डलं
गोमूत्रेण परिष्कृते तु विधिवद् गर्भं निधायावटे ।
गर्भाधानमिमं प्रकल्प्य विधिवत् सन्तोष्य वित्तैर्गुहं
प्रासादं सुदृढं च लक्षणयुतं कुर्यात् ततः शिल्पिभिः ॥”

इति श्रीमदीशानशिवगुह्येदवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे

वास्तुपूजाप्रथमेष्टकागर्भन्यासपटलः

सप्तविंशः ।

अथ अष्टाविंशः पटलः ।

अथात्र लिख्यते लक्ष्म प्रासादानां समासतः ।
देवादीनां नराणां च येषु रम्यतया चिरम् ॥ १ ॥
मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिताः ।
नानामानविधानत्वाद् विमानं शास्त्रतः कृतम् ॥ २ ॥
पितामहेन मुनिभिर्मयेन च यथा पुरा ।
मुख्यादीनि विमानानि कथितान्यनुपूर्वशः ॥ ३ ॥
यानि तान्यत्र कथ्यन्ते देवादीनां समासतः ।
तत्रेशब्रह्मविष्णूनां मुख्यानां मुख्यविंशतिः ॥ ४ ॥
जातीतराणि द्वात्रिंशत् सार्वदेवानि तान्यपि ।
अथ जातिविमानानां द्वादशैव द्विजन्मनाम् ॥ ५ ॥
राज्ञां सङ्कृतिः सङ्ख्यानि तथाष्टौ वैश्यशूद्रयोः ।
क्षुद्रारूपाख्यान्यसामर्थ्ये सर्वेषां विहितानि हि ॥ ६ ॥
तत्र मुख्यादिषण्णवतिविमानानां नामानि भवन्ति ।

तद्यथा —

नलिनं च प्रलीनं च स्वस्तिकं च चतुर्मुखम् ।
ततः स्यात् सर्वतोभद्रं हस्तिपृष्ठं समुज्ज्वलम् ॥ ७ ॥

श्रीच्छन्दं वृत्तभद्रं च श्रीकान्तं श्रीप्रतिष्ठितम् ।
 शिवभद्रं शिवच्छन्दमष्टाङ्गं पद्मकाकृति ॥ ८ ॥
 विष्णुच्छन्दं च सौभद्रं छन्दे कैलासरुद्रयोः ।
 ततो ललितभद्राख्यं विमानं चेति विंशतिः ॥ ९ ॥
 मेरुमन्दरकैलासा जयाङ्गविमलाकृती ।
 कुम्भाख्यं विमलाङ्गं च वृषच्छन्दं सुदर्शनम् ॥ १० ॥
 हंसच्छन्दं पद्मकान्तं गरुडच्छन्दमेव च ।
 भोगिच्छन्दं पद्मभद्रं ततः कैलासकान्तकम् ॥ ११ ॥
 रुद्रकान्तं स्कन्दकान्तं योगभद्रं च मङ्गलम् ।
 विन्ध्यच्छन्दं मेरुकूटं महेन्द्रं चित्रकूटकम् ॥ १२ ॥
 श्रीमण्डनं च सौमुख्यं नीलं निषधसंज्ञितम् ।
 ततो ललितकान्ताख्यं विजयं श्रीकरं तथा ॥ १३ ॥
 श्रीविशालं च कथितं तथैव जयमङ्गलम् ।
 जातीतराणि द्वात्रिंशद् विमानानि दिवौकसाम् ॥ १४ ॥

द्वात्रिंशद् दैविकविमानानि ।

नागभागाद्वयच्छन्दे कुड्यावर्तं त्रिकूटकम् ।
 श्रीवर्धनं पद्मगृहं प्रेक्षागृहमुखं तथा ॥ १५ ॥
 अत्यन्तभानुचन्द्राणां कान्तानि क्रतुवर्धनम् ।
 वृत्तं च द्वादशैतानि विमानानि द्विजन्मनाम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणविमानानि द्वादश ।

चतुष्कुटं मन्त्रपूतमावन्त्यं माहिपं तथा ।
 तन्त्रीकान्तं कर्णभद्रं विजयाङ्गं विशालकम् ॥ १७ ॥
 विशालभद्रं गणिकाविशालं कर्णशालकम् ।
 पद्मासतं चन्द्रकान्तं स्यात् सर्वललितं ततः ॥ १८ ॥
 योगप्रत्यन्तकान्ताख्ये तत्तद्व्योत्पलपत्रकम् ।
 महाराजहयच्छन्दं मालागृहमतः परम् ॥ १९ ॥
 पृथिवीविजयं चाथ भवेन्नन्दिविशालकम् ।
 सर्वाङ्गसुन्दरं चापि छायागृहमतः परम् ॥ २० ॥

रतिवर्धनमित्येवं चतुर्विंशतिकं स्मृतम् ।

चतुर्विंशतिर्विमानानि क्षत्रियाणाम् ।

विशालालयसंज्ञं च चतुष्पादिकमेव च ॥ २१ ॥

तुरङ्गवदनं तद्वद् गणिकापिण्डिकं तथा ।

श्येनच्छन्दं चोत्पलाग्रं ततः कुक्कुटपुच्छकम् ॥ २२ ॥

(मुण्डप्रासादकाभिर्यं विमानं तु ततः परम् ।)

इत्यष्टौ जातिहर्म्याणि वासार्थं वैश्यशूद्रयोः ।

विदूशद्विविमानान्यष्टौ ।

उक्तानां तु विमानानामलङ्कारो निगद्यते ॥ २३ ॥

आदौ नलिनकाख्यस्य चतुरश्रं समं शुभम् ।

अधिष्ठानं तन्निभागाद् गर्भागारं तदर्धतः ॥ २४ ॥

अर्धारिका च हारा स्यादथ गर्भं नवांशतः ।

अधिकायतवृत्तं स्यात् स्तूपिभिः शिखरं त्रिभिः ॥ २५ ॥

कण्ठश्च शिखराभः स्याद् वेदांशार्धारिकांशतः ।

निर्गमो मध्यबिम्बस्य स्यात् ततो गर्भसन्ननः ॥ २६ ॥

पुरो वृत्तस्फुटितकं तच्चतुर्भागनिर्गतम् ।

ततो द्विगुणविस्तारनिर्गमा पृथुनासिका ॥ २७ ॥

पुरस्तादथ पार्श्वार्ध्यां षोडशैवाल्पनासिकाः ।

तदर्धव्यासनिर्याणा पश्चिमस्थैकनासिका ॥ २८ ॥

अर्धारिकाव्यासतोऽर्धनिर्गते द्विगुणायते ।

सोदरे नासिके पार्श्वकोष्ठके मूर्ध्नि चार्पयेत् ॥ २९ ॥

गृहपिण्ड्यर्धतश्चान्तर्लीनमूर्ध्वार्धोद्गणम् ।

प्रादक्षिण्येन सोपानं भवेत् प्रतितलं क्रमात् ॥ ३० ॥

गृहपिण्डः साष्टनासा म्हा(पा १ हा)रक्रियान्विता ।

अत्र पराशरः — “गृहपिण्डेरधस्तात् कूटकोष्ठपञ्जरगजवृत्तस्फुटितक्षु-
द्रशालाहारातोरणस्तम्भतोरणकुम्भलतादिभिर्हर्म्यं, हर्म्यात् प्रभृत्यामूलतलं य-
थोचितभागेन योजयेदि”ति ।

समं त्रिपादमर्धं वा प्रासादस्य तु मण्डपम् ॥ ३१ ॥

प्रस्तादुक्तमानान्तं त्रिद्व्येकतलकं तु वा ।

प्रासादतुल्यालङ्कारं तत्समाङ्गं च मण्डयेत् ॥ ३२ ॥

त्रितलादि यथेच्छातः प्रासादं भूषयेत् तलैः ।

कर्णे मध्येऽन्तरे भित्तेर्बाह्वे वा मानसूत्रतः ॥ ३३ ॥

निर्गतैरुक्तमानेन कूटकोष्ठकपञ्जरैः ।

गजपृष्ठादिभिश्चोक्तैः कुर्यादवयवैर्युतम् ॥ ३४ ॥

गलादुपरि वेदाश्रं वृत्तमष्टाश्रकं तु वा ।

कर्णाश्रितं मध्यमैकनासिकास्तूपिकान्वितम् ॥ ३५ ॥

प्रासादावयवं प्राज्ञाः कूटं नाम प्रचक्षते ।

सायतं समुखपट्टिकमर्धं(विस्पष्टवि?)स्पष्टकोटियुतमध्यमनासम् ।

शक्ति + ध्वजमपि त्रिमुखं तत् पार्श्वयोर्बहुशिखं खलु कोष्ठम् ॥ ३६ ॥

। शिखाशब्देन स्तूपिकोच्यते ।

मुखे शालामुखं चैव स्तूपिकं हस्तिपृष्ठवत् ॥ ३७ ॥

पञ्जरं नाम तत् प्रोक्तमत्र प्राह पराशरः ।

“तदेव पाशमुखं हस्तिपुण्ड्रं कूटकोष्ठयोरन्तरे विहितं क्षुद्रकोष्ठं च ।
कूटकोष्ठयोरन्तरे हारा भागेन भागार्धेन वा कार्या । वृत्तस्फुटितकमपि पञ्जरमिव
तदर्धनिर्गतवृत्तरूपं स्यात्” इति ।

समानकण्ठशिखरस्तूपिकं सर्वमेव हि ॥ ३८ ॥

जातिकमोऽयं भवति प्रासादानां समासतः ।

कर्णे कोष्ठं मध्यकूटमन्तरे पञ्जरादिकम् ॥ ३९ ॥

सान्तःप्रस्तरकं यत् तद् विकल्पमभिधीयते ।

तैरेव मिश्र आभासः सर्वतः सममेव हि ॥ ४० ॥

प्रासादमुखशोभां तु जलावस्थितचन्द्रवत् ।

योजयेत् तु विमानानां भेदः संस्थानभेदतः ॥ ४१ ॥

शिखरस्य तु भेदेन सर्वेषां भेदमुद्दिशेत् ।
यथार्हं तु यथाशोभं सर्वमन्यत् समं स्मृतम् ॥ ४२ ॥
मरुत्पथं योजयेच्च यथाशोभं यथोचितम् ।
मुखे मुखे महानास्या युक्तं तत् स्याद्धि पक्षयोः ॥ ४३ ॥
अर्धकोष्ठद्वयाद् व्योम्नि प्लवमानविहङ्गवत् ।
विमानं नलिनं त्वेतत् कथितं शिववल्लभम् ॥ ४४ ॥
नलिनकम् ।

प्रलीनकस्याधिष्ठानं समानचतुरश्रकम् ।
तद्व्यासेऽष्टांशके भागैस्त्रिभिर्गर्भगृहं भवेत् ॥ ४५ ॥
वेदाश्रे गर्भशिखरे गर्भार्धं निर्गतायता ।
स्यात् पुरस्तान्महानासी पार्श्वयोश्चाल्पनासिकाः ॥ ४६ ॥
चतस्रश्चापरे भागे महत्येकैव नासिका ।
गर्भपादांशविस्तारे कोष्ठके द्विगुणायते ॥ ४७ ॥
पार्श्वयोर्मूर्ध्नि च स्यातां गर्भाद् रामांशतस्तर्तम् ।
खण्डहर्म्यं च तत्तुल्यं द्विगुणं द्राधिमा तयोः ॥ ४८ ॥
अन्तर्लीनं तु सोपानं गृहपिण्डैर्धरोहणम् ।
अर्धारिहा(रिः १)मध्येऽन्तर्गृहं निर्व्यूहतः समम् ॥ ४९ ॥
एकत्र पक्षे तल्पं स्यात् त्रिपक्षे त्वत्तलं भवेत् ।
कुड्यं चैव यथाशोभं शेषं प्रागिव योजयेत् ॥ ५० ॥
तदधिष्ठानपार्श्वाभ्यां सोपाने हस्तितुण्डके ।
पक्षबन्धं छत्रशीर्षं गृहपिण्डं महाक्रिया(?) ॥ ५१ ॥
तस्यामष्टौ चाल्पनास्यः सर्वास्ताः स्वस्तिकान्विताः ।
प्रतिबन्धमधिष्ठानं स्तम्भाः स्युश्चतुरश्रकाः ॥ ५२ ॥
प्लवमानामिषग्राहिविहङ्गसदृशाकृति ।
कूटकाद्यैरवयवैः प्राग्वद् युक्त्या विभूषयेत् ॥ ५३ ॥

पार्श्वयोरर्धकोष्ठाभ्यां नासीषट्केण मूर्धनि ।
 प्लवमानामिषग्राहिविहङ्गवदवस्थितम् ॥ ५४ ॥
 एकादितलसम्पन्नं प्रलीनं शिवमन्दिरम् ।

प्रलीनकम् ।

स्वस्तिकस्याप्यधिष्ठानं व्यासपादांशमायतम् ॥ ५५ ॥
 चतुरश्रं तु तद्व्यासादष्टनन्दांशतः क्रमात् ।
 द्वित्र्यंशं स्याद् गर्भगृहं गृहपिण्ड्यादि पूर्ववत् ॥ ५६ ॥
 शिखरं दीर्घवेदाश्रं पुरा गर्भार्धमानतः ।
 निर्गता स्यान्महानासिस्तदर्धात् पार्श्वनासिका ॥ ५७ ॥
 शिखरे चाल्पनास्योऽष्टौ सर्वा नास्यः सभद्रकाः ।
 कोष्ठानि खण्डहर्म्याणि स्वास्तिकाभानि योजयेत् ॥ ५८ ॥
 कूटकोष्ठाद्यवयवं प्राग्वत् सर्वं तु कारयेत् ।

स्वस्तिकम् ।

अधिष्ठानादिशिखरात् समवृत्तं चतुर्मुखम् ॥ ५९ ॥
 नालीगृहार्धारिकाद्यं स्वस्तिकोक्तप्रमाणतः ।
 दिक्षु वेदमहानास्यो गर्भपादांशनिर्गताः ॥ ६० ॥
 शिखरे मध्यतस्तासां तदर्धेनारूपनासिकाः ।
 नालीगृहव्याससमां समांशकांशनिर्गमाम् ॥ ६१ ॥
 गृहपिण्डं चतुर्दिक्षु मध्ये च परिकल्पयेत् ।
 सभद्राः कर्णसमौश्चतस्रः कल्पयेत् समाः ॥ ६२ ॥
 कूटकोष्ठादिकं प्राग्वद् यथाशोभं तु योजयेत् ।
 चतुर्दिक्षु मुखाकारैर्भद्रैर्युक्तं चतुर्मुखम् ॥ ६३ ॥
 चतुर्मुखम् ।

चतुरश्रमधिष्ठानं सर्वतोभद्रकस्य तु ।
 तद्विरून्न्दाष्टभागैः स्याद् गर्भं वेदाग्निनेत्रतः ॥ ६४ ॥

गृहपिण्ड्यादिकं प्राग्वत् पिण्डिः षोडश सौष्टिकाः ।
 अष्टाश्रे कण्ठशिखरे स्यातां तत्राष्टनासिकाः ॥ ६५ ॥
 तले तले चतुर्दिक्षु मध्यं भद्रान्वितं भवेत् ।
 पञ्चमूर्तिविधानार्थं गर्भविस्तारमानतः ॥ ६६ ॥
 तदिक्षु कर्णकूटानि त्रिमुखाभानि योजयेत् ।
 चतस्रस्तत्र शालाः स्युः कूटकोष्ठादि पूर्ववत् ॥ ६७ ॥
 स्वव्यासार्धात् सभद्राणि कूटादीन्यस्य योजयेत् ।
 तस्याष्टदिक्षु वा मध्ये नव लिङ्गानि वा न्यसेत् ॥ ६८ ॥
 अव्यक्तव्यक्तलिङ्गानां सर्वतोभद्रमीरितम् ।

सर्वतोभद्रम् ।

वेदाश्रं हस्तिपृष्ठस्याप्यधिष्ठानं तदायतम् ॥ ६९ ॥
 व्यासपादांशतः प्राग्वद् गृहपिण्ड्यादिकं स्मृतम् ।
 कूटकोष्ठाद्यवयवं प्राग्वत् सर्वं समूहयेत् ॥ ७० ॥
 वृत्तं पृष्ठे तु शिखरमग्रं द्यश्रं समं शुभम् ।
 स्थितहस्तिसमाकारं शालाकारमुखं च तत् ॥ ७१ ॥
 पार्श्वयोः पृष्ठतोऽपि स्युस्तिस्त्रस्तिस्रश्च नासिकाः ।
 गर्भवेदांशविस्तारास्तदर्धं च विनिर्गताः ॥ ७२ ॥
 ब्रह्मद्वारपताकाभिः कपोतार्धैश्च भूषयेत् ।
 एकानेकतलं वैतद् ब्रह्मविष्ण्वीशमन्दिरम् ॥ ७३ ॥

हस्तिपृष्ठम् ।

समुज्ज्वलस्याधिष्ठानं समवेदाश्रकं स्मृतम् ।
 तत्तृतीयांशतो गर्भं तन्निभागार्धपिण्डिकम् ॥ ७४ ॥
 अलिन्दं चैव हारं च तन्मानेनैव योजयेत् ।
 गर्भत्रिभागविस्तारा अर्धनीप्राश्च नासिकाः ॥ ७५ ॥
 चतस्रः स्युस्तदर्धेन तावत्यः क्षुद्रनासिकाः ।
 वृत्तं शिखरसंस्थानं पिण्ड्यां नास्यस्तु षोडश ॥ ७६ ॥

गृहपिण्डेरधो मूलतलं कूटादिभिः पृथक् ।
 अलङ्कृत्य चतुर्दिक्षु महाकोष्ठैर्विभूषयेत् ॥ ७७ ॥
 तले तले सौष्टिकाग्रमण्डलं मुख्यमण्डपम् ।
 अन्तर्मुखं हि तत् कुर्याच्छेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ ७८ ॥

अत्र पराशरः —

“समुज्ज्वलं तत् सकलेशमन्दिरं सुवृत्तसौष्ठ्यग्रशिरोगलान्वितम् ।
 समभद्रशालं सकलाङ्गमण्डितं जयद्विकीर्त्तिद्युतिदं मनोहरम् ॥”

समुज्ज्वलम् ।

श्रीच्छन्दस्याप्यधिष्ठानं समानचतुरश्रकम् ।
 अष्टाश्रं शिखरे साष्टनासिकं स्याद् गलेऽपि च ॥ ७९ ॥
 अष्टाश्रसौष्टिकाग्रं च शुकनासिकयान्वितम् ।
 शेषं समुज्ज्वलस्यैव कुर्यादेतच्छिवप्रियम् ॥ ८० ॥

श्रीच्छन्दम् ।

अधिष्ठानादांशिखराद् वृत्तभद्रे तु वर्तुलम् ।
 मध्ये नालीगृहं वृत्तं तन्मध्ये च चतुर्दिशम् ॥ ८१ ॥
 कोष्ठानि समभद्राणि प्रमाणभवनं तथा ।
 समविस्तारनिर्याणं तयोर्मध्ये विभूषयेत् ॥ ८२ ॥

अत्र पराशरः — “तयोरन्तरे हस्तिपृष्ठक्षुद्रकोष्ठादिभिर्महाविन्यासेषु
 परितो मण्डनीयं तन्मुखमण्डपं समभद्रं समसूत्रं बहुतुलं सर्वदेवानां प्रशस्तमेव”
 इति ।

वृत्तभद्रम् ।

श्रीकान्तस्याप्यधिष्ठानं समवेदाश्रकं स्मृतम् ।
 विस्तारेऽष्टनवांशे तु द्वित्र्यंशाद् गर्भमन्दिरम् ॥ ८३ ॥

अर्धारिकार्धहारा वा भागार्धाः स्युश्च भागतः ।
 वेदाश्रं गर्भभवनं शिखरं चार्धनिर्गमम् ॥ ८४ ॥
 शिखरे वेदनास्यः स्युस्तावत्यश्चाल्पनासिकाः ।
 गृहपिण्ड्यां व्यष्टनास्यः कर्णकूटचतुष्टयम् ॥ ८५ ॥
 चतुरश्राष्टवृत्तं स्यात् तदन्तः कोष्ठकानि च ।
 निर्गतैः पञ्जरैर्मध्ये चतुर्दिक्षु नियोजयेत् ॥ ८६ ॥
 क्षुद्रकोष्ठैर्हस्तितुण्डैः सार्धपञ्जरजालकैः ।
 तोरणैरपि सोपानैरधिष्ठानपदैरपि ॥ ८७ ॥
 भूषयेद् युक्तितस्त्वेतच्छ्रीकान्तं सार्वदैवतम् ।

श्रीकान्तम् ।

अधिष्ठाना(दिःदा)शिखरं वृत्तं स्याच्छ्रीप्रतिष्ठिते ॥ ८८ ॥
 विस्तारत्रिचतुर्भागाद् भागो गर्भगृहं भवेत् ।
 गृहपिण्ड्यलिन्दहाराश्चैकैकांशेन कल्पयेत् ॥ ८९ ॥
 गर्भवेदांशविस्ताराः सप्तद्रा वेदनासिकाः ।
 गृहपिण्ड्यां षोडश स्युः क्षुद्रनास्यस्तु पूर्ववत् ॥ ९० ॥
 वेदाश्रं बाह्यसंस्थानमन्तर्लानप्ररोहणम् ।
 चतुर्दिक्ष्वपि गर्भार्धव्यासनिर्गमकोष्ठकैः ॥ ९१ ॥
 प्रमाणभवनाङ्गानि सौष्टिकान्तानि योजयेत् ।
 श्रीप्रतिष्ठितकं नाम्ना विमानं विष्णुमन्दिरम् ॥ ९२ ॥

श्रीप्रतिष्ठितम् ।

चतुरश्रमधिष्ठानं शिवभद्रस्य तस्य तु ।
 विस्तारेऽष्टनवांशे तु द्वित्र्यंशं गर्भमन्दिरम् ॥ ९३ ॥
 गर्भं वेदाश्रकं वृत्तं शिखरं वेदनासिकम् ।
 कुर्याद् गर्भचतुर्थांशं व्यासनास्योऽर्धनिर्गमाः ॥ ९४ ॥
 गर्भार्धत्र्यंशभागेन गृहपिण्ड्यादयस्त्रयः ।
 खण्डहर्म्यैश्च कूटाग्रैः परिभूष्य समन्ततः ॥ ९५ ॥

घ्राणषोडशकं पिण्ड्यां तिलकस्वस्तिकाङ्कितम् ।
 नानाधिष्ठानपादाद्यैरलङ्कृत्य तलानि तु ॥ ९६ ॥
 वेदवस्वश्रवृत्ताग्रकर्णकूटानि योजयेत् ।
 द्वित्रिदण्डानि कोष्ठानि समभद्राणि योजयेत् ॥ ९७ ॥
 अन्तर्लीनं हस्तिसंज्ञं सोपानमथ तस्य तु ।
 प्रासादाङ्गसभोपेतं मण्डपं प्रमुखे भवेत् ॥ ९८ ॥
 एकनानातलं वा स्यादूहप्रत्यूहसंयुतम् ।
 खण्डहर्म्यं तथा कुर्याच्छिवभद्रमिदं स्मृतम् ॥ ९९ ॥

शिवभद्रम् ।

शिवच्छन्दस्य तु प्राग्वदधिष्ठानादिकं भवेत् ।
 अभद्राण्येव कोष्ठानि मध्ये पञ्जरभद्रकैः ॥ १०० ॥
 युक्तानि स्युर्बहुतलैः प्रोक्तं युक्त्या नियोजयेत् ।
 शिवस्यैव शिवच्छन्दं सर्वालङ्कारसंयुतम् ॥ १०१ ॥

शिवच्छन्दम् ।

अष्टाङ्गस्याप्यधिष्ठानं शिवभद्रसमं भवेत् ।
 गर्भगेहादिकं तद्वद् विशेषोऽत्र निगद्यते ॥ १०२ ॥
 कपोतपञ्जरोपेतभद्राङ्गान्येव षोडश ।
 मुण्डनास्यौ तथा द्वे द्वे गलादुपरि शीर्षिकम् ॥ १०३ ॥
 भवेदामलकाकारं तत्राष्टौ नासयः समाः ।
 गर्भवेदांशविस्तारास्तदर्धसमनिर्गमाः ॥ १०४ ॥
 अल्पनास्यस्तथैवाष्टौ मध्ये स्याच्चतुरश्रकम् ।
 गृहपिण्ड्यादिकं प्राग्वत् पुरः पक्षद्वयोर्ध्वगम् ॥ १०५ ॥
 सोपानकर्मकोणाभ्यां हस्तितुण्डविभूषितम् ।
 साष्टमङ्गलकं कुर्यान्मध्यद्वारं सतोरणम् ॥ १०६ ॥

वृद्धसोपानमप्यन्तर्लीनमत्र नियोजयेत् ।
 नानामसूरकस्तम्भवेदिकादिमरुत्पथैः ॥ १०७ ॥
 अष्टाश्रसौष्टिकं कर्णे मस्तकान्यत्र योजयेत् ।
 अरूपानल्पक्रियोपेतं त्रितलादितलान्वितम् ॥ १०८ ॥
 सर्वाङ्गालङ्कृतं ह्येतदष्टाङ्गं देवमन्दिरम् ।

अष्टाङ्गम् ।

चतुरश्रमधिष्ठानं व्यासवेदांशकायतम् ॥ १०९ ॥
 वसुनन्दांशके द्वित्रिभागान्नालीगृहं स्मृतम् ।
 तदप्यायतवृत्तं स्यात् प्राग्वदर्धारिकायतम् ॥ ११० ॥
 गृहपिण्ड्यश्चतुर्दिक्षु पादभद्रकनासिकाः ।
 वृत्तायतं तु शिखरं तस्मिन् गर्भार्धभागतः ॥ १११ ॥
 सभद्रका महानास्यः प्राग्वत् कूटादिकं स्मृतम् ।
 गृहपिण्ड्यां षोडशैव कपोते तिलनासिकाः ॥ ११२ ॥
 कर्णकूटादिकैः प्राग्वद् भूषयेत् पद्मकाकृतौ ।

पद्माकृतिः ।

विष्णुच्छन्दस्य च प्राग्वदधिष्ठानं तदायतम् ॥ ११३ ॥
 व्यासवेदांशरामांशगर्भागारं षडश्रकम् ।
 पद्मबन्धमधिष्ठानमूर्ध्ववेदाश्रसौष्टिकम् ॥ ११४ ॥
 गृहपिण्ड्यादिकं प्राग्वच्छिखरं च षडश्रकम् ।
 षडेव नास्यस्तस्मिन् कण्ठश्चापि षडश्रकः ॥ ११५ ॥
 स्वविस्तारार्धनिष्क्रान्तं खण्डहर्म्यं च सौष्टिकम् ।
 ब्रह्मद्वारपताकाभिर्गूढं गूढक्रियान्वितम् ॥ ११६ ॥
 कपोतेऽपि च नास्यः स्युः समभद्राश्च सर्वतः ।
 भोगभूमियुतं दारुक्रियानिर्माणशोभितम् ॥ ११७ ॥

चतुष्कोणेषु मध्ये च पञ्चमूर्तिविधानतः ।
 चतुष्कोणे सौष्टिकानि वृत्तायतशिखांसि च ॥ ११८ ॥
 सर्वाङ्गालङ्कृतं ह्येतद् विष्णुच्छन्दं हि वैष्णवम् ।
 तले तले च कूटानां शिखरं वृत्तमायतम् ॥ ११९ ॥
 इष्टकादारुकर्मार्थं सर्वाङ्गपरिभाण्डितम् ।
 विष्णुच्छन्दम् ।

सौभद्रस्याप्यधिष्ठानं समानचतुरश्रकम् ॥ १२० ॥
 चतुस्त्र्यंशैकभागेन गर्भव्यासस्ततोऽपि च ।
 द्वित्रिभागैकभागैः स्युर्गृहपिण्ड्यादयः क्रमात् ॥ १२१ ॥
 शिखरं चतुरश्रं तु सभाकारं चतुर्दिशम् ।
 गर्भवेदांशविसृताः पादभद्रकनासयः ॥ १२२ ॥
 चतस्रोऽल्पाश्च नास्योऽष्टौ सर्वाः सस्वस्तिभद्रकाः ।
 कूटकोष्ठादिकं सर्वं पादार्धव्यंशभद्रवत् ॥ १२३ ॥
 वेदाष्टषोडशाश्राः स्युर्बृत्ताः स्तम्भास्तलक्रमात् ।
 असलं खण्डहर्म्यं च प्रोक्तालङ्कारभूषितम् ॥ १२४ ॥
 सौभद्रम् ।

कैलासच्छन्दकस्यापि चतुरश्रं मसूरकम् ।
 व्यासाष्टांशे त्रिभागेन गर्भागारं समन्ततः ॥ १२५ ॥
 शेषैः स्युर्गृहपिण्ड्याद्या वेदाश्रं गर्भमन्दिरम् ।
 अष्टाश्रं स्याद् गलादूर्ध्वं पृथक् स्वल्पाष्टनासिकम् ॥ १२६ ॥
 द्विगुणं गृहपिण्ड्यां स्यादथ कर्णाग्रसौष्टिकम् ।
 चतुरष्टाश्रवृत्ताभं नासीयुक्तं तले तले ॥ १२७ ॥
 मध्यमण्डनमंशेन विस्तारार्धविनिष्क्रमम् ।
 श्रीबन्धाख्यमसूरेण त्वलङ्कृत्य तदन्तरे ॥ १२८ ॥
 महापञ्जरकक्षुद्रशालागजमुखैरपि ।
 नानामसूरकस्तम्भवेदिकाजालतोरणैः ॥ १२९ ॥

प्राग्वदङ्गैरलङ्कृत्य खण्डहर्षं यथार्हतः ।
 एकादितलवृद्ध्या तु हीने हीने नियोजयेत् ॥ १३० ॥
 ब्रह्मद्वारपताकाभिः कूटकोष्ठादिभिस्तथा ।
 पुरस्तात् सान्तरालं तु प्रासादाङ्गोपमं पुनः ॥ १३१ ॥
 सन्मण्डपं नैकतलमन्तर्लीनाधिरोहणम् ।
 जातिच्छन्दविकल्पादिक्रमसर्वाङ्गयोजितम् ॥ १३२ ॥
 उन्नतावनतैः कूटकोष्ठैर्मध्यमभद्रकैः ।
 नानाशिखरसंस्थानैः कैलासगिरिसन्निभम् ॥ १३३ ॥
 कैलासच्छन्दमुद्दिष्टं शिवस्यैव शिवङ्करम् ।
 कैलासच्छन्दम् ।

चतुरश्रमधिष्ठानं रुद्रच्छन्दस्य पूर्ववत् ॥ १३४ ॥
 नालीगृहादिकं प्राग्वत् कर्णे मध्येऽन्तरे तथा ।
 कूटकोष्ठादयो योज्या व्यासपादांशनिर्गमाः ॥ १३५ ॥
 ब्रह्मद्वारं तु भागेन विसृतं पिण्डसंश्रितम् ।
 अलङ्कारोन्नशीर्षं स्यान्नानाङ्गैरथ भूषयेत् ॥ १३६ ॥
 अधिष्ठानस्तम्भवेदीजालतोरणपूर्वकैः ।
 चतुरष्टाश्रवृत्ताः स्युः क्रमान्मूलादिभूमयः ॥ १३७ ॥
 गलं च शिखरं वृत्तं पुरः पार्श्वे च नासिकाः ।
 गर्भव्यंशैकविस्तारास्तिस्रः स्युरथ पश्चिमे ॥ १३८ ॥
 तन्मानार्धेन नासी द्वे तिस्रस्तिस्रश्च पार्श्वयोः ।
 तिलकैरन्विताः शेषं रुद्रच्छन्दस्य योजयेत् ॥ १३९ ॥
 रुद्रच्छन्दम् ।

चतुरश्रमधिष्ठानमुक्तं ललितभद्रके ।
 तद्विस्तारेऽष्टनन्दांशे द्विव्यंशैर्गर्भमन्दिरम् ॥ १४० ॥
 गृहपिण्ड्यादयः शेषैर्भागेर्वेदाश्रकाणि च ।
 अष्टाश्रमस्य शिखरमल्पानल्पाष्टनासिकम् ॥ १४१ ॥

स्वव्याससमन्निर्गृहकोष्ठकानि चतुर्दिशम् ।
 मध्ये तेषां तृतीयांशं सृताः शालास्त्रिभिर्मुखैः ॥ १४२ ॥
 कर्णप्रासादविपुलत्र्यंशैकांशेन विस्तृतम् ।
 मध्यभद्रं तदर्धार्धनिर्गमं स्यात् तदन्तरे ॥ १४३ ॥
 सिंहपञ्जरकक्षुद्रकोष्ठादीनपि योजयेत् ।
 सकर्णसौष्टिकाग्रं तदष्टाश्रप्रतिमं भवेत् ॥ १४४ ॥
 तले तले स्वस्तिकाभा योज्यास्तिलकनासयः ।
 गृहपिण्ड्यादिकं प्राग्वत् कूटाद्यैर्भूषयेदपि ॥ १४५ ॥
 हस्तिसोपानमेवान्तर्लीदं ललितभद्रकम् ।

ललितभद्रम् ।

इत्थं समासान्नलिनादिकानि प्रोक्तान्यलङ्कारयुतानि तानि ।
 शम्भोर्विमानान्युचितानि मुख्यान्यम्भोजगर्भस्य हरेश्च तानि ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे
 क्रियापादे मुख्यविमानादिलक्षणपटलोऽष्टविंशः ।

अथ एकोनत्रिंशः पटलः ।

अथ जातीतराख्यानां विमानानां निगद्यते ।
 लक्षणं मेरुपूर्वाणां तत्तन्निष्पत्तिसिद्धिदम् ॥ १ ॥
 मेरुसंज्ञस्य वेदाश्रमधिष्ठानं तु वर्तुलम् ।
 गलं च शिखरे तच्च चतुर्नासीभिरन्वितम् ॥ २ ॥
 मुखनासी महत्येका गर्भार्धेसमनिर्गमा ।
 व्यासे त्रयोदशांशे तु पञ्चांशं गर्भमन्दिरम् ॥ ३ ॥
 गृहपिण्ड्यलिन्दहाराः पृथगेकांशतः क्रमात् ।
 कूटमेकांशतः कोष्ठं त्रिभिरंशैरथांशतः ॥ ४ ॥

नीडं शेषं हि हारांशं कूटादिसमसूत्रकम् ।
 स्वस्तिकाबन्धवन्नास्यस्त्रिचतुःपञ्चभूमिकम् ॥ ५ ॥
 नानाधिष्ठानकस्तम्भवेदिकाजालतोरणैः ।
 वृत्तस्फुटितनीडाद्यैर्भूषयेन्मेरुमादरात् ॥ ६ ॥
मेरुविमानम् ।

तदेव कण्ठे शिखरे चतुरश्रं तु मन्दरम् ।
मन्दरम् ।

तदेव वस्वश्रगलशिखरं वसुनासिकम् ॥ ७ ॥
 अष्टपञ्जरकूटं च नाम्ना कैलासमिष्यते ।
कैलासम् ।

वेदवस्वश्रवृत्ताभगर्भगेहं तदेव हि ॥ ८ ॥
 सभद्रनासिकं ख्यातं विमानं कुम्भसंज्ञितम् ।
कुम्भविमानम् ।

वेदाश्रगर्भगेहं तज्जयाङ्गाख्यं सभद्रकम् ॥ ९ ॥
जयाङ्गम् ।

विशालाङ्गं तदेव स्याद् वृत्तं शिखरकण्ठयोः ।
विशालाङ्गम् ।

तदेव मध्ये हित्वांशं कोष्ठयुक्तं द्विभागतः ॥ १० ॥
 अष्टाश्रशिखरग्रीवं तथाष्टगलनासिकम् ।
 अष्टपञ्जरकूटं च द्विषष्टितिलकान्वितम् ॥ ११ ॥
 सावारं वा निरावारं त्रिचतुःपञ्चभूमिकम् ।
 विमलाकृतिसंज्ञं हि विमानमिदमद्भुतम् ॥ १२ ॥
विमलाकृतिः ।

तदेव कोष्ठकं सर्वं स्वविस्तारार्धनिर्गतम् ।
 तले तले महानास्यौ पक्षयोरर्धकोष्ठवत् ॥ १३ ॥
 हंसच्छन्दमिदं प्रोक्तं विमानमतिसुन्दरम् ।
 हंसच्छन्दम् ।

एतदेव हि वेदाश्रकण्ठं वेदाश्रमस्तकम् ॥ १४ ॥
 शेषं प्रागुक्तवत् सर्वं वृषच्छन्दमिदं स्मृतम् ।
 वृषच्छन्दम् ।

तदेव गरुडच्छन्दं विमानमथ कथ्यते ॥ १५ ॥
 मुखे भद्राङ्गनासं तु पक्षयोरर्धकोष्ठवत् ।
 पार्श्वयोर्द्विद्विनासं च सवृत्तस्फुटितं गलम् ॥ १६ ॥
 शेषं मेरुसमाकारं गरुडच्छन्दमेव तत् ।
 गरुडच्छन्दम् ।

तदेवाष्टाश्रकण्ठं चेदष्टाश्रशिखरं पुनः ॥ १७ ॥
 पद्मसङ्काशशीर्षं च पद्माङ्गं ब्रह्ममन्दिरम् ।
 पद्माङ्गम् ।

तदेव व्यासनिष्क्रान्तं मध्यकोष्ठं चतुर्दिशम् ॥ १८ ॥
 पद्मकुट्टमलशीर्षं तु पद्मभद्रमिदं स्मृतम् ।
 पद्मभद्रम् ।

तदेव कण्ठे शिखरे वृत्तं चेत् पृथुनासिकम् ॥ १९ ॥
 मुखे मुखे द्विपक्षे तु तिस्रो नास्यः समानिकाः ।
 तलं प्रति सभद्राङ्गं सर्वत्र तिलकैर्युतम् ॥ २० ॥
 सद्धारं वापि चाद्धारं योगकैलासकान्तकम् ।
 कैलासकान्तकम् ।

एकादशकरव्यासं सप्ताष्टनवभागवत् ॥ २१ ॥

त्रिचतुष्पञ्चभागेन नालीगेहं समन्ततः ।

शेषं हारावलीकूटकोष्ठैर्भूषयेदपि ॥ २२ ॥

सभद्रं शिखरं वृत्तं चतुर्नासं द्विभूमिकम् ।

चतुष्कूटं चतुश्शालं समन्तात् तिलकैर्युतम् ॥ २३ ॥

सुवृत्तकर्णकूटाग्रं विमानं रुद्रकान्तकम् ।

रुद्रकान्तम् ।

तदेव भद्रकोष्ठाङ्गं योगभद्रं प्रचक्षते ॥ २४ ॥

योगभद्रम् ।

तदेव वेदाश्रशिरःसौष्टिकाग्रमलङ्कृतम् ।

शिखरेऽष्टालपनासं च भोगिच्छन्दाह्वयं भवेत् ॥ २५ ॥

भोगिच्छन्दम् ।

तदेव कण्ठे शिखरे षडश्रं चेत् सुदर्शनम् ।

सुदर्शनस्य विष्णोर्वा भवनं तत् प्रचक्षते ॥ २६ ॥

सुदर्शनम् ।

तदेव स्कन्दकान्तं स्यात् षण्णासीभिरलङ्कृतम् ।

यथोचिताङ्गसम्पन्नं विमानं षण्मुखप्रियम् ॥ २७ ॥

स्कन्दकान्तम् ।

तदेवाखिलमष्टाश्रं कर्णकूटशिरोगलम् ।

सभद्राङ्गं चतुर्नासं विन्ध्यच्छन्दं द्विभूमिकम् ॥ २८ ॥

विन्ध्यच्छन्दम् ।

नवसप्तकरव्यासं सप्तषड्भागयान्वितम् ।

चतुष्कूटचतुःशालायुक्तं वृत्तशिरोगलम् ॥ २९ ॥

अल्पानल्पचतुर्नासमष्टपञ्जरतोरणम् ।

समध्यभद्रतिलकैर्मसूरस्तम्भकैर्युतम् ॥ ३० ॥

सोपपीठमधिष्ठानं नानावयवसुन्दरम् ।

विमानं मेरुकूटाख्यं कूटाद्यङ्गैश्च मण्डितम् ॥ ३१ ॥

मेरुकूटम् ।

मध्यभद्रं विना तत्र कोष्ठकं ककरं भवेत् ।

शेषं पूर्ववदाभूष्य चित्रकूटं हरिप्रियम् ॥ ३२ ॥

चित्रकूटम् ।

तदेव सौष्ठिकैर्युक्तमष्टाभिः साष्टनासिकम् ।

श्रीमण्डनं विमानं स्याच्छ्रीकरं सार्वदैवतम् ॥ ३३ ॥

श्रीमण्डनम् ।

तदेव खलु सौमुख्यमष्टकूटाष्टशालकम् ।

सौमुख्यम् ।

तदेव चतुरश्राभशिखरं जयमङ्गलम् ॥ ३४ ॥

जयमङ्गलम् ।

तदेवाष्टाश्रशिखरं नीलपर्वतसंज्ञितम् ।

नीलपर्वतम् ।

तदेव कूटशालाभिर्विहीनः सोऽष्टपञ्जरः ॥ ३५ ॥

यथेष्टशिखरच्छन्दः प्रासादो निषधः स्मृतः ।

निषधः ।

वेदाश्रदीर्घाधिष्ठानं शालाकारशिरोन्वितम् ॥ ३६ ॥

कूटकोष्ठकनीप्राद्यैः सर्वङ्गैरपि मण्डितम् ।

नानाधिष्ठानपादाढ्यं विमानं मङ्गलाढ्यम् ॥ ३७ ॥

श्रीश्रीधरधरादुर्गागौरीमातृगुणप्रियम् ।

मङ्गलम् ।

चतुरश्रमधिष्ठानं समद्रं वृत्तशीर्षकम् ॥ ३८ ॥

एकभौमं चतुर्नासं विजयारूयं हरिप्रियम् ।

विजयम् ।

तदेव सौष्टिकोपेतमष्टाश्रगलशीर्षकम् ॥ ३९ ॥

युक्तं ललितकान्तारूयं सर्वाङ्गैः सार्वदैवतम् ।

ललितकान्तम् ।

तदेव वृत्तशिखरं श्रीकरं श्रीधरप्रियम् ॥ ४० ॥

श्रीकरम् ।

तदेव चतुरश्राग्रशिखरं साष्टपञ्जरम् ।

कर्णकूटविहीनं तु श्रीविशालं शिवप्रियम् ॥ ४१ ॥

श्रीविशालम् ।

इत्थं द्वात्रिंशदुक्तानि सामान्यानि विशेषतः ।

जातीतराणि सर्वेषां विमानानि दिवौकसाम् ॥ ४२ ॥

अत्र पराशरः —

“एभिरेवाप्यलङ्कारैः स्यात् कनिष्ठाल्पकेष्वपि ।

नामान्यपि च तान्याहुस्तत्तन्मण्डनभेदतः ॥”

इति । तानि च क्षुद्राल्पविमानानि परतः कथ्यन्ते ।

जातीतरविमानालङ्काराधिकारः ।

अथ जातिविमानानामलङ्कारो निगद्यते ।

सोमच्छन्दस्य वेदाश्रमधिष्ठानमथास्य तु ॥ ४३ ॥

रामांशाद् गर्भगेहं स्याद् गर्भार्धाद् गृहपिण्डिका ।

पिण्ड्या सहैवाम्बुतलं परितः शेषतोऽपि च ॥ ४४ ॥

खण्डहर्म्यं भवेच्चूडहर्म्यं चापि समन्ततः ।
 वृद्धसोपानमेवान्तर्लीनमङ्गानि पूर्ववत् ॥ ४५ ॥
 प्रयोज्यानि सभाकारं शिखरं तत्र नासयः ।
 द्विपञ्चाशत् समान्येवं^(१) पुरस्तान्मण्डपान्वितम् ॥ ४६ ॥
 एकानेकतलं ह्येतत् सोमच्छन्दं द्विजोचितम् ।
 सोमच्छन्दम् ।

चतुरश्रायतं तु स्यान्नागच्छन्दमसूरकम् ॥ ४७ ॥
 तन्निवेदांशतोऽंशेन गर्भव्यासस्ततोपि च ।
 तृतीयांशेन परितो गृहपिण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ४८ ॥
 प्रासादखण्डहर्म्यान्तं मण्डपं स्याच्च तादृशम् ।
 सोपानं खण्डहर्म्यार्धाच्छिखरं वृत्तमायतम् ॥ ४९ ॥
 सभाकारं तु तस्याग्रे गर्भार्धात् पृथुनासिका ।
 तदर्धात् परितो नास्यः सर्वा नागोपमाः समाः ॥ ५० ॥
 वृत्तस्फुटं पुरोनास्यां मूलभूमौ तथोपरि ।
 वसुवेदाश्रकाः स्तम्भाः शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ ५१ ॥
 नागच्छन्दम् ।

अधिष्ठानादिकं प्राग्वत् कुड्यावर्तस्य योजयेत् ।
 ब्रह्मद्वारपताकाभ्यां शेषमाभूष्य यत्नतः ॥ ५२ ॥
 अन्तर्लीनं हस्तिसंज्ञं सोपानं शिखरं तथा ।
 शालाकारं भवेत् तत्र नास्यः सङ्कृतिसङ्ख्यया ॥ ५३ ॥
 मुखे मुखे महानास्यः पार्श्वे तिलकनासिकाः ।
 प्रयोज्यास्तदिदं प्रोक्तं कुड्यावर्तं द्विजोचितम् ॥ ५४ ॥
 कुड्यावर्तम् ।

द्विकूटस्याप्यधिष्ठानं गर्भागारं च पूर्ववत् ।
 शेषं जलस्थलं खण्डहर्म्यकूटादिभूषितम् ॥ ५५ ॥

विमानस्य पुरस्तात् तु गर्भमानेन मण्डपम् ।
 पार्श्वयोश्च सभारूपा वेदशालास्तु मध्यतः ॥ ५६ ॥
 नासी स्याच्छिखरोपेता पिण्ड्यां नास्यस्तु षोडश ।
 सभाशालाभशिखरं चतस्रस्तत्र नासिकाः ॥ ५७ ॥
 पादबन्धमाधिष्ठानं स्तम्भाः सर्वे विकल्पकाः ।
 ऊहप्रत्यूहसंयुक्तं हस्तिंसोपानसंयुतम् ॥ ५८ ॥
 जालकाद्यैः समाभूष्य विमानं स्याद् द्विकूटकम् ।
 द्विकूटकम् ।

श्रीवर्धनस्य च प्राग्वदधिष्ठानादिकं समम् ॥ ५९ ॥
 शिखरं स्यात् सभाकारमायतं तस्य चाग्रतः ।
 पृष्ठे च नासिकैका स्याद् द्वे द्वे स्यातां च पार्श्वयोः ॥ ६० ॥
 वेदिकापञ्जराद्यैश्च यथायुक्त्या विभूषयेत् ।
 श्रीवर्धनम् ।

वृत्तायतमाधिष्ठानमुक्तं पद्मगृहस्य तु ॥ ६१ ॥
 तद्व्यासे वसुनन्दांशे द्वित्र्यंशैर्गर्भमन्दिरम् ।
 शेषं प्रागिव योज्यं स्यान्नासिकाः षोडशैव तु ॥ ६२ ॥
 वृत्तायतं च शिखरं चतस्रस्तत्र नासिकाः ।
 अल्पाश्च नासयोऽत्राष्टौ चतस्रस्तिलकान्विताः ॥ ६३ ॥
 पद्मगृहम् ।

प्रेक्षागृहमुखस्यापि स्यादधिष्ठानमायतम् ।
 चतुरश्रस्य विस्तारादर्धं गर्भगृहं भवेत् ॥ ६४ ॥
 गर्भव्यासेन तत्पार्श्वमण्डपानां चतुष्टयम् ।
 शिखरं कोष्ठकाकारं तत्र नास्यः षडेव हि ॥ ६५ ॥
 कपोते चार्कसंख्यास्ताः शेषं प्राग्वन्नियोजयेत् ।
 अलङ्कारश्च कर्तव्यो वेदीजालमरुत्पथैः ॥ ६६ ॥
 प्रेक्षागृहम् ।

क्रतुवर्धनकस्यापि स्वव्यासार्घ्यताश्रकम् ।
 अधिष्ठानं तु तद्व्यासत्रिभागाद् गर्भमन्दिरम् ॥ ६७ ॥
 समन्ताद् गर्भरामांशभागादधीरिका भवेत् ।
 शेषमसलचूडीकहर्म्यं कुट्टिमसंयुतम् ॥ ६८ ॥
 मुखेमुखे विमानस्य मण्डपं गर्भसम्मितम् ।
 प्रासादवत् स्थलं बाह्ये चूडहर्म्यान्वितं तु तत् ॥ ६९ ॥
 कर्णकूटानि चत्वारि शिखरं कोष्ठकं महत् ।
 चतस्रस्तत्रार्घ्यसभा गर्भकूटानि वै मुखे ॥ ७० ॥
 पुरः पृष्ठे सभा मत्तवारणं मण्डपो भवेत् ।
 चतस्रोऽङ्गसभाः कार्याः शेषाण्यङ्गानि पूर्ववत् ॥ ७१ ॥
 विवृतस्तम्भकैर्बाह्ये जालं स्यात् परितोऽपि च ।
 अन्तर्लीनं हि सोपान(मुःयु)क्तं स्यात् क्रतुवर्धनम् ॥ ७२ ॥

क्रतुवर्धनम् ॥

वृत्तं वृत्तगृहस्य स्यादधिष्ठानं तदायतम् ।
 तादृशं शिखरं तत्र चतस्रः पृथुनासिकाः ॥ ७३ ॥
 अल्पास्तावत्य एवास्य गृहपिण्ड्यादि पूर्ववत् ।
 पृष्ठे गर्भप्रमाणं तदर्धभद्रं तु पिण्डिके ॥ ७४ ॥
 त्रिरष्टौ नासिका योज्या मुखे मण्डिगृहो (?) भवेत् ।

वृत्तगृहम् ।

आर्यताश्रमधिष्ठानं भानुकान्तस्य तस्य तु ॥ ७५ ॥
 व्यासार्घाद् गर्भगेहं स्याच्छेषेण गृहपिण्डिका ।
 असलं खण्डहर्म्यं च शिखरं द्वादशाश्रकम् ॥ ७६ ॥
 नासयो द्वादशैवास्मिन् गृहपिण्ड्यामथो सभाः ।
 षोडश स्युश्च तन्मध्ये महाकोष्ठचतुष्टयम् ॥ ७७ ॥

वृद्धसोपानमेवान्तर्लीनं स्याद् भानुकान्तके ।

भानुकान्तम् ।

अत्यन्तकान्ताधिष्ठानं चतुरश्रं हि तस्य तु ॥ ७८ ॥

तृतीयांशाद् गर्भगृहं शिखरार्धं सभाकृति ।

अर्धर्यसलहाराश्चाप्यंशाभ्यां कर्णकेष्वथ ॥ ७९ ॥

गर्भतुल्या वेदसभा महाकोष्ठानि चान्तरे ।

कपोते परितश्चापि द्व्यष्टौ तिलकनासिकाः ॥ ८० ॥

यथार्हं भूषयेच्छेषमेतदत्यन्तकान्तकम् ।

अत्यन्तकान्तम् ।

मसूरं चन्द्रकान्तस्याप्यायतं मण्डलाकृति ॥ ८१ ॥

व्यासार्धाद् गर्भगेहं स्याच्छेषं पिण्ड्यादिकं भवेत् ।

दीर्घवृत्तं च शिखरं तत्राष्टौ पृथुनासिकाः ॥ ८२ ॥

अल्पनास्यश्च तावत्यः शेषं प्रागिव भूषयेत् ।

चन्द्रकान्तम् ।

ब्राह्मणविमानाधिकारः ॥

चतुःस्फुटस्याधिष्ठानं प्राग्वद् दीर्घायतं भवेत् ॥ ८३ ॥

व्यासपादाद् गर्भगृहं गर्भार्धं गृहपिण्डिका ।

शिष्टेनासलकं चूडाखण्डहर्म्ये च कल्पयेत् ॥ ८४ ॥

शिखरं कोष्ठकाकारं गर्भार्धान्मध्यनासिका ।

पार्श्वे द्वे द्वे महानास्यौ कूटकोष्ठादि पूर्ववत् ॥ ८५ ॥

तलेतले तु स्तम्भेषु वेदिकाजालकादिकम् ।

पुरस्तान्मण्डपं तुल्यमन्तःस्तम्भं तु तद्गृहिः ॥ ८६ ॥

लाङ्गलाकृति कुड्यं तु यथाशोभं विभूषयेत् ।

त्रितलादियुतं नैकतलमेतच्चतुःस्फुटम् ॥ ८७ ॥

चतुःस्फुटम् ।

मन्त्रपूतस्य वेदाश्रमायतं स्यान्मसूरकम् ।
 विस्तारार्धेन गर्भाख्यं शेषात् पिण्डी जलस्थले ॥ ८८ ॥
 हारावली च स्यात् तस्य शिखरं तु सभाकृति ।
 अन्तःस्तम्भं बहिः कुड्ये नानाजालकशोभितम् ॥ ८९ ॥
 कूटकोष्ठादिकैर्दिक्षु विदिक्षु च विभूषयेत् ।
 द्यष्टनास्यस्तु शिखरे कपोते लम्बनासिकाः ॥ ९० ॥
 चतुर्विंशतिसंख्याः स्युर्द्वाराण्यपि चतुर्दिशम् ।
 पुरस्तान्मण्डपं गर्भसमं बाह्ये च कुड्यकम् ॥ ९१ ॥
 अलिन्दं खण्डहर्म्यं च कर्णे गर्भमिताः सभाः ।
 तदन्तरे महाकोष्ठैः कूटाद्यैश्च विभूषयेत् ॥ ९२ ॥
 मन्त्रपूतम् ।

आवन्त्यस्याप्यधिष्ठानं स्वव्यासार्धायताम्रकम् ।
 अष्टांशांशौ गर्भगृहं भागैः पिण्ड्यादिकं त्रयम् ॥ ९३ ॥
 पिण्ड्याश्चापि चतुष्कर्णे लाङ्गलाकारभित्ति कम् ।
 तदन्तरे च पूर्वाश्रस्तम्भाढ्यं शिखरं तु तत् ॥ ९४ ॥
 सभाकारं चतुर्नासं मुखे भद्रसभान्विते ।
 पक्षयोरूपनास्यः स्युरन्तरे पृथुनासिकाः ॥ ९५ ॥
 वल्लीमण्डलसोपानमन्तर्लीनं प्रयोजयेत् ।
 गुह्यागुह्यक्रियाकुड्यस्तम्भयुक्तं तु नैकधा ॥ ९६ ॥
 पादैश्च वेदीजालाद्यैर्भूषयेद् बहुभूमिकम् ।

आवन्त्यम् ।

माहिषस्यायताश्रं स्यादधिष्ठानं तु तत्तत्तौत् ॥ ९७ ॥
 तृतीयांशाद् गर्भगृहं शेषात् पिण्ड्यादिकं त्रयम् ।
 तत्पुरस्ताच्च पृष्ठे च मध्यरङ्गे तु मण्डपे ॥ ९८ ॥

स्यातां च परितः खण्डहर्म्यं सत्कूटजालकम् ।
 मूलमण्डपकण्ठाभ्यां हस्तिसोपानमन्तरे ॥ ९९ ॥
 पुरः स्वस्तिकवद् वंशसभाकारमथापरे ।
 नवनासं तु शिखरे शालावन्महिषाननम् ॥ १०० ॥
 वेदीजालादिभिः शेषं प्राग्वदाभूष्य माहिषम् ।
 माहिषम् ।

तन्त्रीकान्तमसूरं च चतुरश्रायतं भवेत् ॥ १०१ ॥
 तद्यासार्धं गर्भगृहं शेषं स्याद् गृहपिण्डिका ।
 अप्तलं खण्डहर्म्यं च शिखरं कोष्ठमेव हि ॥ १०२ ॥
 सभामुखं पुरस्तात् स्यान्महानासी च पृष्ठतः ।
 तत्र षोडश नास्यः स्युरष्टौ तिलकनासिकाः ॥ १०३ ॥
 महाद्वारे क्रमात् सिंहपञ्जराणि दशैव तु ।
 कपोताधो वेदकर्णलाङ्गलाख्यसमोद्गमम् ॥ १०४ ॥
 मध्यं सभामुखोपेतमहानासीचतुष्टयम् ।
 प्रमाणगेहविपुलनिर्गतं स्याद् यथारुचि ॥ १०५ ॥
 कूटाद्यैर्भूषितं स्वाङ्गैस्तन्त्रीकान्तं प्रचक्षते ।
 तन्त्रीकान्तम् ।

आयताश्रमधिष्ठानं विजयाङ्गस्य तस्य तु ॥ १०६ ॥
 न्यासत्रिभागाद् गर्भाख्यं शेषं पिण्ड्यप्तलादिकम् ।
 अष्टनासं तु शिखरं भवेत् ककरकोष्ठकम् ॥ १०७ ॥
 कपोते तिलनास्यः स्युश्चतुर्विंशतिसंख्यया ।
 सोपानयन्तर्लीनं स्याद् भूमौ भूमौ च मण्डपम् ॥ १०८ ॥
 गर्भप्रमाणं तद्भागे खण्डहर्म्यावली भवेत् ।
 युक्त्याङ्गैः शेषमाभूष्य विजयाङ्गमिति स्मृतम् ॥ १०९ ॥
 विजयाङ्गम् ।

विशालभद्राधिष्ठानं प्राग्वद् व्यासे दशांशके ।
 द्विभागो गर्भविस्तारः शेषेण गृहपिण्डकाम् ॥ ११० ॥
 ब्रह्मद्वारं चूडहर्म्यं खण्डहर्म्यं च कल्पयेत् ।
 पुरस्ताद् गर्भदीर्घं तु वेदाश्रं मण्डपं भवेत् ॥ १११ ॥
 अभितोऽर्धेन कुड्यं चाप्यसलं खण्डहर्म्यकम् ।
 चूडीककर्णप्रासादः शृङ्गं ककरकोष्ठकम् ॥ ११२ ॥
 कपोतशाला पिण्डिः स्यादथ पिण्ड्यास्तु निर्गतम् ।
 समर्पितसभारूपं मध्यमं मण्डनं भवेत् ॥ ११३ ॥
 गर्भव्यासं तदध्यर्धद्विगुणायाममानतः ।
 हारापञ्जरपूर्वाङ्गैर्निष्क्रान्तस्य सभाकृतिः ॥ ११४ ॥
 प्रासादमण्डपाग्रे च पृष्ठे तत्पार्श्वपत्रयुक् ।
 शिखरं चाष्टनासं स्यात् तिलकान्यथ षोडश ॥ ११५ ॥
 मण्डपोपरि रङ्गं स्यादेकानेकतलान्वितम् ।
 विशालभद्रम् ।

अधिष्ठानं तु वेदाश्रं चतुरंशाधिकायतम् ॥ ११६ ॥
 गणिकादिविशालस्य शेषमर्धारिकासले ।
 खण्डहर्म्यं च भवति कर्णप्रासादमध्यमे ॥ ११७ ॥
 प्राग्वन्मण्डननिर्यहकर्णमध्ये तथान्तरे ।
 स्तम्भाः स्युर्गृहपिण्ड्याश्च पुरस्तान्मण्डपं भवेत् ॥ ११८ ॥
 नालीगृहायामसमं मध्ये रङ्गं च तस्य तु ।
 शेषं हर्म्यस्थलं बाह्ये कुट्टिमं जालकान्वितम् ॥ ११९ ॥
 पिण्डिः कपोतजाला स्यात् तस्यां षोडश नासिकाः ।
 शिखरं कोष्ठकं तु स्यात् पुरे ककरभद्रकम् ॥ १२० ॥

तत्राष्टौ नासयः पार्श्वे (सुःस)भद्रं वा विभद्रकम् ।
एकाद्यभीष्टतलकं राजस्त्रीणां निकेतनम् ॥ १२१ ॥
गणिकाविशालम् ।

कर्णभद्रस्य च प्राग्वदधिष्ठानादिकं भवेत् ।
शिखरं च सभाकारं सचतुर्मुखनासिकम् ॥ १२२ ॥
अन्तर्लीनार्कनासाः स्युर्गृहपिण्ड्यप्तलान्तरे ।
स्तम्भान्तर्लीनसोपानाः कपोतेनैकनासिकम् ॥ १२३ ॥
कर्णप्रासादकाश्चूडहर्म्ये गर्भसमायताः ।
कपोतपञ्जरैः सिंहपञ्जरैर्लम्बनासिकैः ॥ १२४ ॥
गूढागूढक्रियास्तम्भभित्तिद्वारैश्च तोरणैः ।
चतुष्कोणे भद्रयुक्तं दिक्षु भद्रसभान्वितम् ॥ १२५ ॥
स्वस्तिभद्रकजालाद्यैर्भूषितं कर्णभद्रकम् ।
कर्णभद्रकम् ।

कर्णशालस्य च प्राग्वदधिष्ठानादिकं स्मृतम् ॥ १२६ ॥
चतुष्कर्णे भद्रशाला मध्यनिर्यूहकाः सभाः ।
भारान्तरप्रयोगं च यथाविधि निवेशयेत् ॥ १२७ ॥
गृहपिण्ड्या समाश्लिष्टमन्तर्लीनमलिन्दकम् ।
पिण्डिः कपोतशाला स्यात् कण लाङ्गलभित्तिकम् ॥ १२८ ॥
अन्तरे स्थापयेत् स्तम्भं तद्विज्ञावष्टनासिकाः ।
ऊर्ध्वभूकण्ठशिखरं सभाकारं प्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥
ककरीभद्रवक्राङ्गं युग्यद्वारं यथारुचि ।
त्रिभौमं सप्तभौमं वा आवृताल्पाकनासिकम् ॥ १३० ॥
वेदीजालादिभिश्चापि यथेष्टावयवैर्युतम् ।
कणशालम् ।

पद्मासनस्याधिष्ठानमायतं चतुरश्रकम् ॥ १३१ ॥
 पञ्चमांशाद् गर्भगृहं गर्भाधाद् गृहपिण्डिकाः ।
 शेषेणाप्तलचूडीकखण्डहर्म्याणि गर्भवत् ॥ १३२ ॥
 संश्लिष्टमध्यवासेन दिक्षु कर्णप्रमाणतः ।
 प्रासादास्तत्र चत्वारः पृथङ्मण्डपसंयुताः ॥ १३३ ॥
 विविधस्तम्भवद् रङ्गं तद्वाहिः कुड्यकं भवेत् ।
 जालवेदीद्वारयुतं खण्डहर्म्याणि बाह्यतः ॥ १३४ ॥
 समांशनिष्कमाढ्यानि चतुष्कर्णेषु वै पृथक् ।
 कूटानि स्युश्च तन्मध्ये कोष्ठकानि च योजयेत् ॥ १३५ ॥
 मध्यावासावृतचतुष्कर्णलाङ्गलकुड्यकम् ।
 अन्तःपूर्वाश्रकस्तम्भमन्तर्लीनमलिन्दकम् ॥ १३६ ॥
 सभाभाशिखरे वेदमहानासाः स्युरल्पकाः ।
 द्वादशैव बाहिष्कर्णान्मुखशालाः समन्ततः ॥ १३७ ॥
 यथार्हावयवैर्युक्तमेतत् पद्मवसन्तकम् ।

पद्मवसन्तकम् ।

व्यासत्रिभागदीर्घाश्रमिन्द्रकान्तस्य कुट्टिमम् ॥ १३८ ॥
 तद्रामांशाद् गर्भगृहं गृहपिण्ड्यादि शेषतः ।
 वेदभद्रसभा दिक्षु चतुष्कर्णेषु नासिकाः ॥ १३९ ॥
 कपोतशालानिर्यूहमुखनास्यो भवन्ति च ।
 गृहपिण्ड्यां षोडशैव शिखरं च सभाकृति ॥ १४० ॥
 तत्कर्णहलभित्तेः स्यात् स्तम्भनिर्यूहमन्तरे ।
 मुखशोभाल्पनास्योऽष्टौ प्राग्वच्छेषं विभूषयेत् ॥ १४१ ॥

इन्द्रकान्तम् ।

दीर्घाश्रं योगकान्तस्याप्यधिष्ठानमथोपरि ।
 परिवृत्तायतं व्यासादष्टांशाद् गर्भमन्दिरम् ॥ १४२ ॥

अर्धेनार्धारिका हारा खण्डहर्म्यावली भवेत् ।
 शिखरं दीर्घवृत्तं स्यात् पुरस्तान्नासिकाद्वयम् ॥ १४३ ॥
 तदर्धात् पृष्ठतस्त्वेका परितश्चाल्पनासिकाः ।
 चतुःसततिसङ्ख्याः स्युः सोपानं पृष्ठरोहि च ॥ १४४ ॥
 अन्तर्लीनं भवेदेतद् योगकान्तं नृपोचितम् ।
 योगकान्तम् ।

स्यात् सर्वललितस्यापि दीर्घांशं हि मसूरकम् ॥ १४५ ॥
 व्यासत्र्यंशाद् गर्भगृहं तदर्धाद् गृहपिण्डिका ।
 कपोतशालाः कर्णेपु कुर्याद् भद्रसभाः पुनः ॥ १४६ ॥
 तदन्तरे च शालाः स्युरन्तर्लीनं यथेष्टतः ।
 सरङ्गे मण्डपे स्यातां पुरस्ताच्चास्य पृष्ठतः ॥ १४७ ॥
 शिखरं च सभाकारं सभद्रं वेदनासिकम् ।
 शेषैरङ्गैरनलैश्चाप्यलैरपि च भूषयेत् ॥ १४८ ॥
 सर्वललितम् ।

प्रत्यन्तकान्ताधिष्ठानं समानचतुरश्रकम् ।
 मध्ये वेदांशनः स्तम्भैरावृतं स्यात् तदर्धतः ॥ १४९ ॥
 गृहपिण्डिर्भवेत् तस्य कर्णेपु हलकुड्यकम् ।
 अक्षलं खण्डहर्म्यं च भागाभ्यां कर्णकोटिपु ॥ १५० ॥
 सभाः स्युर्मध्यतस्तासां भद्रशालचतुष्टयम् ।
 स्यात् पञ्जराद्यैर्जालाद्यैर्हारामध्येपु भूषयेत् ॥ १५१ ॥
 वस्तुमध्यं सभाकारं मुखशालान्वितं भवेत् ।
 शिखरे क्षुद्रनास्योऽष्टौ भद्रकूटैश्च भूषयेत् ॥ १५२ ॥
 प्रत्यन्तकान्तम् ।

अधिष्ठानं विशालस्य दीर्घांशं तस्य विस्तृतेः ।
 त्रिभागाद् गर्भगेहं स्याच्छेषेणाम्बुतलं भवेत् ॥ १५३ ॥

चूडिकाखण्डहर्म्ये च शिखरं कोष्ठकाकृति ।
 पुरे पुरे च षण्णेत्रे नास्यौ तत्र नियोजयेत् ॥ १५४ ॥
 गृहपिण्ड्यां द्विरष्टौ स्युः कर्णेष्वापि च मध्यतः ।
 विशालसमभद्रैश्च कूटाद्यैरपि भूषयेत् ॥ १५५ ॥
 विशालम् ।

भवेदुत्पलपत्रस्य दीर्घाश्रं तु मसूरकम् ।
 नालीगृहं तृतीयांशाच्छेषांशाद् गृहपिण्डिका ॥ १५६ ॥
 कपोतशालासदृशी स्यात् तद्वाह्येऽसलदिकम् ।
 शिखरं च सभाकारं तत्र नासीत्रयं भवेत् ॥ १५७ ॥
 कपोते परितोऽल्पाः स्युरष्टात्रिंशत् तु नासयः ।
 वेदिकाजालसोपानतोरणाद्यैश्च भूषयेत् ॥ १५८ ॥
 उत्पलपत्रम् ।

अधिष्ठानं महाराजच्छन्दस्याप्यायताश्रकम् ।
 नालीगृहं व्यासपादाच्छेषं पिण्ड्यसलदिकम् ॥ १५९ ॥
 कोष्ठकं शिखरं गर्भसमव्यासार्धनिर्गतम् ।
 शालामुखस्य संस्थानं पुरस्तादपि पृष्ठतः ॥ १६० ॥
 गृहपिण्ड्यां चार्धहारे चतस्रः स्वल्पनासिकाः ।
 चतुर्दिशं महाशाला गर्भमानास्तु कर्णगाः ॥ १६१ ॥
 सभाः स्युर्भागनिष्क्रान्ताश्चान्तर्लीनाधिरोहणम् ।
 निर्यूहाधेन तत्रापि सोन्नतानतकोष्ठकैः ॥ १६२ ॥
 पञ्चराणि तथा कुर्यान्नासयः स्वस्तिकोपमाः ।
 हस्त्यादिकानि चत्वारि सोपानानि प्रदक्षिणम् ॥ १६३ ॥
 श्रीखण्डचित्रखण्डाख्यौ स्तम्भौ स्यातामधस्तले ।
 पद्मासनपिण्डपादस्तम्भाश्चोपरिभूमिषु ॥ १६४ ॥
 नन्धावर्तं गजाक्षं च गवाक्षं च मरुत्पथम् ।
 तले तले प्रयुज्जीयादुत्तरं त्रिविधं तथा ॥ १६५ ॥

प्रतयस्त्रिविधास्तद्वत् तोरणानि च वेदिकाः ।
सर्वकायानुकायाढ्यं सर्वाङ्गैरपि मण्डितम् ॥ १६६ ॥
महाराजाह्वयच्छन्दमावाप्तश्चक्रवर्तिनाम् ।

महाराजच्छन्दम् ।

मालीगृहस्याधिष्ठानं चतुरश्रायतं स्मृतम् ॥ १६७ ॥
स्याद् वेदांशाद् गर्भगृहं गर्भार्धाद् गृहपिण्डिका ।
जलस्थलं चूडहर्म्यं खण्डहर्म्यं च शेषतः ॥ १६८ ॥
शिखरं स्याद् दीर्घसभा पुरस्तान्नासिकाद्वयम् ।
पश्चादेका गेहपिण्ड्यां द्यष्टौ नास्यो यथार्हतः ॥ १६९ ॥
निष्क्रमोपेतकूटाद्यैरुपेतं नैकभूमिकम् ।

मालीगृहम् ।

नन्दीविशालाधिष्ठानं त्र्यंशोद्विक्तायताश्रकम् ॥ १७० ॥
गर्भारुख्यं व्यासरामांशाच्छेषेणार्धारिकासलम् ।
चूडीकखण्डहर्म्यं च कूटकोष्ठादिभिर्युतम् ॥ १७१ ॥
खण्डहर्म्याग्रतो गर्भात् कर्णप्रासादकः समः ।
पार्श्वयोर्हस्तितुण्डे च स्यातां तद्गृहपिण्डिके ॥ १७२ ॥
शिखरे चापि नास्योऽष्टौ विंशतिश्च भवन्ति हि ।
शिखरं कोष्ठकं सर्वं कूटाद्यङ्गैश्च भूषयेत् ॥ १७३ ॥

नन्दीविशालम् ।

पृथिवीजयसंज्ञस्य वेदाश्रायतकुट्टिमम् ।
गर्भगेहं च वेदांशाद् गृहपिण्डिस्तदर्धतः ॥ १७४ ॥
शिखरं कोष्ठकं मध्ये रङ्गं स्याद् गर्भमानतः ।
मुखे मुखे मण्डपं स्याच्छेषं हर्म्यातलादिकम् ॥ १७५ ॥
गृहपिण्डीसमोद्ग्रीर्णे कोष्ठे पूर्वापरस्थिते ।
पार्श्वयोश्च तथा मूर्ध्नि नासिकास्तिलकान्विताः ॥ १७६ ॥

ऊहप्रत्यूहसहितं नैकभौममिदं स्मृतम् ।

पृथिवीजयम् ।

सर्वाङ्गसुन्दरस्यापि दीर्घाश्रं स्यान्मसूरकम् ॥ १७७ ॥

नालीगृहं खरामांशात् तदर्धाद् गृहपिण्डिका ।

शेषं जलस्थलं चूडाखण्डहर्म्यावली तथा ॥ १७८ ॥

कर्णप्रमाणप्रासादाश्चत्वारः स्युस्तदन्तरे ।

तद्यासद्विगुणायामवेदकोष्ठानि योजयेत् ॥ १७९ ॥

आयताश्रे तु शिखरे महानास्यः षडेव हि ।

खल्पास्तत्परितश्चाष्टौ चत्वारिंशच्च नासयः ॥ १८० ॥

प्रमुखे मण्डपं भक्तिद्वयकूटादिशोभितम् ।

शालामुखानि कोष्ठानि सोपानं समखण्डकम् ॥ १८१ ॥

त्रितलादितलैर्युक्तं वेदीजालादिशोभितम् ।

उक्तानुक्तैश्च सर्वाङ्गैर्युक्तं सर्वाङ्गसुन्दरम् ॥ १८२ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरम् ।

छायागृहस्याधिष्ठानमायताश्रं तदर्धतः ।

नालीगृहं मण्डपवत् तच्छिरोहर्म्यसंयुतम् ॥ १८३ ॥

गर्भार्धं गृहपिण्डी स्यात् कूटाद्यङ्गैश्च भूषितम् ।

वेदिकाजालकाद्यैश्चछायागृहमिदं स्मृतम् ॥ १८४ ॥

छायागृहम् ।

आधिष्ठानं चायताश्रं रतिवर्धनकस्य तु ।

व्यासार्धाद् गर्भगेहं स्याच्छेषेणार्धारिकासलम् ॥ १८५ ॥

चूडीकखण्डहर्म्ये च कर्णे मध्येऽन्तरे पुनः ।

कूटाद्यैर्वेदिकाद्यैश्च सर्वाङ्गैरपि भूषयेत् ॥ १८६ ॥

ककरीकृतकोष्ठं स्याच्छिखरं साष्टनासिकम् ।

पुरस्तान्मण्डपं तस्य गर्भव्यासायतं भवेत् ॥ १८७ ॥

खण्डहर्म्यादिभिर्युक्तं नैकस्तम्भैरलङ्कृतम् ।
 पिण्ड्यां तिलकसंयुक्ताश्चतुर्विंशतिनासिकाः ॥ १८८ ॥
 कायानुकायभूषाढ्यं रतिवर्धनकं भवेत् ।
 रतिवर्धनम् ।

क्षत्रियविमानानि चतुर्विंशतिः ।

खव्यासपाददीर्घाश्रं विशालायतकुट्टिमम् ॥ १८९ ॥
 व्यासाष्टांशद्विभागेन गर्भगेहं तदर्धतः ।
 अर्धारिकं भवेद् ब्रह्मद्वारशोभाध्वजादिभिः ॥ १९० ॥
 शिखरं दीर्घवृत्तं स्यात् पुरस्तान्नासिकात्रयम् ।
 परितोऽष्टौ विंशतिश्च नासिकाः समनिर्गमाः ॥ १९१ ॥
 व्यासनिर्गतकूटानि कोष्ठानि परितस्तथा ।
 शेषं तिलकनासादिहारापञ्जरकादिभिः ॥ १९२ ॥
 एकद्वित्रितलं ह्येतद् विशालालयसंज्ञितम् ।
 विशालालयः ।

आयताश्रमधिष्ठानं स्याच्चतुष्पादिकस्य तु ॥ १९३ ॥
 व्यासरामांशतो दीर्घं गर्भं रामैकभागतः ।
 वेदाश्रं तु सभाकारं शिखरं नवनासिकम् ॥ १९४ ॥
 व्यासद्विगुणकायामौ पार्श्वयोः कोष्ठकौ तथा ।
 शेषेणाप्तलखण्डाख्यहर्म्ये स्यातां च तत्पुरः ॥ १९५ ॥
 पृष्ठे च विवृतस्तम्भं सरङ्गं मण्डपं भवेत् ।
 तद्वशान्निर्गतं खण्डहर्म्यं तत्कर्णकोटिषु ॥ १९६ ॥
 हलशालाश्चतस्रः स्युर्व्यासायामविभागके ।
 कर्णकूटान्तरेष्वष्टौ दण्डशाला भवन्ति हि ॥ १९७ ॥
 बहिरन्तश्च कोष्ठानि विमानस्य चतुर्दश ।
 शेषं यथार्हमाभूष्य विमानं विट्चतुर्थयोः ॥ १९८ ॥
 चतुष्पादिकम् ।

अधिष्ठानं चायताश्रं तुरङ्गवदनस्य तु ।
 व्यासत्र्यंशाद् गर्भगृहं तदर्धाधीरिका भवेत् ॥ १९९ ॥
 असलं खण्डहर्म्यं च स्यातां शेषविभागतः ।
 दिक्षु गर्भसभा चान्तः कर्णकूटादिमध्यतः ॥ २०० ॥
 कोष्ठानि स्युश्च शिखरं सभाकारं तु तत्पुरः ।
 अध्वाननसभाकारं पुरस्ताद् वेदनासिकम् ॥ २०१ ॥
 सोपानमन्तर्लीनं स्यात् प्राग्वदङ्गानि योजयेत् ।
 तुरङ्गवदनम् ।

अधिष्ठानादिकं प्राग्वद् गणिकापिण्डिकस्य तु ॥ २०२ ॥
 गर्भार्धं गृहपिण्डिः स्याच्छेषं तोयस्थलादिकम् ।
 मध्ये चतुर्दिशं गर्भसभाः स्युर्गर्भमानतः ॥ २०३ ॥
 बाह्ये कूटं कोष्ठकं च खेष्टभद्रसभान्वितम् ।
 अन्तर्लीनं हि सोपानं चतस्रः पृथुनासिकाः ॥ २०४ ॥
 मण्डपं प्रागर्भमितं शिखरं कोष्ठकाकृतिः ।

गणिकापिण्डिकम् ।

दीर्घपृष्ठमधिष्ठानं श्येनच्छन्दस्य तस्य तु ॥ २०५ ॥
 व्यासवेदांशतो गर्भं कुर्याच्चार्धेन पिण्डिकाम् ।
 शेषेणासलकं खण्डहर्म्यं च परितो भवेत् ॥ २०६ ॥
 श्येनाकारे तथा नास्यौ कुर्यात् तु शिखराग्रतः ।
 शिखरे नासयोऽल्पाः स्युरष्टाविंशतिसंख्यया ॥ २०७ ॥
 श्येनच्छन्दम् ।

प्राग्वत् कुक्कुटपुच्छस्याप्यधिष्ठानं तु तत्ततेः ।
 तृतीयांशाद् गर्भगृहं तदर्धाद् गृहपिण्डिका ॥ २०८ ॥

अप्तलं चूडहर्म्यं च शिखरं च सभाकृति ।
 सोपानमन्तर्लीनं स्यादष्टाविंशतिनासयः ॥ २०९ ॥
 कूटादिभिः पुरोक्ताङ्गैर्युक्तं कुक्कुटपुच्छकम् ।
 कुक्कुटपुच्छकम् ।

उत्पलस्याप्यधिष्ठानं व्यासार्धेनायताश्रकम् ॥ २१० ॥
 तत्पादांशाद् गर्भगृहं शेषेण गृहपिण्डिका ।
 स्तम्भाः स्युर्विवृतास्तस्य शिखरं चाष्टनासिकम् ॥ २११ ॥
 कपोते नासयो द्व्यष्टौ प्रागेवाश्रसभा भवेत् ।
 नृत्तरङ्गं च मध्ये स्याच्छेषेणाम्बुतलादिकम् ॥ २१२ ॥
 कूटाद्यैर्वेदिकाद्यङ्गैर्युक्तं स्यादुत्पलाह्वयम् ।
 उत्पलम् ।

अधिष्ठानं त्वायताश्रं मुण्डपासादकस्य तु ॥ २१३ ॥
 व्यासत्रिभागान्नालीकं तदर्धाद् गृहपिण्डिका ।
 पुरस्ताच्चतुरश्रं स्यान्मण्डपं गर्भसम्मिताम् ॥ २१४ ॥
 शिखरं कोष्ठकं नास्यो द्वादशैव समन्ततः ।
 शेषं कपोतशाला स्याच्चूडहर्म्यादिभिर्युतम् ॥ २१५ ॥
 एकद्वित्रितलं नाम मरुत्पथसमन्वितम् ।
 मुण्डपासादसंज्ञं तु भवनं वैश्यशूद्रयोः ॥ २१६ ॥
 मुण्डपासादम् ।

एवं तु जातीतरसंशितानां जात्याह्वयानामपि चालयानाम् ।
 देवोचितानां च नरोचितानां प्रोक्तो ह्यलङ्कारविधिः समासात् ॥ २१७ ॥

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे क्रियापादे
 जातीतरजात्यलङ्कारविधिपटल एकोनत्रिंशः ।

अथ द्वादशभौमादि यावत् तु त्रितलं भवेत् ।
 प्रोक्तानां च विमानानामुत्तमादिप्रभेदतः ॥ १ ॥
 उत्सेधव्यासमानं तु हस्तैः पृथगिहोच्यते ।
 तत्रादित्यतलं श्रेष्ठं शतहस्तोच्छ्रितं भवेत् ॥ २ ॥
 हस्तसप्ततिविस्तारं मुख्यं जात्यपि च क्रमात् ।
 त्रिषष्टिहस्तविस्तारं त्रिनवत्युन्नतं तु यत् ॥ ३ ॥
 उत्तमेन तु मानेन स्यादेकादशभूमिकम् ।
 तथा चतुरशीत्युच्चं सप्तपञ्चाशता ततम् ॥ ४ ॥
 दशभौमं स्मृतं धाम श्रेष्ठमानेन शोभनम् ।
 पञ्चसप्ततितुङ्गं यदेकपञ्चाशता ततम् ॥ ५ ॥
 नवभौमं तु तन्मुख्यं यथायुक्तिं नियोजितम् ।
 उच्चं षडधिकं षष्ठा चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ ६ ॥
 कराणां विस्तृतं धाम भवेदष्टतलं शुभम् ।
 सप्तपञ्चाशदुत्तुङ्गं त्रिंशता नवकेन च ॥ ७ ॥
 कराणां विस्तृतं धाम सप्तभौमं प्रकीर्तितम् ।
 त्रयस्त्रिंशत्करव्यासं चत्वारिंशत्करैरपि ॥ ८ ॥
 नन्दहस्तैश्च यत्तुङ्गं पञ्चभौमं तु तद्भवेत् ।
 त्रिंशता चैकविंशत्या तुङ्गव्यासं चतुस्तलम् ॥ ९ ॥
 प्रकृत्या चातिशक्त्या त्रिभौमं तुङ्गविस्तृतम् ।
 एवं त्रितलमारभ्य यावद् द्वादशभूमिकम् ॥ १० ॥
 उक्तमानात् प्रतितलं हासयेद् द्विकरं क्रमात् ।
 मध्यमानि विमानानि भवन्तीह दश क्रमात् ॥ ११ ॥
 तद्वन्मध्यविमानानां हासेन द्विकरं पृथक् ।
 कनिष्ठादिविमानानि सिद्धचन्त्या जगतीतलात् ॥ १२ ॥
 अथवा युग्महस्तैस्तु विकारकरमादितः ।
 सप्तम्यन्तं विमानानि जात्यादि प्रभवन्ति हि ॥ १३ ॥

तान्यपि त्रितलादीनि भवन्त्यर्कतलान्तकम् ।

जातिविमानाधिकारः ।

अत्यष्टिहस्तादारभ्य आत्रिषष्टिकराततात् ॥ १४ ॥

छन्दानि पञ्चभौमादि भवन्त्यर्कतलादिह ।

द्विद्विहस्तविवृद्धानां कनिष्ठाद्यष्टकत्रयम् ॥ १५ ॥

छन्दविमानाधिकारः ।

त्रयोदशकरव्यासात् पञ्चपञ्चाशदाततेः ।

द्विहस्तवर्धनात् प्राग्वद् विकल्पान्येकविंशतिः ॥ १६ ॥

विकल्पविमानानि ।

एकादशकरात् सप्तचत्वारिंशत्कराततेः ।

द्विहस्तवर्धनात् प्राग्वद्द्विंशतिसंख्यया ॥ १७ ॥

चतुर्भौमाद्यर्कभौमाद्राभासाख्यानि तानि वै ।

आभासविमानानि ।

युग्मायुग्मकरैः पङ्क्तिवहस्तादितः क्रमात् ॥ १८ ॥

अष्टसप्तकषट्पञ्चकरैः श्रेष्ठादिकानि तु ।

चतुस्त्रिद्वितलानि स्युः क्षुद्राख्यानि यथाक्रमम् ॥ १९ ॥

अथवा त्रिचतुर्हस्तव्यासात् क्षुद्रेषु धामसु ।

एकभौमं द्विभौमं च यथायुक्तिं नियोजयेत् ॥ २० ॥

द्विद्विहस्तविवृद्ध्या तु नीचादीनि समूहयेत् ।

अत्र पितामहः —

“पाङ्क्तिहस्तैस्ततं नन्दकरव्यासमिहोत्तमम् ।

भवेदेकतलं हस्तैर्मध्यं वस्त्रृषिसम्मितैः ॥

कनिष्ठमृतुबाणैः स्यादेवमेकतलत्रयम् ।”

इति ।

क्षुद्रविमानाधिकारः ।

अथवा सर्वजात्यानां विमानानां समासतः ॥ २१ ॥

स्वव्यासद्विगुणादुच्चमष्टांशं वाधिकं भवेत् ।
 अथवालपकनिष्ठानां व्यासे सप्तविभागके ॥ २२ ॥
 षडङ्गाधिकमुच्चं स्यान्मध्यानां पञ्च चाधिकम् ।
 त्र्यंशाधिकं चोत्तमानां प्रासादानामिहोन्नतिः ॥ २३ ॥
 यथाधिकारं प्रासादा देवादीनां समृद्धिदाः ।
 ब्रह्मविष्णुशिवानां चाप्युत्तमं चक्रवर्तिनाम् ॥ २४ ॥
 शस्तं द्वादशभौमं स्थानान्येषां तद् विधीयते ।
 त्रयस्त्रिंशत्सुराणां च यक्षनागेन्द्रवेधसाम् ॥ २५ ॥
 एकादशतलं शस्तं द्वितलं शशिसूर्ययोः ।
 महाराजाधिराजानां विमानं नवभूमिकम् ॥ २६ ॥
 अष्टभौमं तु गन्धर्वसिद्धविद्याधरोचितम् ।
 सप्तभौमं द्विजेन्द्राणां नृपाणां च समृद्धिदम् ॥ २७ ॥
 षड्भौमं मण्डलेन्द्राणां पञ्च स्युर्यौवराजकम् ।
 सामन्तानां चतुर्भौमं पुरेशानां च शस्यते ॥ २८ ॥
 श्रीमतां वैश्यशूद्राणां सेनेशानां त्रिभौमकम् ।
 द्वितलं चैकभौमं च सर्वदेवनरोचितम् ॥ २९ ॥

अत्र —

यदुक्तं तु द्विजातीनामन्येषां तलसंख्यकम् ।
 तत् सर्वं द्युसदांमिष्टं द्विजेन्द्रोक्तं च भूभुजाम् ॥ ३० ॥
 वैश्योक्तं चैव शूद्राणां द्विजानां सर्वमेव वा ।
 हीनानां नाधिकोक्तं स्यादिति प्राह पराशरः ॥ ३१ ॥
 विमानाच्छतहस्तोच्चादाधिकं न कलौ स्मृतम् ।
 महावातादिपिडाभिः पीड्यते यद्यतोऽधिकम् ॥ ३२ ॥
 स्वव्यासार्धाद् गर्भगृहमविशेषोदिते भवेत् ।
 विमानैर्व्यासनन्दांशात् कूटशालाविशालता ॥ ३३ ॥

विस्तारद्विगुणायामो युग्मायुग्मे च कोष्ठके ।
 पञ्जरालिन्दके तुल्ये भागार्धार्धारिको भवेत् ॥ ३४ ॥
 पञ्चच्यंशमलिन्दं वा गृहपिण्ड्यादि शेषतः ।

तलविभागाधिकारः ।

कायश्चाप्यनुकायश्च प्रासादाङ्गं द्विधा स्मृतम् ॥ ३५ ॥
 अधिष्ठानं तथा स्तम्भो भित्तिः कुम्भश्च मण्डिकाः ।
 पोतिका स्याद् भारतुला जयन्तय इति क्रमात् ॥ ३६ ॥
 अनुमार्गाश्च कायः स्यादनुकायोऽथ कथ्यते ।
 उत्तरं वाजनं श्रेणी बलीकं कर्णपत्रिका ॥ ३७ ॥
 सन्धिद्वारकपाटानि योगः प्रच्छादनानि च ।
 कुम्भवल्ली तोरणानि मुष्टिवन्धाष्टमङ्गलैः ॥ ३८ ॥
 मृणालिका दण्डिका च निर्घहाराश्च नासिकाः ।
 पट्टिका वलभी बन्धवेदिका जालकानि च ॥ ३९ ॥
 कर्णकूटास्तथा कूटा नीडकोष्ठादयोऽपि च ।
 ऊर्ध्वप्रच्छादविन्यासमुधालोष्टेष्टकादयः ॥ ४० ॥
 अनुकायाभिधानानि सामान्यानि भवन्ति हि ।
 देशोचितानि क्षुद्राल्पविमानानि भवन्ति हि ॥ ४१ ॥
 नागरं द्राविलं चैव वेसरं च त्रिधा मतम् ।
 चतुरश्रं वायताश्रं नागरं तत् प्रचक्षते ॥ ४२ ॥
 षडश्रं वाथवाष्टाश्रं समं वा दीर्घमेव वा ।
 द्राविलं सौधमुद्दिष्टं वेदाश्रं वा गलादधः ॥ ४३ ॥
 कण्ठादुपरि चाष्टाश्रं तदपि द्राविलं स्मृतम् ।
 वृत्तं वृत्तायतं वापि द्व्यश्रं वृत्तमथापि वा ॥ ४४ ॥
 कण्ठादधस्ताद् वेदाश्रं तदूर्ध्वं घर्तुलं च यत् ।
 विमानं वेसरारूढं स्यात् त्रयं तन्निगुणं स्मृतम् ॥ ४५ ॥

सात्त्विकं नागरं तत् स्याद् राजसं द्राविलं स्मृतम् ।
 तामसं वेसरं चेति त्रयं ब्रह्मादिदैवतम् ॥ ४६ ॥
 त्रियुगं तत् त्रिवर्णं च त्रितत्त्वं च क्रमात् स्मृतम् ।
 नागरस्य स्मृतो देशो हिमवद्विन्ध्यमध्यगः ॥ ४७ ॥
 द्राविलस्योचितो देशो द्राविडः स्यान्न चान्यथा ।
 आगस्त्यविन्ध्यमध्यस्थो देशो वेसरसम्मतः ॥ ४८ ॥
 सर्वाणि सर्वदेशेषु भवन्तीत्यपि केचन ।
 समासादत्र सामान्यं तलनिर्माणमिष्यते ॥ ४९ ॥
 त्रिपञ्चसप्तनवभिः करैरेकतलं स्मृतम् ।
 रुद्रातिजगतीसंख्यैर्हस्तैः स्याद् द्वितलं पुनः ॥ ५० ॥
 त्रितलं पञ्चदशभिः कुर्यात् सप्तदशैव तु ।
 अत ऊर्ध्वं प्रतितलं पञ्चहस्तविवर्धनात् ॥ ५१ ॥
 आद्वादशतलं धाम्नां यथावन्मानमूहयेत् ।
 अल्पोत्तमविमानानां व्यासाद् द्विगुण उच्छ्रयः ॥ ५२ ॥
 द्विगुणात् सप्तमांशोनमल्पमध्येषु तुज्जता ।
 तस्मादर्धशहीनः स्यादुत्सेधोऽल्पाधमस्य तु ॥ ५३ ॥
 व्यासेऽभिकृतिकोष्ठे स्यात् पीठं कोष्ठेन मध्यतः ।
 तद्वहिर्वसुकोष्ठानां पङ्क्त्या गर्भगृहं भवेत् ॥ ५४ ॥
 कोष्ठपङ्क्त्या बहिर्भित्तिस्तत्र द्वारं तु कोष्ठतः ।
 एकभित्त्येकतलकं दैवं धामेदमीरितम् ॥ ५५ ॥
 तद्वत् प्रासादविस्तारस्यैकाशीतिपदस्य तु ।
 मध्यस्थनवकोष्ठे स्यात् सपीठं गर्भमन्दिरम् । ५६ ॥
 तद्बाह्ये कोष्ठपङ्क्त्या तु भित्तिं द्वारं च कल्पयेत् ।
 तद्बाह्यपङ्क्त्या परितः कल्पयेन्मध्यनाडिकाम् । ५७ ॥
 प्रासादभित्तिं तद्बाह्ये पङ्क्त्या द्वारं च योजयेत् ।
 प्राच्यां वा पश्चिमे भित्त्योर्द्वारमेकैककोष्ठतः ॥ ५८ ॥
 एवं चाल्पविमानानि विज्ञेयानि यथारुचि ।
 एकभौमानि वा कुर्याद् द्वितलान्तानि शक्तितः ॥ ५९ ॥

एतेषामात्तविस्ताराद् द्विगुणः स्यादिहोच्छ्रयः ।
 उच्छ्रये चाष्टधा भक्ते स्यादधिष्ठानमंशतः ॥ ६० ॥
 स्तम्भोत्सेधस्तु भागाभ्यां प्रस्तरश्चैकभागिकः ।
 कण्ठश्चांशेन शिखरं द्वाभ्यां स्थूपिस्तथांशतः ॥ ६१ ॥
 एवं धामैकतलकं द्वितलं च समूहयेत् ।
 तत्राधिष्ठानतुङ्गस्य त्रिधा भक्तस्य भागशः ॥ ६२ ॥
 भागेन जगतीं कुर्यादंशेन कुमुदं तथा ।
 शिष्टभागे तु वेदांशे कुर्यादंशेन पट्टिकाम् ॥ ६३ ॥
 स्यादंशेनान्तरं शेषावशौ प्रतिमुग्वं भवेत् ।
 अरुपशुद्रविमानानामधिष्ठानमिदं भवेत् ॥ ६४ ॥
 मुख्यजातीतराणां च जात्यानां च यथोचितम् ।
 विमानानामधिष्ठानं सोपपीठं निगद्यते ॥ ६५ ॥
 मसूरकं चाधिष्ठानं वस्त्वाधारं च कुट्टिमम् ।
 तलं चाद्याङ्गमिति च शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥ ६६ ॥
 प्रासादस्तु निजैरङ्गैरधितिष्ठति यं सदा ।
 दृढं शिलादिघटितं तदधिष्ठानसंज्ञितम् ॥ ६७ ॥
 पूर्वमुक्तप्रकारेण स्थले दृढतरं चिते ।
 गर्भन्यासं च कृत्वादावुपपीठं तु योजयेत् ॥ ६८ ॥
 अधोऽधिष्ठानकानां स्यादुपपीठं भवेद् यदि ।
 उन्नत्यर्थं च शोभार्थं रक्षार्थं च विशेषतः ॥ ६९ ॥
 वेदीभद्रं प्रातिभद्रं सुभद्रं च त्रिधा मतम् ।
 अर्कांशे तूपपीठैश्चैरुपानद्यंशमंशतः ॥ ७० ॥
 पद्मं क्षेपणमर्धांशाद् ग्रीवा पञ्चांशतो भवेत् ।
 अर्धेन कम्पस्तस्योर्ध्वमब्जं चांशेन वाजनम् ॥ ७१ ॥

शिष्टांशेनोर्ध्वकम्पश्चेत्यष्टाङ्गमुपपीठकम् ।
 षडङ्गं वा विधातव्यमूर्ध्वाधः पङ्कजं विना ॥ ७२ ॥
 वेदीभद्रमिदं प्रोक्तं सर्वहर्म्योचितं द्विधा ।
 अश्विदृक्छिवभागैस्तु भानुभागांशकांशकैः ॥ ७३ ॥
 रामांशांशकभागैस्तु द्वाभ्यामंशेन योजयेत् ।
 जन्मनो वाजनान्तं तत्तुङ्गे त्रिनवभागिके ॥ ७४ ॥
 पादुकं पङ्कजं कम्पः कण्ठमुत्तरमम्बुजम् ।
 कपोतालङ्गकान्तादि प्रतिवाजनमुच्यते ॥ ७५ ॥
 प्रातिभद्राद्वयं त्वेतत् सर्वालङ्कारसंयुतम् ।
 प्रकृत्यंशे तदुत्सेधे भागाभ्यां जन्म चाम्बुजम् ॥ ७६ ॥
 अर्धेन गलमर्धेन पद्मं द्वांशं तु वाजनम् ।
 अर्धेनाब्जं तथा कम्पमष्टौ कण्ठोऽशमुत्तरम् ॥ ७७ ॥
 अर्धेनाब्जं तु गोपानं त्रिभिः स्यात् कम्पमूर्ध्वतः ।
 सुभद्रकमिदं नाम्ना कथितं ह्युपपीठकम् ॥ ७८ ॥
 सिंहेभमकरव्यालभूतपत्राद्यलङ्कृतम् ।
 प्रतिवक्रझषास्यं स्याद् बालेनारूढमस्तकम् ॥ ७९ ॥

अत्र मयः—

“आत्ताधिष्ठानतुङ्गाद् द्विगुणमथ समं सार्धमर्धत्रिपादं
 पञ्चांशं द्वांशकं वानलसममिति त्रिद्व्येकमात्रोपपीठम् ।
 सप्रत्यङ्गं समञ्चं तदपि च महता वाजनेनोपयुक्तं
 सर्वेषां चापि धाम्नां दृढमुचितमधो योजयेत् तूपपीठम् ॥”

इति श्रीमदीशानशिवगुरुदेवपद्धतौ सिद्धान्तसारे उपरिभागे

क्रियापादे जाल्यादिविमानविभागोपपीठविधि-

पटललिङ्गः ॥

शुभं भूयात् ।

स्मृतग्रन्थाः ।

ग्रन्थनाम.

पृष्ठम्.

| | |
|-------------------|---|
| अजितम् | ७९, ८०, ९८. |
| कालोत्तरम् | १६, २९, ३३, ३४, ४६, ६०, १०४. |
| कालोत्तरटीका | ३२, ४६. |
| किरणम् | २, ५, २२, २३, ४५. |
| कूर्मम् | ८. |
| चन्द्रज्ञानम् | ७०. |
| तत्त्वप्रकाशः | १०, ११, १२, १३, १९. |
| तत्त्वसागरः | ७९. |
| तत्त्वसिद्धिः | १४, १५, १९. |
| देव्या मतम् | ९७. |
| न्यायः | ९. |
| पराख्यम् | ४०, २१, २३, ४३, ९९, १४०. |
| पौरुषम् | ४३. |
| पौष्करम् | १५, ८८, ९९, ११६, १२४, १३३, १४०, २०३, २०८, २१३. |
| प्रतिष्ठापद्धतिः | ९९. |
| प्रतिष्ठासमुच्चयः | ९६. |
| प्रयोगमञ्जरी | ६५, ९७, १२५. |
| बृहत्कालोत्तरम् | २३, ९९, १२२, १४०. |
| ब्राह्मम् | ८. |
| भोजेन्द्रपद्धतिः | ७४, ७५. |
| मकुटोत्तरम् | १४८. |
| मञ्जरी | ७५, ९७, १०३, १०५, ११२, १३३, १४२, १४४, १५०, १६३, २४६, २४९, २६२, २६४. |

ग्रन्थनाम.

पृष्ठम्.

| | |
|--------------------------|---|
| मतङ्गम् | २०, २१, २३, २५, २६, २७, ३७, ४९, ५९, ९७, १४०. |
| माहेन्द्रम् | ९५. |
| मोहशूरोत्तरम् | ९९, २०३, २०८, २१४. |
| योगशिवपद्धतिः | ९६. |
| योगानुशासनम् | ४०. |
| रत्नत्रयम् | १०, ११, १६, ५९. |
| लम्बितम् | २. |
| ललितम् | १२७, १२८, १३४. |
| वातुलम् | ५२, १०३. |
| वातुलोत्तरम् | ९९. |
| विजयम् | ४९, ९७. |
| विश्वकर्मीयम् | २५९. |
| वीरम् | ९६. |
| वैष्णवम् | ८. |
| शिवधर्मः | १००, १२१. |
| श्रुतिः | ३, ९, १६. |
| षट्त्रिंशत्तत्त्वसिद्धिः | १२. |
| सर्वज्ञानसमुद्रः | ९९. |
| सर्वज्ञानोत्तरम् | ९८. |
| संहिता | ८८, १३२, १३३. |
| सान्तानिकम् | ९८. |
| स्कान्दम् | ८. |
| स्मृतिः | ७. |
| स्वच्छन्दभैरवम् | २२०. |
| स्वायम्भुवम् | ४, ५, ६, १६, २२, २४, ९७. |

स्मृतग्रन्थकर्तारः ।

कर्तृनाम.

पृष्ठम्.

| | |
|--------------|---|
| आर्यभटः | २३३. |
| पतञ्जलिः | १००. |
| पराशरः | २६७, २६८, २७२, २८३. |
| पितामहः | ३०१. |
| ब्रह्मशम्भुः | ३१, ३८, ४२, ४५, ४७, ४८, ५०, ९७, ११४, ११५, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२४, १३४, १४०, १४२, १४३, १४५, १४६, १४७ १४८, १४९, १७१, १८७, १८८, १८९, २५०, २५१. |
| भोजः | ४८, ७५, ७८, ९७, १२२, १३७, १४५, १४६, १७८, १९९, २०७. |
| मयः | २३४, ३०६. |
| रामकण्ठः | २, २३, २५, २६. |
| वरुणः | २२, २३, १०३. |
| सद्योज्योतिः | ५. |
| सोमशम्भुः | ९७, २०७, २१४, २१८, २२०. |

READY FOR SALE.

| | RS. | AS. | P. |
|--|-----|-----|----|
| भक्तिमञ्जरी (Stuti) by H. H. Svāti Sri Rāma Varma Mahārājah. | 1 | 0 | C |
| स्यामन्दूरपुरवर्णनप्रबन्धः (Kavya) Syamandūrapuravarṇa- naprabandha by H. H. Svāti Sri Rāma Varma Mahārājah, with the commentary Sundarī of Rājarāja Varma Keil Tampurān. | 2 | 0 | 0 |

Trivandrum Sanskrit Series.

| | | | |
|---|---|----|---|
| No. 1— दैवम् (Vyākaraṇa) by Deva with Puru- shakāra of Krishṇalīlāsukamuni. | 1 | 0 | 0 |
| No. 2— अभिनवकौस्तुभमाला दक्षिणामूर्तिस्तवौ by Krishṇalīlāsukamuni. | 0 | 2 | 0 |
| No. 3— नलाभ्युदयः (Kavya) by Vāmana Bhaṭṭa Bānā (Second Edition). | 0 | 4 | 0 |
| No. 4— शिवलीलार्णवः (Kāvya) by Nīlakāṇṭha Dik- shita. | 2 | 0 | 0 |
| No. 5— व्यक्तिविवेकः (Alankāra) by Mahma Bhaṭṭa with commentary | 2 | 12 | 0 |
| No. 6— दुर्घटवृत्तिः (Vyākaraṇa) by Saranadeva. | 2 | 0 | 0 |
| No. 7— ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका (Vedānta) by Sadā- sivendra Sarasvatī | 2 | 4 | 0 |
| No. 8— प्रद्युम्नाभ्युदयम् (Nāṭaka) by Ravi Varma Bhūpa. | 1 | 0 | 0 |
| No. 9— विरूपाक्षपञ्चाशिका (Vedānta) by Virūpāksha- nātha with the commentary of Vidyā- chakravartin. | 0 | 8 | C |
| No. 10— मातङ्गलीला (Gaṇalakṣhaṇa) by Nīlakāṇṭha. | 0 | 8 | C |
| No. 11— तपतीसंबरणम् (Nāṭaka) by Kulasekhara Varma with the commentary of Siva- rāma | 2 | 4 | 0 |
| No. 12— परमार्थसारम् (Vedānta) by Bhagavad Ādi- śeṣha with the commentary of Rāghava- ānanda. | 0 | 8 | C |
| No. 13— सुभद्राधनञ्जयम् (Nāṭaka) by Kulasekhara Varma with the commentary of Sivarāma. | 2 | 0 | 0 |

| | | | |
|--|---|----|---|
| No. 14—नीतिसारः (Niti) by Kāmandaka, with the commentary of Sankarārya. | 3 | 8 | 0 |
| No. 15—स्वप्नवासवदत्तम् (Nāṭaka) by Bhāsa. (Second Edition). | 1 | 8 | 0 |
| No. 16—प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् (Nāṭaka) by Bhāsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 17—पञ्चरात्रम् Do. Do. | 1 | 0 | 0 |
| No. 18—नारायणीयम् (Śruti) by Nārāyaṇa Bhaṭṭa with the commentary of Desamangala Vārya. | 4 | 0 | 0 |
| No. 19—मानमेयोदयः (Mīmāṃsā) by Nārāyaṇa Bhaṭṭa and Nārāyaṇa Paṇḍita. | 1 | 4 | 0 |
| No. 20—अचिमारकम् (Nāṭaka) by Bhāsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 21—बालचरितम् Do. Do. | 1 | 0 | 0 |
| No. 22—मध्यमव्यायोग-दूतवाक्य-दूतघटोक्तच-कर्णभारोरुभङ्गानि (Nāṭaka) by Bhāsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 23—नानार्थार्णवसंक्षेपः (Kosa) by Kesavaswāmin (Part I. 1st & 2nd Kāṇḍas). | 1 | 12 | 0 |
| No. 24—ज्ञानक्रीपरिणयः (Kāvya) by Chakra kavi. | 1 | 0 | 0 |
| No. 25—छाणादसिद्धान्तचन्द्रिका (Nyāya) by Gaṅgā- dharasūri. | 0 | 12 | 0 |
| No. 26—अभिषेकनाटकम् (Nāṭaka) by Bhāsa. | 0 | 12 | 0 |
| No. 27—कुमारसम्भवः (Kāvya) by Kālidāsa with the two commentaries, {Prakāśikā of Arumagirinātha and Vivaraṇa of Nārā- yaṇa Paṇḍita (Part I. 1st & 2nd Sargas). | 1 | 12 | 0 |
| No. 28—वैखानसधर्मप्रश्नः (Dharmasūtra) by Vikhaṇas. | 0 | 8 | 0 |
| No. 29—नानार्थार्णवसंक्षेपः (Kosa) by Kesavaswāmin (Part II. 3rd Kāṇḍa). | 2 | 4 | 0 |
| No. 30—वास्तुविद्या (Śilpa). | 0 | 12 | 0 |
| No. 31—नानार्थार्णवसंक्षेपः (Kosa) by Kesavaswāmin (Part III. 4th, 5th & 6th Kāṇḍas). | 1 | 0 | 0 |

| | | | |
|--|---|----|---|
| No. 32—कुमारसम्भवः (Kāvya) by Kālidāsa with the two commentaries, Prakāsikā of Arunagirinātha and Vivarana of Nārāyaṇa Pandita (Part II, 3rd, 4th & 5th Sargas) | 2 | 8 | 0 |
| No. 33—वाररुचसंग्रहः (Vyākaraṇa) with the commentary Dipaprabhā of Nārāyaṇa. | 0 | 8 | 0 |
| No. 34—मणिदर्पणः (शब्दपरिच्छेदः) (Nyāya) by Rāja chūḍāmanisakhin. | 1 | 4 | 0 |
| No. 35—मणिसारः (अनुमानखण्डः) (Nyāya) by Gopinātha. | 1 | 8 | 0 |
| No. 36—कुमारसम्भवः (Kāvya) by Kālidāsa with the two commentaries, Prakāsikā of Arunagirinātha and Vivarana of Nārāyaṇa Pandita (Part III, 6th, 7th & 8th Sargas). | 3 | 0 | 0 |
| No. 37—आशौचाष्टकम् (Smṛiti) by Vararuchi with commentary. | 0 | 4 | 0 |
| No. 38—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the commentary Tikāsarvasya of Vandyaghatīya Sarvānanda (Part I, 1st Kānda). | 2 | 0 | 0 |
| No. 39—चारुदत्तम् (Nāṭaka) by Bhāsa. | 0 | 12 | 0 |
| No. 40—अलङ्कारसूत्रम् (Alankāra) by Rājānaka Sri Ruyyaka with the Alankārasarvaswa of Sri Mankhuka and its commentary by Samudrabandha. | 2 | 8 | 0 |
| No. 41—अध्यात्मपटलम् (Kalpa) by Āpastamba with Vivarana of Sri Sankara Bhagavat Pāda. | 0 | 4 | 0 |
| No. 42—प्रतिमानाटकम् (Nāṭaka) by Bhāsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 43—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the two commentaries, Amarakosodghātana of Kshīraswamin and Tikāsarvaswa of Vandyaghatīya Sarvānanda (Part II, 2nd Kānda 1—6 Vargas). | 2 | 8 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|--|-----|-----|----|
| No. 44—तन्त्रशुद्धम् (Tantra) by Bhattâraka Sñi Vedottama. | 0 | 4 | 0 |
| No. 45—प्रपञ्चहृदयम् (Prapanchahridaya). | 1 | 0 | 0 |
| No. 46—परिभाषावृत्तिः (Vyākaraṇa) by Nilakantha Dīkṣhita. | 0 | 8 | 0 |
| No. 47—सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् (Vedānta) by Sñi Krishnānanda Sarasvatī. (Part I.) | 1 | 12 | 0 |
| No. 48—Do. Do. (Part II.) | 2 | 0 | 0 |
| No. 49—गोलदीपिका (Jyotisha) by Parameswara. | 0 | 4 | 0 |
| No. 50—रसार्णवसुधाकरः (Alankāra) by Singa Bhūpāla. | 3 | 0 | 0 |
| No. 51—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the two commentaries, Amarakosodghātana of Kṣhīraswāmīn and Tikāsarvaswa of Vandyaghaṭīya Sarvānanda (Part III. 2nd Kāṇḍa 7– 10 Vargas) | 2 | 0 | 0 |
| No. 52—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the commentary Tikāsarvaswa of Vandyaghaṭīya Sarvānanda (Part IV. 3rd Kāṇḍa) | 1 | 8 | 0 |
| No. 53—शाब्दनिर्णयः (Vedānta) by Prakāśātmaya-tīndra | 0 | 12 | 0 |
| No. 54—स्फोटसिद्धिन्यायविचारः (Vyākaraṇa) | 0 | 4 | 0 |
| No. 55—मत्तविलासप्रहसनम् (Nāṭaka) by Sñi Mahendravikramavarman. | 0 | 8 | 0 |
| No. 56—मनुष्यालयचन्द्रिका (Silpa). | 0 | 8 | 0 |
| No. 57—रघुवीरचरितम् (Kāvya). | 1 | 4 | 0 |
| No. 58—सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् (Vedānta) by Sñi Krishnānanda Sarasvatī (Part III.) | 2 | 0 | 0 |
| No. 59—नागानन्दम् (Nāṭaka) by Sñi harshadeva with the commentary Nāgānandavimarsinī of Sivarāma. | 3 | 4 | 0 |
| No. 60—रघुस्तुतिः (Stuti) by Sñi Laghubhattâraka with the commentary of Sñi Rāghavānanda | 0 | 8 | 0 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| No. 61—सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् (Vedanta) by Sri Krishnâ- nanda Sarasvatî (Part IV.) | 1 | 8 | 0 |
| No. 62—सर्वमतसंग्रहः (Sarvamatasangraha). | 0 | 8 | 0 |
| No. 63—किरातार्जुनीयम् (Kāvya) by Bharavi with the commentary Sabdârthadîpikâ of Chitra- bhanu (1, 2 and 3 Sargas). | 2 | 8 | 0 |
| No. 64—मेघसन्देशः (Kāvya) by Kâlidasa with the commentary Pradîpâ of Dakshinâvarta- natha. | 1 | 0 | 0 |
| No. 65—मयमतम् (Silpa) by Mayamuni. | 3 | 8 | 0 |
| No. 66—महार्थमञ्जरी (Darsana) with the com- mentary Parimala of Maheswarânanda. | 2 | 8 | 0 |
| No. 67—तन्त्रसमुच्चयः (Tantra) by Nârâyana with the commentary Vimarsinî of Sankara. (Part I. 1-6 Patalas) | 3 | 4 | 0 |
| No. 68—तत्त्वप्रकाशः (Agama) by Sri Bhojadeva with the commentary Tâtparyâ- dîpikâ of Sri Kamara. | 2 | 0 | 0 |
| No. 69—ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः (Tantra) by Isânasiva- gurudevamisra (Part I. Sâmanypâda). | 1 | 8 | 0 |
| No. 70—आर्यमञ्जुश्रीमूलकरूपः (Part I). | 2 | 8 | 0 |
| No. 71—तन्त्रसमुच्चयः (Tantra) by Narayana with the commentary Vimarsinî of Sankara (Part II. 7-12 Patalas). | 3 | 8 | 0 |
| No. 72—ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः (Tantra) by Isanasi- vagurudevamisra (Part II. Mantra- pada). | 4 | 0 | 0 |
| No. 73—ईश्वरप्रतिपत्तिप्रकाशः (Vedanta) by Sri Madhusudanasarasvatî | 0 | 4 | 0 |

| | | | | |
|---------|---|---|---|---|
| No. 74— | श्रीयाज्ञवल्क्यस्मृतिः (Dharmasāstra) with the commentary Bālakridā of Visvarûpâchārya. (Part I—Āchāra and Vyavahāra Adhyāyas) | 4 | 0 | 0 |
| o. 75— | शिल्परत्नम् (Silpa) by Srikumara (Part I). | 3 | 4 | 0 |
| No. 76— | आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पः (Part II). | 3 | 4 | 0 |
| No. 77— | ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः by Isanasivagurudava- misra (Part III. Kriyapada 1—30 Patalas). | 3 | 4 | 0 |

Apply to:—

*The Agent for the sale of
Government Sanskrit Publications,
Trivandrum.*

